द सटल आर्ट ऑफ़ नॉट गिविंग ए *क

#1न्यू यॉर्क टाइम्स और ग्लोब एंड मेल बेस्टसेलर

एक अच्छा जीवन जीने का असामान्य नज़रिया

मार्क मैंसन

द
सटल
आर्ट
ऑफ़ नॉट
गिविंग ए
*क

एक अच्छा जीवन जीने का असामान्य नज़रिया

मार्क मैंसन

अनुवाद

उर्मिला गुप्ता

हार्पर हिन्दी

वाणी प्रकाशन

द
सटल
आर्ट
ऑफ़ नॉट
गिविंग ए
*क

एक अच्छा जीवन जीने का
असामान्य नज़रिया

मार्क मैंसन

अनुवाद
उर्मिला गुप्ता

हार्पर
हिन्दी

वाणी प्रकाशन

हार्पर
हिन्दी

(An imprint of Harper Collins Publishers Ltd.)
THE SUBTLE ART OF NOT GIVING A FUCK. Copyright © 2019 by Mark Manson. All rights reserved. No part of this book may be used or reproduced in any manner whatsoever without written permission except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews.
For information, address Harper Collins Publishers, A-75, Sector 57, Noida-200301
www.harpercollins.co.in

वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002
फोन : +91 11 23273167 फैक्स : +91 11 23275710

शाखाएँ

अशोक राजपथ, पटना 800 004, बिहार
कॉफ़ी हाउस कैम्पस, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद 211 001, उत्तर प्रदेश
महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा 442 001, महाराष्ट्र
सुल्तानिया रोड, मोतिया पार्क, भोपाल 462 001, मध्य प्रदेश
www.vaniprakashan.in
marketing@vaniprakashan.in
sales@vaniprakashan.in

THE SUBTLE ART OF NOT GIVING A F□CK
by Mark Manson
Translated by Urmila Gupta
ISBN : 978-93-89012-99-6
Self-Help
© हार्पर हिन्दी एवं वाणी प्रकाशन
हिन्दी प्रथम संस्करण 2019
इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

आभार

यह किताब शुरुआत से ही इतना उलझती गयी कि इसके लिए मेरे साथ और भी बहुत से लोग आ खड़े हुए।

सबसे पहले, मेरी प्रतिभाशाली और ख़ूबसूरत पत्नी, फर्नान्डा का शुक्रिया, जिन्होंने बेझिझक मुझे 'ना' कहा और जहाँ ज़रूरत पड़ी, मुझे टोका। उन्होंने न केवल मुझे एक बेहतर इन्सान बनाया, बल्कि अपने प्यार और लगातार अपनी फ़ीडबैक से मेरे लेखन को भी निखारा।

मेरे पेरेंट्स का आभार, जो इतने साल मेरी लापरवाही और गैर-ज़िम्मेदाराना हरकतों को झलते हुए भी मुझे प्यार करते रहे। कई मायनों में, जब तक कि मैं पूरी तरह वयस्क नहीं हो गया, मैं भी इन किताब में व्यक्त मसलों को समझ नहीं पाया था। इस लिहाज़ से, यह एक प्रकार का रोमांच भी था कि आप वयस्क होने के बाद अपने बचपन और किशोरावस्था के दिनों को किसे देखते हैं। मेरे भाई का आभार: 'हम दोनों के बीच के प्यार और विश्वास पर मुझे कभी भी सन्देह नहीं था, लेकिन फिर भी जब तुम मेरे मैसेज का जवाब नहीं देते थे, तो मुझे तकलीफ़ होती थी।"

फ़िलिप केम्पर और ड्र्यू बिनी-दो शानदार दिमाग, जिन्होंने मेरे दिमाग को वास्तव में उससे बड़े स्तर पर ला खड़ा किया। आपकी मेहनत और प्रतिभा आज भी मुझे आपके सामने झूकने पर मजबूर कर देती है।

माइकल कॉविल का मेरे बोद्धिक परीक्षक होने के लिए आभार, ख़ासकर जब मनोवैज्ञानिक शोधों को समझने की बात आती थी, अपने हमेशा मेरी समझ को चुनौती दी। मेरे सम्पादक ल्यूक डेम्पसे का धन्यवाद, मेरे लेखन को यूँ बेरहमी से सम्पादित करने के लिए, आपकी कड़ी मेहनत की वजह से ही मेरी बड़बड़ में से कुछ अर्थपूर्ण बाहर आ पाया। मेरी एजेंट, मौली गलिक का आभार, आपने मुझे किताब का विज़न समझाने में मदद की और इसे इतना आगे धकेला, जिसकी मैं उम्मीद भी नहीं कर सकता था। टेलर पियर्सन, डेन एड्र्यूज़ और जोडी एटनबर्ग का इस प्रक्रिया में साथ देने के लिए आभार; आप तीनों ने मुझे जवाबदेह और पागल बनाये रखा, जो किसी भी लेखक के लिए सबसे ज़रूरी चीज़ है।

इसके अलावा सबसे बड़ा आभार मेरे लाखों पाठकों का, आप जिस भी कारण से, बोस्टन में रहने वाले, इस मुँहफट ब्लॉगर का लिखा पढ़ते रहे हों, लेकिन उसी प्यार से मेरा अस्तित्व है। आपका शुक्रिया एक अजनबी से अपने दिल की बात साझा करने के लिए, जो लाखों मेल आप मुझे लिखते रहे, उन्हीं मेल्स ने मुझे विनम्र और प्रेरित किया। अब तक मैं हज़ारों घण्टे उन्हें पढ़ने में बिता चुका हूँ, लेकिन सच में उन्हीं से मुझे सबसे बड़ी सीख मिली।

आप सबका तहेदिल से शुक्रिया।

कोशिश मत करो

चार्ल्स बुकोवस्की शराबी, औरतखोर, पक्का जुआरी, गँवार, कंजूस, जीवन से हारा हुआ इन्सान था, और उससे भी बदतर उसका कवि रूप था। ज़िन्दगी में कोई सलाह लेने या किसी तरह की सेल्फ़-हेल्प बुक लिखने की कल्पना तक में कोई उसका नाम नहीं सोच सकता था।
तो किसी भी शुरुआत से पहले, उसके पास दाॅव पर लगाने को कुछ था ही नहीं। बुकोवस्की लेखक बनना चाहता था। लेकिन दशकों तक उसका काम हर पत्रिका, अखबार, जर्नल, एजेंट और प्रकाशकों द्वारा टुकराया जाता रहा। वे उसके काम को 'बदतर', 'अश्लील', 'बकवास', 'ख़राब' इत्यादि कहते रहे। हर न' के साथ वह ख़ुद को शराब और हताशा में डुबाता रहा, जो उसके जीवन का एक हिस्सा बनकर रह गयी। बुकोवस्की दिन में पोस्ट ऑफ़िस में ख़त लिखने का काम करता था। जिसके लिए उसे नाम भर को पैसे मिलते और उनमें से भी ज्यादातर पैसे उसकी शराब पर ही ख़र्च हो जाया करते थे। बाक़ी के पैसे वह रेस में गॉवा देता था। रात में वह अकेले में शराब पिया करता या फिर कभी-कभी अपने पुराने टाइपराइटर पर ठकठक करके अपनी कविताएँ टाइप करता। अक्सर उसकी आँख सुबह ज़मीन पर पड़े-पड़े खुलती थं, जहाँ न जाने रात में वह कब लुढ़क जाता था।
उसके तीस साल ज्यादातर यूँ ही शराब, ड्रग्स, जुए और बाज़ारू औरतों के चक्कर में ही गुज़रे। जब बुकोवस्की पचास साल का हुआ, असफलता का एक दौर गुज़ारने के बाद, तो न जाने कहाँ से एक छोटे से स्वतन्त्र प्रकाशन के सम्पादक को उसमें गहरी दिलचस्पी हो गयी थी। हालाँकि सम्पादक उससे कोई बड़ी रक़म या अधिक किताबें बेचने का वादा तो नहीं कर सका। लेकिन उसकी दिलचस्पी एक हारे हुए शराबी की कहानी सुनाने में थी, तो उसने जोखिम लेने का निर्णय लिया। बुकोवस्की को मिला यह पहला वास्तविक मौक़ा था, और उसे एहसास था कि शायद यह आख़िरी मौक़ा भी हो। बुकोवस्की ने सम्पादक को लिखा: "मेरे पास दो विकल्प हैं- पोस्ट ऑफ़िस में ही रहूँ और पागल हो जाऊँ. या यहाँ रहकर लिखूँ और भूखा मर जाऊँ। मैंने भूख को चुना।"
कॉन्ट्रैक्ट साइन करने के बाद बुकोवस्की ने तीन सप्ताह में ही अपना पहला नॉवेल लिख दिया। उसका टाइटल था 'पोस्ट ऑफ़िस'। समर्पण में उसने लिखा, 'किसी को भी समर्पित नहीं।इस तरह बुकोवस्की एक उपन्यासकार और कवि बन गया। उसके छह उपन्यास और सौ से ज्यादा कविताएँ छपी, जिनकी लगभग बीस लाख से ज़्ादा

प्रतियाँ बिकीं। उसकी बेशुमार सफलता ने सबकी उम्मीदों, यहाँ तक कि ख़ुद उसकी भी उम्मीदों को झुठला दिया।

बुकोवस्की जैसी कहानियाँ हमारी प्रचलित परम्परा का आधार हैं। बुकोवस्की की ज़िन्दगी एक अमेरिकी सपने को बयाँ करती है.: अपनी चाहतों के लिए लड़ने वाला, कभी हार न मानने वाला और अपनी जुनूनी हसरतों तक को साकार करने वाला आदमी। देखा जाये तो इस पर कभी भी एक बढ़िया फ़िल्म बनायी जा सकती है। हम सब बुकोवस्की जैसी कहानियाँ सुनकर कहते हैं, "देखा? उसने कभी हार नहीं मानी। उसने कभी कोशिश करनी बन्द नहीं की। उसने हमेशा ख़ुद पर यक़ीन रखा। उसने हर मुश्किल का डट कर सामना किया और ख़ुद को कुछ बना लिया!"

लेकिन अजीब है कि बुकोवस्की की समाधि पर यह पंक्ति उद्धरित है: 'कोशिश मत करो'।

देखिए, किताबें बिकने और शोहरत मिलने के बावजूद बुकोवस्की था तो एक हारा हुआ इन्सान ही। वह यह जानता था और उसकी सफलता उसके विजेता बनने की इच्छा से नहीं पनपी थी बल्कि एक हारे हुए इन्सान से पनपी थी, उसने इसे स्वीकार किया और फिर ईमानदारी से इसके बारे में लिखा। उसने कभी कुछ और बनने की कोशिश नहीं की, सिवाय अपने खुद के। बुकोवस्की के काम की महानता मुश्किलों से लड़ने या ख़ुद को एक चमकता सितारा बनाने में नहीं थी। वह इससे बिलकुल उलट थी। उसकी योग्यता ख़ुद के प्रति पूरी तरह ईमानदार रहने में थी- खासकर आपनी ख़राब आदतों के प्रति-और अपनी इसी भावना को बिना किसी झिझक या शक़ के उसने बयाँ किया।

यही बुकोवस्की की सफलता की वास्तविक कहानी है: अपनी असफलता से सहजता। बुकोवस्की ने सफलता का लोड ही नहीं लिया। यहाँ तक कि शोहरत मिलने के बाद भी वह अपनी कविताएँ पढ़कर शर्मिन्दा होता रहा और श्रोताओं को गालियाँ देता रहा। वह तब भी पब्लिक में ख़ुद को बेइज्ज़त करने की और सामने आने वाली हर दूसरी औरत के साथ सोने की कोशिश करता रहा। सफलता और शोहरत ने उसे बेहतर इन्सान नहीं बनाया। न ही बेहतर इन्सान बनने से उसे सफलता और शोहरत मिली। आत्म-सुधार और सफलता अक्सर साथ में आते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है ये दोनों एक ही आज का हमारा माहौल "पॉज़िटिव-पॉज़िटिव के नाम पर वास्तविकता से कोसों दूर सकारात्मक अपेक्षाओं पर पागलों की तरह ज़ोर देने का है: ज्यादा खुश बनो। ज्सादा स्वस्थ बनो। बेस्ट बनो, दूसरों से बेहतर बनो। इतने ज्यादा स्मार्ट, तेज़, रईस, सेक्सी, लोकप्रिय, प्रोडक्टिव बनो कि दुनिया आपसे ईष्या करे और आपकी प्रशंसा में सिर झूकाये। एकदम

परफ़िक्ट और अमेज़िंग रहो, और (हो सके तो) हर सुबह नाश्ते से पहले एक सुनहरे दिन की कल्पना करो, अपनी पिक्चर-परफ़क्ट जीवनसाथी को प्यार करो और दुनिया से प्यारे दो बच्चों को गुडबाय कहकर अपने आलीशान हेलीकॉप्टर में बैठकर, सुपर आलीशान ऑफ़िस पहुँचो। जहाँ कमाल के काम करते हुए आप एक दिन तो दुनिया को डूबने से बचा ही लेंगे।

लेकिन जब आप ठहरकर एक बार इस बारे में सोचते हैं, तो पाते हैं कि रूढ़धिवादी सलाहें-वही खुश और सकारात्मक रहने की बातें, जो हम हमेशा से सुनते आये हैं.ये सब उन्हीं बातों के बारे में होती हैं, जिनकी हमारे पास कमी होती है।ं इसका मुख्य फ़ोकस इस बात प्र होता है कि आपकी निजी कमियाँ या असफलता क्या है और फिर उन्हें दूर करने पर ज़ोर दो। आप पैसा बनाने का बेस्ट तरीक़ा सीखते हैं क्योंकि आपको लगता है कि आपके पास पैसों की कमी है। आप शीशे के सामने खड़े होकर बार-बार दोहराते हैं कि आप खुबसूरत हैं क्योंकि आपको लगता है कि अआप पहले से ही ख़ूबसूरत नहीं हैं। आप डेटिंग् और रिश्ते सुधारने की सलाहें अपनाते हैं। क्योंकि आपको लगता है कि कोई आपको प्यार नहीं करता। ज्यादा सफल होने के लिए आप अजीब विजुलाइज़ेशन की एक्सरसाइज़ करने लगते हैं, क्योंकि आपको लगता है कि आप अभी तक उतने सफल नहीं हैं।

विडम्बना यह है कि पॉज़िटिव पर यह ज़ोर क्या बेहतर है, क्या श्रेष्ठ है-यह बस हमें बार-बार याद दिलाता है कि हम क्या नहीं हैं, हमारे पास किस चीज़ की कमी है, और हमें क्या होना चाहिए था, आख़िरकार, किसी भी खुश आदमी को आईने के सामने खड़े होकर यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि वह ख़ुश है। अरे भाई वह तो सच में ख़ुश है न।

हमारे यहाँ एक कहावत है: "थोथा चना बाजे घना।' एक विश्वस्त आदमी को यह साबित करने की ज़रूरत नहीं है कि उसे खुद पर विश्वास है। एक धनी महिला को दूसरों के सामने अपने पैसों का प्रदर्शन करने की कोई ज़रूरत नहीं है या तो आप धनी हो या नहीं हो। अगर आप पूरे समय कुछ और होने का सपना देखते हैं, तो आप बेध्यानी में उसी भाव पर ज़ोर दे रहे हैं, जो आप नहीं हैं।

हर इन्सान और टी.वी. पर आने वाले विज्ञापन, सब आपको भरोसा दिलाना चाहते हैं कि अच्छी ज़िन्दगी की चाबी एक बढ़िया नौकरी में है, या ज्यादा महँगी गाड़ी, ज्यादा सेक्सी गलफ्रेंड या बच्चों के साथ पूल में मस्ती करने में। दुनिया आपको लगातार बता रही है कि बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता ज्यादा, और ज्यादा, सबसे ज्यादा पाने में है-ज्यादा ख़रीदो, ज्यादा चीज़े अपने नाम करो, ज्यादा चीज़ें पैदा करो, ज्यादा मस्ती करो, जो हो उससे ज्यादा करो। आपको लगातार ऐसे मैसेज मिलते हैं, जिनसे आप

अचानक ही हर चीज़ को ज्यादा महत्त्व देने लगते हैं, हर समय। नया टी.वी. ज़रूरी है। अपने सहकम्मी से बढ़िया छुट्याँ बिताना ज़रूरी है। अपने बागीचे के लिए वह नया उपकरण ख़रीदना तो बहुत ही ज़रूरी है। वह नयी वाली सेल्फ़ी स्टिक तो अपके पास होनी ही चाहिए। क्यों? मेरा आनुमान सही है न! क्योंकि ज्य़ादा सामान पर ध्यान देना बिज़नेस के लिहाज़ से अच्छा है और अचछे बिज़नेस में कोई बुराई नहीं है। समस्या यह है कि हर बात को ज़रूरत से ज्यादा महत्त्व देना आपकी मानसिक शान्ति के लिए सही नहीं है। इससे आप नक़ली दुनिया से ज्यादा जुड़ने लगते हैं, और अपनी पूरी ज़िन्दगी खुशी और सन्तुष्टि की मृगतृष्णा का पीछा करने में निकाल देते हैं। बेहतर ज़िन्दगी का नुस्खा ज्ादा की चिन्ता में नहीं है; फ़ालतू चीज़ों पर ध्यान देने में है, सिर्फ़ वास्तविक और उस समय के लिए ज़रूरी बात पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए।

मन में चलने वाला घमासान

अपके दिमाग में एक सनकी तार भी होता है, जिसे अगर आप यूँ ही छोड़ दें तो यह आपको पूरी तरह से पागल बना देता है। क्या आपने भी अपने मन में कभी ऐसा घमासान् महसूस किया है? ज़िन्दगी में किसी से मिलकर आप बेचैन होने लगुते हैं। यह बेचैनी आपको परेशान कर्ती है और आप सोचने लगते हैं कि आप बेचैन क्यों हैं। अब आप बेचेनी को लेकर बेचैन होने लगते हैं । ओहू नहीं। डबल बेचैनी! अब आप अपनी बेताबी को लेकर बेचैन हैं, जिससे बेचैनी थोड़ी और बढ़ जाती है और इससे उकताकर आप हिस्की लेने भागते हैं।

आपको गुस्स की प्रॉब्ल्म है। आप बेवकूफ़ाना, बेकार की बातों पर भी बिफर उठते हैं, और आपको आइडिया ही नहीं होता कि ऐसा क्यों है। सच तो यह है कि आपको ज्यादा गुस्सा आता है, इसलिए आप और ज्य़ादा झॅझलाने लगते हो और फिर, अपने उस गुस्से के दौर में आपको एहसास होता है कि हर समय नाराज़ रहने से आप मुखे एवं ख़राब इन्सान बनते जा रहे हो, और आपको इस बात से नफ़रत है। आप इससे इतना नफ़रत करते हैं कि अब आपको ख़ुद पर ही गुस्सा आने लगता है। अब ख़ुद को देखिए: आप ख़ुद से नाराज़ हो क्योंकि आपको गुस्सा आता है। ऐसे में अब आप क्या करोगे, दीवार से अपना सिर फोड़ोगे। आप हमेशा सही चीज़ करने को लेकर परेशान रहते हो, और फिर कुछ समय बाद आप खुद की परेशानी को लेकर ही

परेशान हो जाते हो या फिर आप अपनी हर गलती को लेकर पछताते रहते हो और फिर इसी बात को लेकर शर्मिन्दा हो जाते हो कि आपको कितना पछतावा है। अक्सर आप उदासी और अकेलापन महसूस करने लगते हैं और यह फीलिंग आपको उससे भी ज्यादा अकेला कर जाती है, जितना कि आप पहले सोच रहे थे। अतः मन के इस घमासान में आपका स्वागत है और इसमें आप एक बार नहीं बल्कि बहुत बार उलझे होंगे । शायद अभी भी आप इसी से जूझ रहे हों। गॉडा मैं तो हमेशा इसमें उलझा रहता हूँ-मैं कितना हारा हुआ इन्सान हूँ, जो व्यर्थ ही इस बहस में पड़ता हूँ। मुझे इसे बन्द कर देना चाहिए। ओह गॉड! ख़ुद को हारा हुआ मानते हुए मैं कितनी लाचारगी महसूस कर रहा हूँ। मुझे ख़ुद को यूँ हारा हुआ नहीं कहना चाहिए। ओह शिट! मैं फिर से ऐसा कर रहा हूँ। देखा, मैं हारा हुआ इन्सान हूँ। उफ़्फ़! शान्त गदाधारी भीम, शान्त। मानो या न मानो, इन्सान होने की यही तो खूबसूरती है। धरती पर कुछ ही ऐसे जीव हैं जिनके पास सोचने की शक्ति है, लेकिन हम इन्सानों के पास अपने विचारों के बारे में भी सोचने की क़ाबिलियत है। तो मैं यूट्यूब पर मिली सायरस का वीडियो देखने के बारे में सोच सकता हूँ, और फिर तुरन्त ही खयाल आयेगा कि मैं कितना पागल हूँ जो यूटयूब पर मिली सायरस का वीडियो देखने की हसरत कर रहा हूँ । हम्म, यही है सोच, चेतना का चमत्कार।

यहाँ एक समस्या है बाज़ारी संस्कृति और सोशल मीडिया का दिखावा आज पूरी तरह से समाज पर हावी है-देखो मेरी ज़िन्दगी तुम्हारी ज़िन्दगी से कूल है। इस भाव ने एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया है, जिन्हें लगता है कि नाराज़गी, डर, पछतावे जैसे नकारात्मक भाव 'कूल' नहीं हैं। मतलब अगर आप अपनी फेसबुक पफ़ीड देखें तो वहाँ हर कोई आलीशान ज़िन्दगी जी रहा है। देखिए, इस सप्ताह लगभग आठ लोगों ने शादी की। किसी सोलह साल की लड़की को टी. वी. के किसी प्रग्राम में या बर्थडे पर फ़रारी गिफ्ट् में मिली या किसी बच्चे ने कोई एप्प बनाकर दो बिलियन डॉलर कमा लिए। और यहाँ आप बैठे हुए अपनी बिल्ली को सहला रहे हैं। यह सब देखकर न चाहते हुए भी आप सोचने लगते हैं कि आपकी ज़िन्दगी कितनी बेकार, बेमज़ा है और मन का घमासान ऐसे में और धमाल दिखाने के लिए आ धमकता है, और आपको ज्य़ादा तनाव, ज्यादा बेचैनी, ज्यादा बोझ दे जाता है। हमारे नाना-दादा के ज़माने में, जब वो ख़ालीपन महसूस करते थे तो सोचते थे, "यार, सारी ज़िन्दगी बस गोबर थापने में ही निकल जायेगी। लेकिन क्या कर सकते हैं, चलो बारिश आने तक जल्दी से सुखाकर रख लें। लेकिन अब? अगर आप पाँच मिनट के लिए अकेलापन महसूस करके सोशलू मीड़िया पर जायें तो इतने में तो आप बिलकुल खुश और

शानदारे ज़िन्दगी जी रहे लोगोंकी 350 फ़ोटो तले दब जायेंगे, और सच में मानने लगेंगे कि आप में ही कुछ कमी है।
पही आख़िरी बात है जो हमें परेशानी में डालती है। हम दुखी होने के लिए और दुखी हो जाते हैं। पछतावे के लिए और पछताने लगते हैं। गुस्से के लिए और गुस्सा हो जाते हैं। बेचैनी के लिए और बेचैन हो उठते हैं। हमारे साथ कोई तो गड़बड़ है। इसीलिए 'लोड' लेना ही असान उपाय है। इसी तरह दुनिया को या ख़ुद को बचाया जा सकता है और दुनिया बचाने जाने से पहले आपको यह मान लेना होगा कि यह दुनिया ऐसी ही है और यह सही है, क्योंकि यह हमेशा से ही ऐसी थी और
हमेशा ऐसी ही रहेगी।
जो चीज़ें आपको बुरी लगती हैं, उन पर ध्यान नहीं देने से आप अपने मन के घमासान को बन्द कर देंगे। आप ख़ुद से कहेंगे, 'मुझे इतना बुरा लग रहा है, लेकिन इसकी परवाह किसे है? और फिर, मानो आपके ज्ञान चक्षु खुल जायेंगे, और बुरा महसूस करने पर आप ख़ुद से नफ़रत करना छोड़ देंगे। जॉर्ज ऑरवेल ने कहा था आपकी नाक के सामने क्या है ये जानने के लिए आपको लगातार संघरषर्ष करना पड़ता है। इसी तरह, आपके तनाव और हताशा का उपाय वही है, ठीक आपकी नाक के सामने, और हम पोर्न देखने और पेट कम करने की मर्शीनों के विज्ञापन देखने में बिज़ी हैं। अरे ये मशीनें तो काम भी नहीं आतीं, और उन पर मेहनत करते हुए हम सोचते हैं कि एक बार सिक्स पैक बना लेने के बाद हमें भी कोई सेक्सी लड़की मिल जायेगी।
हम अक्सर ऑनलाइन रहते हुए 'पहली दुनिया की समस्याओं' का मज़ाक़ बनाते हैं, लेकिन सच यह है कि अब हम अपनी ही सफलता का शिकार हो गये हैं। तनाव की वजह से होने वाली स्वास्थ्य समस्याँ, फ़ालतू की चन्ताएँ और डिप्रेशन के केस तो पिछले तीस सालों में ख़ुब तेज़ी से बढ़े हैं। हालाँकि यह भी सच है कि आज सबके पास फ्लैट-स्क्रीन टी.वी. है और सब घर बैठे रोज़मर्रा का सामान मँगवा लेते हैं। अब हमारी समस्याएँ सुविधाओं को लेकर नहीं रही हैं। अब वे अध्यपात्म और अस्तित्व की हैं। हमारे पास अब काफ़ी सामान और मौक़े हैं कि उन्हें तलाशने की ज़रूरत ही नहीं रह गयी है। हमारे पास देखने और जानने के लिए असीमित चीज़ं हैं। ये जानने के भी बहुत से तरीक़े हैं कि हम चाहते हुए भी सब हासिल नहीं कर सकते, कि हम उतने क़ाबिल नहीं हैं कि हालात उतने बेहतर नहीं हो सकते, जितना कि होने चाहिए थे। सब अन्दर ही अन्दर हमें कचोटता है क्योंकि खुश कैसे रहा जाये' जैसी बकवास के साथ कुछ तो गड़बड़ है, जिसे फेसबुक पर पिछले कुछ सालों में लगभग 80 लाख बार शेयर किया गया है-लेकिन इसके बारे में एक बात कोई नहीं समझ पाता:

"पॉज़िटिव अनुभव की चाह रखना ही अपने आप में नेगेटिव अनुभव है। और इसी से उलट नेगेटिव अनुभव की स्वीकृति ही पोज़िटिव की तरफ़ उठाया गया एक
यही तो दिमाग का दही बनाने वाली थ्योरी है। तो मैं आपको अपना दिमाग्र साफ़ करने के लिए एक मिनट देता हूँ, अब दोबारा से इसे पढ़िए:
पॉज़िटिव की चाह अपने आप में नेगोटिविटी है और नेगेटिव का स्वीकार पॉजिटिव की दस्तक है।
इसी को दाशनिक एलन वॉट्स ने 'बैकवर्ईस लॉ कहा है-आप जितना बेहतर बनने पर ज़ोर देते हैं, उतने ही असन्तुष्ट होते जाते हैं, ऐसे ही किसी चीज़ की चाह अपने आप में यह साबित करती है कि आपके पास वह चीज़ है ही नहीं। जितनी बेताबी से आप अमीर बनना चाहते हैं. उतना ही रारीब और अनुपयोगी ख़ुद को महसूस करते हैं, भले ही आप ख़ूब पैसा कमा चुके हों। जितनी बेताबी से आप सेक्सी बनकर लोगों के दिलों पर छा जाना चाहते हैं, उतना ही बदसूरत ख़ुद को देखते हैं, भले ही आप वास्तव में कैसे भी क्यों न दिखते हों। ज़िन्दगी में जितने प्यार और ख़ुशी की कामना आप करते हैं, उतना ही अकेलापन और डर आप में घर करता जाता है, भले ही अआप एक भरे-पूरे घर में बैठे हों। जितना आप आध्यात्मक ज्ञान हासिल करना चाहते हैं, उतना ही आत्मकेन्द्रित और सतही हो जाते हैं।
एक बार मैंने एसिड ट्रिप (मानसिक सफ़र, जिसमें आप कुछ निश्चित चीज़ों की कल्पना करके उन्हें महसूस करते हैं और अपने वर्तमान से कुछ पलों के लिए कट जाते हैं) भी टूराई किया और उसमें मुझे सच में ऐसा महसूस हुआ कि मैं अपने घर के और क़रीब आ रहा था, जितना कि मैं उससे दूर जाने की कोशिश कर रहा था और हाँ, उस समय मैं अपनी कल्पना के माध्यम से ख़ुशी का अनुभव करना चाह रहा था। लेकिन कोई फ़क़ नहीं पड़ा।
जैसा कि अस्तित्ववादी दाशनिक अल्बेयर कामू ने कहा (और मुझे पूरा यक़ीन है कि वह उस समय किसी काल्पनिक सफ़र पर नहीं रहे होंगे): "लगातार ख़ुशी की तलाश में रहकर आप कभी ख़ुश नहीं रह सकते। इसी तरह जीवन का अर्थ तलाशते हुए आप कभी जीवन जी ही नहीं पायेंगे।" इसे कुछ और सिम्पल बनाते हैं: "कोशिश मत करो।"
अब मैं जानता हूँ कि आप क्या कह रहे हैं: "मार्क, यह सुनकर सच में अच्छा लग रहा है, लेकिन मैं उस आलीशान गाड़ी का क्या करूँ, जिसके लिए कब से सेविंग कर रहा था? बीच-बॉडी का क्या, जिसके लिए कितने दिनों तक खुद को भूखा मारा? और पफिर मैंने उस एब-मशीन पर भी तो ख़ासा खर्चा किया है। झील के किनारे उस बड़े से बँगले को भूल जाऊँ, जिसके सपने मैंने बचपन से देखे हैं? अगर मैं उन चीज़ों की

चिन्ता करना छोड़ दूँ, तो शायद मैं कभी कुछ हासिल ही नहीं कर पपाऊँगा। मैं ऐसा भी तो नहीं चाह सकता न?"

मुझे खुशी है कि आपने यह पूछा।

क्या आपने कभी गरौर किया है कि जब आप किसी चीज़ को लेकर बेपरवाह होते हैं, तो उसे ज्यारादा बेहतर तरीक़ि से कर गुज़रते हैं? क्या अक्सर ऐसा नहीं होता कि जो आदमी सफलता के लिए सबसे कम कोशिश करता है, वास्तव में वही सफल हो जाता है? कभी सोचा है, जब आप लोड लेना छोड़ देते हैं, तभी सब चीज़ें लाइन पर आती दिखाई देने लगती हैं?

इसके पीछे क्या थ्योरी है?

बैकवर्ड लॉ को 'बैकवर्ड' (पीछे की ओर) कहने के पीछे एक दिलचस्प कारण है; लोड नहीं लेने का सिद्धरान्त उलटी दिशा में कार्य कर्ता है। अगर पोॉज़िटिव की चाह करना नेगेटिव है, तो नेगेटिव की खोज ख़ुद पॉज़िटिव को उत्पन्न करेगी। जिम में सहे दर्द की वजह से आपका स्वास्थ्य बेहतर होता है। बिज़नेस से मिली असफलता आपको सफलता की ज़रूरी समझ देती है। अपनी असुरक्षा स्वीकारने से आप द्ूसरों के सामने ज्रादा विश्वस्त और करिश्माई दिखते हैं। ईमानदारी से अपनी भूल क़बूलने का दर्द आपके रिश्ते में ज्रादा विश्वास पैदा करता है। अपने दर्द और हताशा को झेलने के बाद ही आप साहसी और हृढ़ बनते हैं।

सच में, मैं ऐसी बहुत सारी चीज़ें गिनवा सकता हूँ, लेकिन आप मेरा पॉइट समझ गये न। ज़िन्दगी में कुछ भी बहुमूल्य पाने के लिए आपको नेगेटिव अनुभव पर जीत हासिल करनी ही होगी। नेगेटिव से बचने का कोई भी प्रयास, उसे अनदेखा करने, उसे दबाने या उस पर खामोश रह जाने से वह आप पर पलटकर वार ज़्रूर करेगा। पीड़ा को अनदेखा करना, अपने आप में पीड़ा है। संघर्ष को अनदेखा करना, अपने आप में संघर्ष है। असफलता से मुँह मोड़ना ख़ुद असफलता ही है। शर्मिन्दगी को छुपाना भी तो शर्म ही है न। ज़िन्दगी के ताने-बाने में दर्द बारीकी से गुँधा हुआ है, और इसे उससे अलग करना न सिर्फ़ इम्पॉसिबल है, बल्कि तबाही भी है। इसे अलग करने की कोशिश के साथ ही बहुत कुछ और भी बाहर आ जायेगा। दर्द को अनदेखा करने में बहुत-सा दर्द उठाना पड़ता है। इससे उलट अगर आप दर्द का लोड ही न लें तो फिर आपको आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता।

अपनी ज़िन्दगी में मैंने बहुत-सी चीज़ों का लोड लिया और मैंने बहुत-सी चीज़ों पर ध्यान नहीं भी दिया। लेकिन जैसे कि जो राहें नहीं चुनी जातीं, जिन चीज़ों की परवाह नहीं की जाती, आखिरकार वे ही आपका बेड़ा पार लगाती हैं।

आप सभी ज़िनदगी में किसी ऐसे इन्सान को जानते होंगे, जिसने कई बार चीज़ों की परवाह नहीं की आखिर में मज़े में रहा। शायद आपकी ज़िन्दगी में भी कोई ऐसा पल रहा हो जब बस आप 'कूल रहे, लोड नहीं लिया और कोई असाधारण उपलब्धि पा ली। मेरे मामले में, मैंने इंटरनेट बिज़नेस शुरू करने के महज़ छह सप्ताह बाद ही अपनी फाइनेंस की जॉब छोड़ दी थी, बिना किसी परवाह के, और सब बढ़िया ही रहा। इसी तरह मैंने अपना सब कुछ बेचकर साउथ अमेरिका जाने का फ़ैसला कर लिया। इसका लोड लिया? बिलकुल नहीं। बस कर दिया।

बिना लोड वाले ये पल ही आपकी अधिकांश ज़िन्दगी को परिभाषित करते हैं। कैरियर में बड़ा बदलाव; कॉलेज ड्रॉपआउट करके रॉक बैंड से जुड़ना; अपने उस बेवकूफ़ ब्बॉयफ्रेंड को फाइनली छोड़ने का फ़ैसला, जिसे आपने कई बार अपनी पैंटीहोज़ पहने पकड़ा था।

लोड लिए बिना आप ज़िन्दगी की सबसे ज्ञादा भयानक और मुश्किल चुनौतियों को सीधे आँख से आँख मिलाकर देखते हैं, और फिर कोई क़दम उठाते हैं।

हालॉकि 'लोड न लेना' ऊपर से आसान दिखाई देता है, लेकिन देखा जाये तो यह उतना आसान नहीं है एक अलग ही तकनीक है। मैं इसे पूरी तरह तो नहीं जानता, लेकिन फिर भी अब मैं लोड नहीं लेता और वैसे भी नयी तकनीक को अपनाने में क्या हर्ज़ है।

हममें से ज्यादातर लोग ज़िन्दगी भर फ़ालतू का लोड लिए घूमते रहते हैं, हालॉकि इतने लोड की ज़रूरत नहीं होती। हम गैस स्टेशन पर काम करने वाले उस लड़के के ख़राब ब्ताव का लोड लेते हैं, जिसने खुले रुपयों के बदले, चिढ़कर हमें चिल्लर पकड़ा दी। टी.वी. पर हमारा पसन्दीदा शो कैंसिल हो जाये तो हम लोड ले लेते हैं। हमारे सहकर्मी जब हमारे शानदार वीकिंड के बारे में हमसे बात न करें तो हम लोड ले लेते हैं। इस बींच, भले ही हमारे क्रेडिट् कार्ड की लिमिट ख़त्म हो रही हो, हमारा कुत्ता हम् से नफ़रत करता हो, बेटे के पेट में दर्द हो रहा हो, लेकिन फिर भी हमारी मुंख्र परेशानी तो वो चिल्लर और पसन्दीदा शो हैं।

देखिए, ज़िन्दगी ऐसे ही चलती है। एक दिन आप मर जायेंगे। मैं जानता हूँ कि यह स्वाभाविक है, लेकिन मैं बस आपको याद दिला रहा हूँ, अगर आप भूल गये हों तो। आप और आपके जितने भी जानने वाले हैं, सब एक दिन मर जायेंगे, इसलिए इस छोटी-सी ज़िन्दगी में, आपके पास लोड लेने का टाइम ही नहीं है। सच में, बिलकुल भी नहीं और अगर आप यूँ ही हर बात का लोड लेते रहेंगे, बिना सोचे-समझे तो यक़ीन मानिए एक दिन आप ही किसी एम्बुलेंस में 'लोड' हो जायेंगे।

लोड न लेना भी एक ख़ूबसूरत कला है।

भले ही यह बात अजीब लगे और मैं आपको बेवकूफ़ लगूँ, लेकिन मैं आपको अपना फ़ोकस बढ़ाने और प्राथमिकताएँ तय करने की कला के बारे में बताना चाहता हूँ। आपको तय करना होगा कि क्या चीज़ें आपके लिए मायने रखती हैं, और क्या बस आपने अपनी कल्पना में ज़रूरी बना रखी हैं। यह काफ़ी मुश्किल है। इसमें पूरी ज़न्दगी की प्रैक्टिस और अनुशासन लग जाता है और फिर भी आप कामयाब नहीं हो पाते। लेकिन शायद यह सबसे मूल्यवान संघर्ष है, जो हर किसी को करना चाहिए और शायद ज़िन्दगी का यही ज़रूरी संघर्ष है। क्योंकि हर बात और हर इन्सान जिसका आप बहुत लोड लेते हो-तो आपको महसूस होता है कि आप उस आराम और खुशी भरी ज़िन्दगी के अधिकारी हो, जिसे कोई दूसरा जी रहा है। यही तो कमज़ोरी है और यह चिन्ता आपको ज़िन्दा खाये जाती है। आपको हर कठिनाई अन्याय लगती है, हर चुनौती एक असफलता, हर असुविधा निजी पतन, हर असहमति एक धोखा। आप अपने ही दुख और पश्चात्ताप में धँसते चले जाते हैं और इस पर आपके अन्तर्मन की आवाज़ और नमक छिड़क जाती है। इस सबका कोई अन्त नहीं है। लोड़ नहीं लेने की ख़ूबसूरत कला जब लोग लोड नहीं लेने की ठान लेते हैं, तो उन्हें हर समय एक शान्ति का एहसास होता है, ऐसी शान्ति जो हर तूफ़ान को झेल सकती है। वे ऐसा इन्सान बनने को प्रेरित होते हैं जो किसी चीज़ से परेशान नहीं होता और किसी से नहीं छिपता।

लेकिन ऐसा इन्सान, जिसके कोई भाव नहीं होते, जिसके लिए कोई चीज़ मायने नहीं रखती, उसे 'पागल' कहा जाता है। आप निःसन्देह वह बनना नहीं चाहेंगे।

तो फिर लोड़ नहीं लेने का क्या मतलब है? चलिए तीन पॉइंट्स पर नज़र डालते हैं जो आपको साफ़ समझने मैं मदद करेंग।

1. लोड न लेने का यह मतलब नहीं है कि आप विरक्त ही हो जाओ। इसका मतलब है कि अपने 'अलग' होने से भी सहज रहो।

इसे और स्पष्ट करते हैं। उदासीन होने में कोई तारीफ़ या ख़ास बात नहीं है। जो लोग उदासीन होते हैं, वे वास्तव में कमज़ोर और डरे हुए होते हैं। वे बस सोफ़े पर पड़े रहकर, इंटरनेट पर दूसरों को ट्रोल करते हैं। वास्तव में, उदासीन लोग उदासीन होने की कोशिश ही इसीलिए करते हैं क्योंकि वे पहले ही ज़िन्दगी का बहुत लोड ले चुके होते हैं। वे अपने बालों तक का लोड लेते हैं और उन्हें धोना और सँवारना बन्द कर देते हैं। वे अपने आइडिया का भी लोड लेते हैं और उसके बजाय ताना मारना शुरू

कर देते हैं। वे किसी को अपने पास तक नहीं आने देते, और खुद को ख़ास, अनोखा समझते हैं, उन्हें लगता है कि कोई उनकी समस्या समझ ही नहीं पायेगा।उदासीन लोग दुनिया से डरते हैं और अपने ही चुनावों में सिमटकर रह जाते हैं। इसलिए वे कभी कोई ढंग का फ़ैसला नहीं कर पाते। वे धुँधलके के पीछे रहकर, अपनी ही सोच के दलदल में फँसते जाते हैं और वास्तविक ज़िन्दगी से दूर भागते
ज़िन्दगी का एक और छिपा हुआ सच है कि आप बना लोड़ लिए रह ही नहीं सकते। आपको कुछ चीज़ों का लोड तो लेना चाहिए/ यह हमारी बायोलॉजी का ही
हिस्सा है कि हम हर समय किसी-न-किसी चीज़ की फ़िक्र करते रहें। सवाल यह है कि हम किस चीज़ का लोड लें? लोड लेने के लिए हमें किसका चुनाव करना चाहिए? और जो चीज़ ज़रूरी नहीं है, उसका लोड़ लेने से कैसे बचें? हाल ही में मेरी मॉम को उनके ही एक क़रीबी दोस्त् ने काफ़ी पैसों का चूना लगा दिया। क्या मुझे इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ना चाहिए। मैं बसु अपने कन्धे उचेंकाकर, मोचा पीते हुए द वायरका अगला सीज़न डाउनलोड कर लू और बोलूँ सॉरी मॉम। लेकिन इसके बजाय, मुझे तेज़ गुस्सा आया। मैं पूरी तरह चिढ़ गया। मैंने कहा, "उसे मज़ा चखाते हैं मॉम । हम वकील के पास जायेंगे और वो उस मक्कार का दिमाग् ठिकाने लगायेगा। क्यों? क्योंकि मैंने लोड लेना छोड़ दिया है। अगर ज़रूरत पड़ी तो मैं उस् आदमी की ज़िन्दगी बर्बाद् कर् ढूँगा।"
यह लोड न लेने के पहले पॉइट को दशाता है। जब हम कुहते हैं, "अरे देखा, मार्क मैंसन तो लोड़ ही नहीं लेता," तो हमारा यह मतलब नहीं है कि मार्क मैंसन् को किसी भी चीज़ की परवाह नहीं है; बल्कि इससे उलट, हमारा मतलब होता है कि मार्क मैंसन अपने लक्ष्य के बीचु आने वाली कठिनाइयों का लोड़ न्हीं लेता, उसे जो सही लगता है, ज़रूरी लगता है वह करता है, उसे कुछ लोगों के चिढ़ जाने की परवाह नहीं है। हमारा मतलब है कि मार्क मैंसन को ज़रूरत पड़े तो वह अपने ही बारे में थर्ड पर्सन की तरह लिख लेता है। वह लोड नहीं लेता। यह तो काफ़ी क़ाबिले-तारीफ़ है। नहीं, मैं नहीं बुदधू-ये कठिनाइयों वाला मामला, भिन्न बनने की चाह, किसी के आदरशों के लिए एक बहिष्कृत, ठुकराया हुआ इन्सान। असफलता की आँखों में देखने की हिम्मत और फिर उसे ठैंगा दिखा देना। जो लोग कठिनाइयों, असफलता या ख़ुद के शर्मिन्दा होने का लोड नहीं लेते, वही लोग वास्तव में हँसते हैं और अपनी म्जी की चीजे करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यही सही है। वे जानते हैं कि यह ख़ुद उनसे भी ज़्ादा इम्पोर्टेट हैं, उनकी अपनी भावनाओं से ज्यादा, उनके अपने गर्व या अहम् से ज्यादा ज़रूरी है। वे कहते हैं, "भाड़ में जाओ", तो उनका मतलब हर चीज़ से नहीं, सिर्फ़ ज़िन्दगी के ग़ैर-ज़रूरी मसलों से होता है। वे अपना लोड वास्तविक

मुद्दों के लिए बचाकर रखते हैं दोस्त, परिवार, मक़रसद और कुछ ज़रूरी फ़साद। वे अपनी चिन्ताएँ ज़रूरी मामलों के लिए बचाने लगते हैं, तो बदले में लोग उन्हीं की चिन्ता करना शुरू कर देते हैं। क्योंकि ज़िन्दगी का एक और छिपा हुआ सच है कि आप किसी के लिए ख़ास और ज़िन्दगी बदलने वाले इन्सान तब तक नहीं हो सकते, जब तक कि किसी ट्रसरे के लिए मज़ाक़ या शर्मिन्दगी का विषय न हों। हम सभी किसी के लिए हीरो तों किसी के लिए विलेन हैं क्योंकि कठिनाइयों के बिना तो जीवन ही नहीं है। कहते हैं न कि "जहाँ जाइयेगा, हमें पाइयेगा" तो यही असफलता और कठिनाइयों के लिए भी सच है। भले ही आप कहीं भी चले जायें, मुसीबतों का एक बड़ा-सा पहाड़ आपका इन्तज़ार कर रहा होता है। यह बिलकुल नॉर्मल है। इससे आप भाग नहीं सकते। चयन आपका है कि कौन-सी मुसीबत आप झेलने को तैयार हैं। 2. कठिनाइयों का लोड न लेने के लिए, आपको ज़िन्दगी में कठिनाई से बड़ी किसी और चीज़ का लोड लेना होगा।

मान लीजिए आप एक जनरल स्टोर पर हैं, और आप देखते हैं कि एक वृद्ध महिला कैशियर पर चिल्ला रही है, क्योंकि वह उसका तीस सेंट का कूपन नहीं ले रहा। वह महिला इतना लोड क्यों ले रही है? सिर्फ़ तीस सेंट की ही तो बात है।

मैं आपको बताता हूँ क्यों उस महिला के पास शायद अब ज्सरादा कुछ करने को है नहीं, सिवाय घर बैठकर कूपन काटने के। वह वृद्ध और अकेली है। उसके बच्चे ज़रूर उसे छोड़कर चले गये हैं और शायद कभी मिलने भी नहीं आते होंगे। पिछले तीस सालों से उसने सेक्स भी नहीं किया होगा। उसे गैस पास करने तक के लिए कमर दर्द को सहना पड़ता होगा। उसकी पेंशन भी अपनी आखिरी साँसें गिन रही होगी, और यक्ीनन वो यूँ ही कैंडीलैंड के सपने देखते हुए अपने डाइपर में मर जाने वाली होगी। उसके लिए तो ये कूपन ही खास हैं। यही उसकी अभी की पूँजी है। वह और उसके वह कूपन, यही उसकी दुनिया है। तो वह इन्हीं का लोड ले सकती है, क्योंकि उसके पास कुछ और करने को नहीं है। जब वह सत्रह साल का, मुँहासों वाला लड़का अपने रजिस्टर का वास्ता देते हुए कूपन लेने से मना करता है तो आप समझ सकते हैं कि दादी माँ किस क़दर फट पड़ेंगी। अस्सी साल का लोड एक तूफ़ान की तरह फूट पड़ेगा और "हमारे दिनों में तो, लोग बुजुर्गों का सम्मान किया करते थे" जैसी कहानियाँ निकल पड़ेंगी।

जो लोग समरकैम्प में बँट रही आइसक्रीम की तरह लोड भी धड़ल्ले से लेते रहते हैं, उनके साथ समस्या यह है कि उनके पास करने को कुछ ख़ास है नहीं।

अगर आप भी छोटी-छोटी बातों का लोड लेते रहते हैं जैसे-आपके एक्स- ब्बॉयफ्रेंड की नयी फेसबुक पिक्कर, टी.वी. रिमोट की जल्दी ख़त्म होने वाली बैट्री, सेल में 2 के

साथ 1 फ्री मिलने वाला सेनेटाइजर गँवाना-तो शायद आपकी ज़िन्दगी में भी करने को कुछ ख़ास है नहीं। और आपकी असली समस्या ये है वह हैंड सेनेटाइज़र नहीं। न ही वह टी. वी. रिमोट।
एक बार मैंने एक कलाकार को कहते सुना था, जब किसी इन्सान के पास कोई समस्या नहीं बचती, तो उसका दिमारा ऑटोमेटिकली समस्या के आविष्कार में लग जाता है। मुझे लगता है कि ज्ज़ादातर लोग-ख़ासकर पढ़े-लिखे, लाड़- दुलार में पले मध्यमवरगीय गोरे लोग-जिसे "लाइफ़ का प्रॉब्लम" मानते हैं, वह वास्तव में चिन्ता के लिए कुछ नहीं बचने का साइड-इफ़ेक्ट ही होता है।
इससे साबित होता है कि ज़िन्दगी में कुछ महत्त्पूर्ण और मतलब की चीज़ तलाशने से आपका टाइम और एनर्जी दोनों सही जगह लग जाते हैं क्योंकि अगर आप कुछ काम की चीज़ नहीं हूँढ पाये तो आप बेकार और फ़ालतू मसलों का लोड लेने लगते हैं।
3. भले ही आपने महसूस किया हो या नहीं, लेकिन आप हमेशा लोड लेने के बहाने तलाशते रहते हैं।
लोग लोड न लेने के लिए पैदा नहीं हुए हैं। दरअसल वे पैदा ही लोड लेने के लिए हुए हैं। आपने किसी बच्चे को क्या इस बात के लिए आँसू बहाते देखा है कि उसकी टोपी का रंग सही शेड का नीला नहीं है? बिलकुल। हम भी बहुत कुछ वैसे ही हैं। जब हम छोटे होते हैं, तो हर चीज़ नयी और रोमांचक लगती है, और हर बात हमारे लिए बहुत मायने भी रखती है। इसलिए, हम ख़ुब लोड लेते हैं। हम हर चीज़ और हर इन्सान का लोड लेते हैं। लोग हमारे बारे में क्या कहेंगे, वह क्यूट लड़की। लड़का हमें पलटकर फ़ोन करेगा या नहीं, हमारी जुराबें मैचिंग की हैं या नहीं, हमारे बर्थडे पर जो गुब्बारे लगे हैं, उनका रंग कैसा हो।
जैसे-जैसे हम बड़े होने लगते हैं, तो अनुभव के फ़ायदे के साथ (और समय को जाता हुआ देखकर), हम ध्यान देने लगते हैं कि उनमें से बहुत-सी चीज़ें लम्बे समय तक हमारी ज़िन्दगी पर असर नहीं करतीं। जिन लोगों की बातों को हम दिल से लगा लेते थे, वे तो अब हमारी ज़िन्दगी में हैं भी नहीं। जिस 'इनकार ने कभी हमें बहुत तकलीफ़ दी थी, वह वास्तव में हमारे लिए अच्छा रहा। हमें एहसास होता है कि लोग हमारी बाहरी चीज़ों पर कितना कम ध्यान देते हैं, और हम भी उनसे उबरने की कोशिश करते हैं। देखा जाये, तो हम उन चीज़ों का चयन करने लगते हैं, जिनकी वास्तव में परवाह किये जाने की ज़रूरत है। इसी को मैच्योरिटी या परिपककता कहते हैं। यह अच्छी चीज़ है; आपको भी इसे अपनाना चाहिए। परवाह किये जाने लायक मसलों को पहचानना ही मैच्योरिटी है। जैसे द वायूर (जिसे मैं अभी भी

डाउनलोड करता हूँ) में बंक मोरलैंड अपने पार्टनर डिटेक्टिव मैकनल्टी से कहता है; "तुम उनका भी लोंड लेते हो, जिनका लोड तुम्हें नहीं लेना चाहिए।"

जब हम बड़े होते हैं और मध्य आयु में प्रवेश करते हैं, तो हममें कुछ बदलाव आने लगते हैं। हमारी एनर्जी कम होने लगती है और हमारी पहचान मज़बूत हो जाती है। हम जानते हैं कि हम कौन हैं और हम ख़ुद को स्वीकार लेते हैं, उन हिस्सों के साथ भी, जो हमें ज्यादा दिलचस्प नहीं लगते। यह अजीब है, लेकिन इसमें ही हमें आज़ादी महसूस होने लगती है। हमें अब हर चीज़ का लोड लेने की ज़रूरत नहीं होती। ज़िन्दगी जो है, वो है। हम इसे मान लेते हैं, इसकी सारी ख़ुबियों और ख़ामियों के साथ। हमें एहसास हो जाता है कि हम कभी कैंसर का इलाज नहीं ढूँढ़ पायेंगे न ही किसी विश्व सुन्दरी के साथ सो पायेंगे, और इसमें कोई ख़राबी नहीं है। ज़िन्दगी चलती रहती है। अब हम अपनी चिन्ताओं को ज़िन्दगी के ज़रूरी मसलों के लिए बचाना शुरू कर देते हैं: हमारा परिवार, अच्छे दोस्त, गोल्फ। वास्तव में ये हमारे लिए पर्याप्त भी होता है। यही एहसास वास्तव में ख़ुश करता है और हम सोचने लगते हैं, शायद वो शराबी बुकोवस्की सही कह रहा था-कोशिश मुत करो'।

तो मार्क, इस किताब का पोॉइंट क्या है?

यह किताब आपको ज़रूरी और ग़ैर-ज़रूरी के बीच चयन में स्पष्टता देगी। आपका नज़रिया इससे और स्पष्ट होगा। मैं मानता हूँ कि आज के समय में हम मनोवैज्ञानिक महामारी का सामना कर रहे हैं, जहाँ लोग मानना ही नहीं चाहते कि हालातों का कभी-कभी नियन्त्रण से बाहर चले जाना सामान्य है। मैं जानता हूँ कि यह किसी आलसी की कही बात लग रही है, लेकिन मैं वादा करता हूँ कि यह ज़िन्दगी/मौत जैसे मसले की तरह ही गम्भीर है। जब हम मानते हैं कि चीज़ों का नियन्त्रण से बाहर जाना सामान्य नहीं है, तो हम बेध्यानी में खुद को दोष देना शुरू कर देते हैं। हम सोचने लगते हैं कि हममें ही कुछ कमी है, और इसे अनदेखा करने के लिए हम अनाप-शनाप हरकतें शुरू कर देते हैं, जैसे चालीस जोड़े जूते ख़रीद लेना या मंगलवार रात को वोदका के साथ ड्रग्स ले लेना या स्कूल के बच्चों से भरी हुई बस पर गोलियाँ चला देना।

यह सोच कि ज़िन्दगी में उतार-चढ़ाव सामान्य नहीं है, हमारे अन्तर्मन की आवाज़ को हम पर हावी होने का मौक़ा दे देती है।

लोड नहीं लेने का सिम्पल-सा अर्थ है ज़िन्दगी के प्रति हमारी उम्मीदों को एक नये नज़रिये से देखना और ज़रूरी और गौर-ज़रूरी चीज़ों के बीच चुनाव करना। यह योग्यता 'व्यावहारिक रूप से हमारे ज्ञान की बत्ती जलायेगी।

नहीं, वो जादुई- चमत्कारी प्रकाश नहीं, जहाँ सब तकलीफे ख़्म हो जायेंगी, जैसी बकवास थ्योरी नहीं। इससे उलट, मैं समझता हूँ कि एक व्यावहारिक समझ हमें उस सोच के साथ सहज बनायेगी, जहाँ हमें ज्ञात हो जाता है कि कुछ तकलीफ़ों को आप टाल नहीं सकते-भले ही आप कुछ भी कर लें, लेकिन ज़िन्दगी के पैकेज में आपको असफलता, नुक़सान, पछतावा और मौत मिलते ही हैं, अगर एक बार आप ज़िन्दगी के इन थपेड़ों को सहने के लिए तैयार हो जायें (और मेरा वश्वास कीजिए, ये थपेड़े भारी मात्रा में पड़ेग), तो एक तरह के आध्यात्मिक मार्ग पर चल पड़ेंगे।

आखिरकार, दर्द से पार पाने का एकमात्र तरीक़ा उसे सहन करना ही है।

यह किताब आपके दर्द या तकलीफ़ को कम करने का लोड नहीं लेती और यही इसकी ईमानदारी है। यह किताब किसी प्रकार की ग्रेटनेस की गाइड नहीं है-हो भी नहीं सकती, क्योंकि ग्रेटनेस हमारे दिमाग का एक भ्रम है, एक बनाई हुई मंज़िल, जिस पर हम अपने मानसिक मैप के अनुसार चलने की कोशिश करते हैं।

इसके बजाय, यह किताब आपके दर्द को एक औज़ार में, दुख को शक्ति में और आपकी समस्याओं को कुछ बेहतर समस्याओं में बदल देगी यही वास्तव में तरक्की है। अपनी तकलीफ़ों के लिए इसे एक गाइड समझिए, जो तकलीफ़ों को बेहतर तरीक़े से झेलना सिखायेगी, ज्सादा अर्थपूर्ण तरीक़े से, थोड़े प्यार और इन्सानियत के साथ। यह किताब आपके भारी बोझ को कुछ हल्का करेगी, आपके डरों को सहज करेगी और आपको अपने आँसुओं पर हँसने की हिम्मत देगी। मतलब आपको ज़ोर के झटके को धीरे से सहने की तकनीक बतायेगी।

यह किताब आपको उपलब्धियाँ हासिल करना नहीं बतायेगी, बल्कि आपको चीज़ों को छोड़ना और जाने देना सिखायेगी। यह आपको अपनी ज़िन्दगी की कमान अपने हाथ में लेकर, ज़रूरी चीज़ों का चयन सिखायेगी। यह आपको आँख बन्द करके पीछे गिरना सिखायेगी और बतायेगी कि यह नॉर्मल है। यह आपको कम लोड लेना सिखायेगी। यह आपको कोशिश नहीं करना सिखायेगी।

ख़ुशी एक समस्या है

लगभग पच्चीस सौ साल पहले, हिमालय की तलछटी जिसे आज नेपाल के नाम से जाना जाता है, के एक अआलीशान महल में एक राजा रहता था, उसे बेटा होने वाला था। उस बेटे के लिए राजा ने कुछ ख़ास सोच रखा था: वह उस बच्चे की ज़िन्दगी परफ़ेक्ट बनाना चाहता था। वह चाहता था कि उस बच्चे को एक पल के लिए भी तकलीफ़ का एहसास न हो ताकि उसकी हर ज़रूरत, हर हसरत उसी समय पूरी हो।
राजा ने महल के चारों ओर ऊँची दीवार बनवा दी, ताकि राजकुमार बाहर की दुनिया के बारे में न जान पाये। उसने बच्चे को लाड़-प्यार से खूब बिगाड़ा, उसे स्वादिष्ट भीजन और महँगे तोहफ़ों से लाद दिया, उसके आसपास सेवकों की फ़ौज खड़ी कर दी, जो उसकी हर ख्खाहिश पूरी करने के लिए तैयार थी और जैसा कि सोचा गया था, बच्चा इन्सानी तकलीफ़ों से बेखबर बड़ा हुआ।
राजकुमार का पूरा बचपन ऐशो-आराम से गुज़रा। लेकिन बेपनाह ऐशो- आराम के बावजूद, राजकुमार एक खिन्न रहने वाला युवा बना। जल्द ही, उसे अपनी सारी चीज़ें खोखली और मूल्यहीन लगने लगीं। समस्या यह थी कि उसके पिता उसे जो भी देते, वो उसे पर्याप्त नहीं लगता, उसे सब बेमतलब लगता।
एक रात, राजकुमार महल की चारदीवारी से बाहर निकला। उसने अपने सेवकbको नज़दीक के गाँव में चलने को कहा और वहाँ के हालात देखकर डर गया। राजकुमार ने ज़िन्दगी में पहली बार इन्सान की तकलीफ़ देखी थी। उसने बीमार, वृद्ध, बेघर लोगों को देखा। लोग तकलीफ़ में थे, दुखी थे और मर भी रहे थे।
राजकुमार महल में लौट आया किन्तु अब उसे अपने ही अस्तित्व पर सन्देह होने लगा। वह समझ नहीं पा रहा था कि जो कुछ उसने देखा उसे क्या समझे, वह बहुत भावुक हो गया और उसके मन में किसी भी टूसरे युवा की तरह बहुत-सी शिकायतें उठने लगी। राजकुमार ने इस सबका ज़िम्मेदार अपने पिता को माना। राजकुमार ने सोचा कि धनी लोगों के कारण ही बाक़ी लोगों को इतना सहन करना पड़ रहा है, पैसों ने ही उसकी ज़िन्दगी को इतना खोखला बना दिया है। उसने वहाँ से भाग जाने का फ़ैसला किया लेकिन राजकुमार नहीं जानता था कि वह भी कई मायनों में अपने पिता की ही तरह था। उसने भी बड़ी-सी योजना बनायी। वह न सिर्फ़ वहाँ से भागने वाला था, बल्कि अपना राज, अपना परिवार और जो भी उसके पास था, सब कुछ त्यागकर, सड़कों पर धूल में जानवरों की तरह सोकर खुद को यातना देकर, भूखा रहकर और बाक़ी की ज़िन्दगी भीख माँगकर गुज़ारा करने की उसकी योजना थी।
अगली रात, राजकुमार एक बार फिर से महल से निकला, दोबारा कभी न लौटने के लिए। सालों तक वह समाज के बेकार, त्यागे और भूला दिये गये हिस्से की तरह

जीता रहा। जैसा कि उसने सोचा था, वह गहन पीड़ाओं से गुज़रा। उसने बीमारी, भूख, दर्द, अकेलापन और पतन सब सहा। कभी-कभी तो दिन में सिर्फ एक दाना खाकर उसने मौत तक को अपनाने की कोशिश की।

इसी तरह कुछ साल निकल गये; फिर कुछ और लेकिन. कुछ नहीं हुआ। राजकुमार को एहसास होने लगा कि इतनी यातनाएँ सहकर भी उसे वह हासिल नहीं हुआ जिसकी तलाश में वह निकला था। वह समझ नहीं मिली, जिसकी उसने कामना की थी। उसे ब्रह्माण्ड का वह रहस्य भी नहीं मिला, जिसकी उसे तलाश थी। दरअसल राजकुमार वह जान गया, जैसा कि हममें से अधिकांश लोग ऐसे ही जानते हैं. तकलीफ़ पूरी तरह से तोड़ देती है। उन तकलीफ़ों का अगर कोई मतलब नहीं है तो वो ज़रूरी भी नहीं है तथा अमीर होते हुए, बिना मक़सद के तकलीफ़ उठाने का कोई मतलब नहीं है। जल्द ही

राजकुमार इस नतीजे पर पहुँच गया कि उसका आइडिया भी उसके पिता के आइड़िया की तरह बेकार था, और इसके बजाय उसे कुछ और करना चाहिए था। पूरी तरह से परेशान, राजकुमार नहा-धो कर, नदी के पास, एक बड़े से पेड़ के नीचे जा बैठा। उसने तय किया कि वह तब तक इस पेड़ के नीचे से नहीं उठेगा,जब तक उसे कोई दूसरा बड़ा आइडिया नहीं मिल जाता।

जैसा कि प्रचलित है, वह परेशान राजकुमार पेड़ के नीचे 49 दिनों तक बैठा रहा। इतने दिनों तक बैठे रहने पर उसकी बायोलॉजिकल कंडीशन क्या रही होगी के बारे में न सोचकर, हमें देखना चाहिए कि इससे राजकुमार को कई वास्तविक आभास हुए।

उनमें से एक एहसास था: ज़िन्दगी अपने आप में एक यातना है। थनी अपने धन की वजह से तकलीफ़े झेलते हैं। गरीब अपनी निर्धनता के कारण। बिना परिवार के लोग परिवार के लिए तरसते हैं और परिवार के साथ रहने वाले लोग परिवार से ही परेशान होते हैं। दुनिया के सुख भोगने वाले लोग सुख से परेशान होते हैं, और दरिद्र लोग सुखों के अभाव से।

हाँ, यह नहीं कहा जा सकता कि सारी तकलीफ़े बराबर होती हैं। कुछ तकलीफें यकीनन ज्यादा दर्दनाक होती हैं। लेकिन हम सभी किसी न किसी रूप से पीडित तो हैं ही।

कई सालों बाद, राजकुमार ने अपना एक दर्शन बनाकर उसे दुनिया के साथ बॉटा, और यह पहला केन्द्रीय सिद्धान्त बना किः दर्द और नुक़सान को टाला नहीं जा सकता और हम सबको उन्हें सहने की कोशिश करनी चाहिए। उस राजकुमार को बाद में भगवान बुद्ध के नाम से जाना गया। अगर आपने उनके बारे में नहीं सुना है,

तो ज़ान लीजिए कि वह एक महान इन्सान थे। हमारी बहुत-सी धारण्ाओं और विश्वास के पीछे एक आधार होता है। आधार यह कि खुशी एक गणित है, जिसे यह किसी निर्धारित स्कूल या परिसर में जाकर हासिलू किया जा सकता है। अगर मैं x हासिल कर लूँ तो मैं ख़ुश हो सकता हूँ। अगर मैं Y के जैसा दिखने लगूँ तो में खुश हो सकता हूँ । अगर मैं z के साथ रहूँ तो मैं ख़ुश हो सकता हूँ।
हालॉकि यही आधार तो एक समस्या है। खुशी कोई सुलझ सकने जैसी गुथी नहीं है। असन्तुष्टि और बैचैनी मानव प्रकृति के स्वाभाविक हिस्से हैं, और हम देखते हैं कि ख़ुशी उत्पन्न करने के ज़रूरी तत्त्व भी हैं। बुद्ध इस पर अध्यात्म और दा्शनिक नज़रिये से तर्क देते हैं। मैं भी इस अध्याय में वही तर्क दे रहा हूँ, लेकिन मैं यह बायोलॉजिकलू और साथ ही पांडा के नज़रिये से दे रहा हूँ।

हताश पांडा के कारनामे

अगर मैं कोई सुपर हीरो गुढ़ सक्ता, तो वो हुताश/डिप्रेस पांडा कहलाता। उसने आँखों पर मास्क लगाया होता और एक शर्ट पहनी होती, जिस पर बड़ा साग लिखा होता। यह शर्ट उसके बड़े से पेट पर बहुत छोटी होती, और उसकी सुपर पावर लोगों को उनके बारे में कड़ा सच बताने की होती, जो उन्हें जानना चाहिए।
वह बाइबिल विक्रेता की तरह एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े पर जाकर घण्टी बजाता, और कुछ ऐसा कहता, "यक्कीनन, ज्स़ादा पैसा कमाने से आपको ख़ुशी मिलती है, लेकिन इससे आप अपने बच्चं का प्यार नहीं पा सकते," या "अगर आप खुद से पूछें कि आप अपनी पत्नी पर भरोसा करते हैं, तो आपका जवाब शायद न होगा," या "आपको क्या लगता है कि 'दोस्ती' का मतलब सिर्फ लोगों को इम्पेरेस करने की कोशिश ही होता है", और फिर वह घर के मालिक को अच्छे दिन की शुभकामना देकर दूसरे घर की तरफ़ बढ़ जाता।
यह मज़ेदार होता और पागलपन भी, दुखद भी और मूड ठीक करने वाला भी और ज़रूरी भी। आख़िरकार, ज़िन्दगी के बड़े सच अक्सर सुनने में उतने अच्छे नहीं लगते हैं।
हताश पांडा वह हीरो होता, जिसे हममें से कोई नहीं चाहता, लेकिन हम सभी को उसकी ज़रूरत होती। वह हमारे दिमाग की ख़ुराक में जंक फूड के बजाय जबरन हरी सब्ज़ियाँ घुसाने की कोशिश करता। हमें बुरा महसूस करवाने के बावजूद वो

हमारी ज़िन्दरगी बेहतर बनाने की कोशिश करता। हमें नीचा दिखाकर भी वह हमें मज़बूत करता, अँधेरा दिखाकर हमारे भविष्य को रोशन करने की कोशिश करता। उसे सुनना ऐसा लगता मानो हम वह फ़िल्म देख रहे हैं, जिसमें अन्त में हीरो की मौत हो जाती है: ऐसी फ़िल्म भले ही आपको कितना भी रुलाये, लेकिन आपको पसन्द आती है, क्योंकि वह असली लगती है। अब जब हम यहाँ हैं तो हताश पांडा का मास्क मैं ही पहन लेता हूँ और आपको आपका सबसे कड़वा सच बताता हूँ: हम सिर्फ इसी कारण से तकलीफ़ सहते हैं क्योंकि जीव विज्ञान के अनुसार तकलीफे उपयोगी होती हैं। तकलीफे प्रकृति की एजेंट होती हैं, जो हमें बदलाव के लिए प्रेरित करती हैं। हम हमेशा थोड़ी असन्तुष्टि और थोड़ी असुरक्षा के साथ जीते हैं, क्योंकि ये थोड़ी-सी असन्तुष्टि और असुरक्षा ही हमें आविष्कार और जीने के लिए प्रेरित करती है। हमारा स्वभाव ही असन्तुष्ट रहने का है, जो हमारे पास है, हम उससे सन्तुष्ट नहीं हैं, हम सिर्फ़ उसी चीज़ से सन्तुष्ट रह सकते हैं, जो हमारे पास नहीं है। यह निरन्तरता असन्तुष्टि ही हमारी प्रजाति को लड़ने, भिड़ने, बनाने और जीतने का जज्बा देती है। हमारे दर्द और तकलीफ़ मानव विकास के कीट नहीं,
बल्कि उसका ज़रूरी अंग हैं।
दर्द, किसी भी रूप में, किसी भी कार्य को करवाने का हमारे शरीर का सबसे उपयोगी साधन है। चलिए किसी आसान-सी चीज़, मसलन आपके पैरों की उँगली की बात करते हैं। अगर आप मेरी तरह हैं तो जब भी आपके पैर में ठोकर लगती है तो दर्द से चार अक्षरों का वी शब्द बोलते हैं, जिससे पोप फ्रांसिस को कड़ी आपत्ति है। आप यक़ीनन अपने दर्द के लिए निर्जीव चीज़ों को भी कोसने लगते होंगे। जैसे 'स्टुपिड टेबल' या शायद पैर की चोट के कारण आप पूरे इंटीरियर पर ही सवाल उठाने लगते होंगेः "कौन पागल है, जिसने टेबल यहाँ रखी है? मतलब सच में?" लेकिन मैं विषय से भटक रहा हूँ। पैर में ठोकर लगने का वह भयानक दर्द, जिससे आप और मैं, सभी नफ़रत करते हैं, एक ख़ास वजह से होता है। शारीरिक दर्द हमारे नर्वस सिस्टम का प्रोडक्ट है, एक ऐसा मैकेनिज्म जो हमें हमारे शारीरिक भागों का आभास देता है जैसे- हम कहाँ जा सकते हैं और कहाँ नहीं, क्या छू सकते हैं और क्या नहीं। जब हम उन सीमाओं से बाहर जाते हैं, हमारा नर्वस सिस्टम उस दर्द के ज़रिये हमें चपत लगाता है ताकि हम् दोबारा वह न करें।
इस दर्द से हम जितना नफ़रत् करते हैं, यह उतन् ही ज़रूरी है। दर्द हमें लापरवाही में ध्यान देना सिखाता है। यह हमें ये दखने में मुदद करता है कि हमारे लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा। यह हमें हमारी सीमाएँ समझाता है। यह हमें सिखाता है कि गर्म स्टोव के पास मत भटको या इलेक्ट्रिकि सॉकिट पर लोहे की चीज़ें मत

चिपकाओ। इसलिए, हमेशा दुर्द की अनदेखी करके, खुशियों ढुँढ़ना सही नहीं है, क्योंकि दर्द भी कभी- कभी हमारे भले के लिए ज़िन्दगी और मौत कै जितनां ही ज़रूरी होता है। लेकिन दर्द सिर्फ़ फिज़िकल नहीं होता। जैसे जिसने स्टार वास के पहले सीज़न की शुरुआत देखी हो, वह आपको बता सकता है कि इन्सान् तेज़ मानसिक दर्द सहने की क्षमता रखता है। वास्तृव में, एक शोध से साबित हुआ है कि हमारा मस्तिष्क शारीरिक और मानसिक दर्द में कोई फ़र्क़ महसूस नहीं करता। अब में आपको बताता हूँ कि मेरी पहली गुलफ्रेंड मुझे धोखा दे रही थी और जब वह मुझे छोड़कर गयी तो मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा दिलू आइसक्रीम की तरह पिघल जायेगा, ऐसा इसलिए कि सच में दर्द इतना तेज़ था कि मुझे एहसास ही नहीं हुआ कि वह झटका शारीरिक नहीं सिर्फ़ मानसिक था।
शारीरिक दर्द की तरह ही, हमारा मानसिक दर्द भी किसी सीमा का संकेत करता है, जो हमने पार कर दी होती है। हमारे शारीरिक दर्द की तरह ही मानसिक दर्द भी हमेशा बुरा या अनिश्चित नहीं होता। कुछ मामलों में तो भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक दर्द सहना ज़रूरी और स्वास्थ्य के नज़रिये से अच्छा भी होता है। जैसे पैर में ठोकर लगने से हम उस चीज़ से थोड़ा द्र होकर चलना सीख लेते हैं, वैसे ही असपफलता की भावनात्मक तकलीफ़ हमें भविष्य में वैसी ही ग़लतियाँ करने से रोकती है किन्तु यह उस समाज के लिए बहुत ख़तरनाक है, जो ज़िन्दगी की ज़रूरी असहजता को ट्र करता है: हम दर्द से मिलने वाले अनुभव को खो देते हैं। इससे हम अपने आसपास के यथार्थ को देखने से चूक जाते हैं।
हम ख़ुशियों और प्यार भरी ज़िन्दगी के बारे में सोचकर लार टपकाते हैं, लेकिन वास्तविकता में हमारी समस्याएँ ख़्म होने का नाम नहीं लेतीं। सच में, समस्याओं का कोई अन्त नहीं है। अचानक हताश पांडा जाने कहाँ से मेरे पास आ पहुँचा। हमने साथ में मार्गरीटा पी, और उसने मुझे बताया: समस्याएँ कभी साथ नहीं छोड़तीं, वे बस और बढ़ती ही जाती हैं। वारिन बफेट को पैसों की समस्या है; उस शराबी पर्यटक को भी पैसों की समस्या है। बस बफेट की समस्या पर्यटक की समस्या से कुछ कमतर है। ज़िन्दगी इसी तरह चलती है।
"ज़िन्दगी समस्याओं की अन्तहीन सीरीज़ है, मार्क," पांडा ने मुझे बताया। उसने अपने ड्रिंक का घूँट भरा और उस पर लगी छोटी-सी गुलाबी छतरी को ठीक किया। एक पल गुज़रने के बाद मैं सोच रहा था कि पांडा आया कहाँ से। और जब हम
"बिना समस्या वाली ज़िन्दगी की उम्मीद मत करो," पांडा ने कहा। "ऐसी कोई
"एक समस्या का समाधान, देखा जाये तो दूसरी समस्या की शुरुआत होती है।"
दोनों यहाँ बैटठे हैं, तो यह मार्गरीटा बनाया किसने?

चीज़ है ही नहीं। इसके बजाय, अच्छी समस्याओं वाली ज़िन्दगी माँगो।" यह कहकर, उसने अपना गिलास नीचे रखा, अपना टोप सही किया और डूबते सूरज की दिशा में बढ़ गया! ख़ुशियाँ समस्याओं के समाधान से आती हैं। समस्या ज़िन्दगी का अभिन्न अंग है। जब आप जिम मेम्बरशिप ख़रीदकर अपनी सेहत की समस्या सुलझाने की कोशिश करते हैं, तो कुछ और समस्याएँ हमारे सामने खड़ी हो जाती हैं, जैसे-जिम जाने के लिए जल्दी उठना, तीस मिनट तक जिम में पागलों की तरह पसीना बहाना और फिर नहाकर ऑफ़िस जाना, जिससे आप पूरे ऑफ़िस में अपने पसीने की बदबू न फैला दो। जब आप जीवनसाथी के साथ समय न बिता पाने की समस्या सुलझाने के लिए बुधवार रात को 'डेट नाइट' घोषित करते हैं, तो आपको बुधवार के लिए कुछ ऐसी चीजें हूँढनी पड़ती हैं, जिससे आप दोनों ही नफ़रत न करते हों। बढ़िया डिनर के लिए ख़ुब पैसे भी कमाने पड़ते हैं, जिससे आप दोनों के बीच वही पुराना प्यार पनप सके, जो आब आपकी नज़र में फीका पड़ गया है।

समस्याएँ कभी ख़त्म नहीं होतीं; वो सिर्फ अपना रूप बदल लेती हैं या पहले से और भयानक हो जाती हैं।

खुशियाँ समस्याओं के समाधान से आती हैं।

यहाँ मुख्अ शब्द 'समाधान' है। अग्र आप अपनी समस्याओं को नज़रअन्दाज़ कर रहे हैं, या यह मानकर चल रहे हैं कि अआपको कोई समुस्या ही नहीं है, तो आप ख़ुदू के साथ ज्यादती कर रहे हैं। अगर आपको लगंता है कि आपुर्की सुमस्या का कॉई समाधान नहीं है, तो भी आप ख़ुद को फँसा रहे हैं। ख़ुशियाँ सिर्फ़ समाधान में हैं, न कि समस्या नहीं है ऐसा मान लेने में। खुश रहने के लिए हमें कुछ सुलझाने को चाहिए! इसीलिए ख़ुशी क्रिया का ही एक रूप है; यह एक एक्टेविरटी है, न कि कोई ऐसी चीज़ जों परोक्ष ़रूप से आप पर बरस पड़ेगी। इसे आप जादुई रूप से हफ़िटन पोस्ट्र के टॉप टेन लेखों में भी नहीं ढूँढ़ सकृते, न ही यह किसी ख़ास गुरु के प्स रखी है। ज्यादा पैसा कमाने या बड़ा घैरे ख़रीदने से भी नहीं टपक पड़ेग्ी। ख़ुशी किसी जुगह, किसी आइड़िया या किसी ख़ास नौकरी में भी आपका इन्तज़ार नहीं कर रही है-और सच कहूँ तो किसी किताब में भी नहीं है।

खुशी एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, क्योंकि समस्ा का समाधान हमेशा चलता रहने वाला काम है-आज की समस्या के समाधान में ही कल की समस्या की

नींव है। वास्तविक ख़ुशी अपनी पसन्द की समस्या पाने और उसका समाधान ढूँढ़ने में ही है। कभी-कभी समस्याएँ आसान होती हैं: बढ़िया खाना खाना, नयी जगहों पर घूमना, कोई नया वीडियो गेम जीतना, जिसे आप बस ख़रीदने ही वाले थे लेकिन। कभी-कभी समस्याएँ मुश्किल और जटिल होती हैं: अपनी माँ के साथ अपने रिश्ते सुधारना, अपनी पसन्द का कैरियर तलाशना, अच्छी दोस्ती बनाना।

समस्या कोई भी हो, उसका कॉन्सेप्ट वही है: समस्या सुलझाओ, ख़ुश रहो।

बदक़िस्मती से, बहुत से लोगों को ज़िन्दगी इतनी आसान नहीं लगती। ऐसा इसलिए कि चीज़ों को इन दो में से एक तरीक़े से लेते हैं:

1. इनकार: कुछ लोग यह मानने से ही इनकार कर देते हैं कि उन्हें कोई समस्यपा है, वे वास्तविकता से मुँह मोड़ खुद को सच्चाई से दूवूर कर एक भ्रम में रखते हैं। इस तरह शायद वे कुछ समय के लिए खुश हो सकते हैं, लेकिन इससे असुरक्षा, मानसिक रोग और भावनाओं को दबाने की नयी समस्या उठ खड़ी होती है।

2. पीड़ित मानसिकता: कुछ लोग मानते हैं कि वे कुछ भी करके अपनी समस्या को सुलझा नहीं सकते, जबकि सच में वे कर सकते हैं। पीड़ित अपनी समस्या के लिए दूसरों को या हालातों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। इससे उन्हें कुछ समय के लिए तो बेहतर महसूस होता है, लेकिन वे गुस्स, बेचारगी और हताशा की ओर बढ़ रहे होते हैं।

लोग समस्या से मुँह मोड़ते हैं या फिर उसके लिए दूसरों को दोषी ठहराते हैं। क्योंकि यह आसान है और इससे उन्हें बेहतर भी लगने लगता है जबकि समस्या को सुलझाना मुश्किल है और कभी-कभी यह बदतर भी महसूस कराता है। दोष देने और इनकार करने से हम तुरन्त एक नतीजे पर पहुँच जाते हैं। यह अस्थायी रूप से समस्या से भागने का तरीक़ा है, और इससे हममें एक उत्साह आता है, जो बेहतर महसूस कराता है।

बेहतर वाली यह फीलंग कई रूपों में आती है। फिर वह चाहे शराब पीकर हो या दूसरों को दोष देकर, या फिर किसी जोख़िम भरे एडवेंचर से हो। ये 'बेहतरी' ज़िन्दगी के खोखले अनुत्पादक तरीक़े हैं। सेल्फ़ हेल्प' के नाम पर दुनिया का अधिकतर कारोबार ऐसे ही चल रहा है, बजाय वास्तविक रूप से समस्या सुलझाने के। बहुत से सेल्फ़-हेल्प गुरु आपको इनकार के भिन्न तरीक़े सिखाकर या किसी तरह की एक्सरसाइज़ कराकर कुछ समय के लिए "फ़ील गुड' करा देते हैं, जबकि वास्तविक मसले को वे पूरी तरह से अनदेखा कर जाते हैं। याद है, कोई भी वास्तविक रूप से खुश इन्सान कभी शीशे के सामने खड़ा होकर यह नहीं दोहराता कि वह खुश है। ये 'बेहतरी' या नशा कई प्रकार की लतों को भी जन्म देता है। समस्या दबाने के लिए

आप जितना उन पर निर्भर होते हैं, उतना ही वह आप पर हावी होते हैं। इस तरह देखें तो, लत किसी भी चीज़ की हो सकती है, यह इस पर निर्भर करता है कि आप किस प्रेरणा से उसका इस्तेमाल कर रहे हैं। द्द दबाने का हम सबका अपना तरीक़ा होता है, और सामान्य स्तर पर इसमें कोई बुराई भी नहीं है। लेकिन जितना हम दर्द को अनदेखा करते हैं, उतना ही विकराल रूप् यह धारण करता जाता है।

भावनाओं को ज़रूरत से ज्यादा महत्तव दिया गया है

भाव किसी ख़ास मक़सद से विकसित होते हैं: ज़िन्दा रहने में हमारी मदद के लिए तथा कुछ और बेहतर करने के लिए। बस, इतना ही। उनका काम बस हमें यह बताते रहना है कि क्या सही है और क्या ग़लत-न इससे ज्ज्रादा, न इससे कम। जैसे गर्म स्टोव छू लेने का दर्द आपको दोबारा इससे दूर रहना सिखाता है, वैसे ही अकेलेपन का दुख आपको वे चीज़ें करने से रोकता है, जिनसे आप अकेलापन महसूस करें। इमोशन बस वे बायोलॉजिकल संकेत हैं जो आपके फ़ायदे के लिए आपको कुछ बदलावों की तरफ़ प्रेरित करते हैं। देखिए, मेरा मतलब आपके दुखों को कम करके आँकना नहीं है। हो सकता है आपके शराबी पिता ने आपकी बाइक चुरा ली हो, जब आप आठ साल के थे, और आप अब भी उस तकलीफ़ से नहीं निकल पाये हों। अगर ऐसा है तो इसकी वजह है कि आपने उस समस्या को यूँ ही बिना सुलझाये, अपने मन में गाँठ की तरह रह जाने दिया। दूसरे शब्दों में कहें तो नकारात्मक इमोशन एव्शन लेने को प्रेरित करते हैं। जब आपको लगे कि आपके मन में नकारात्मक भाव आ रहे हैं, तो यह मान लेना चाहिए कि अब कुछ करने का समय आ गया है। दूसरी तरफ़, पॉज़िटिव इमोशन आपके काम का इनाम हैं। जब आप सकारात्मक भाव को महसूस करते हैं, तो ज़िन्दगी आसान लगने लगती है। लगता है अब करने को कुछ है ही नहीं, बस मज़े करो। लेकिन फिर, हर चीज़ की तरह ये सकारात्मक भाव भी चले जाते हैं, क्योंकि ज़िन्दगी में समस्या का आना तो कोई टाल नहीं सकता।

भाव हमारी ज़िन्दगी के समीकरण का एक भाग है, लेकिन वह पूरा समीकरण नहीं है। सिर्फ इसलिए कि किसी चीज़ से हमें बेहतर महसूस होता है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह चीज़ अच्छी ही है। ऐसे ही अगर किसी चीज़ से हमें बदतर महसूस होता है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह चीज़ बुरी है। इमोशन सिर्फ

संकेत हैं, सलाह है, जो हमारा दिमार हमें देता है, ये आदेश नहीं हैं। इसीलिए, हमें हमेशा अपनी भावनाओं पर भरोसा नहीं करना चाहिए। वास्तव में, मुझे लगता है। कि हमें अपनी भावनाओं से सवाल पूछने की आदत डाल लेनी चाहिए। बहुत से लोगों को निजी, सामाजिक या सांस्कृतिक कारणों से भावनाओं को दबाना सिखाया जाता है-ख़ासकर, नकारात्मक भावनाओं को। अफ़सोस की बात है कि ऐसे नकारात्मक भावों से इनकार उन तथ्यों से भी इनकार है जिनकी मदद से इन्सान अपनी समस्या को सुलझा सकता था। परिणामस्वरूप, ऐसे लोग पूरी ज़िन्दगी समस्याओं से घिरे रहते हैं और अगर वे समस्या नहीं सुलझा सकते, तो वे खुश भी नहीं रह सकते। याद है न, दर्द का भी एक मक़सद होता है।

लेकिन ऐसे भी लोग हैं जो अपनी भावनाओं को ज्यादा ही तूल देते हैं। उनके हिसाब से हर चीज़ का वही कारण है, जो उन्हें महसूस हो रहा है। 'ओह, मैंने तुम्हारी विंडशील्ड तोड़ दी, लेकिन मेरा न सच में दिमाग ख़राब हो रहा था, मैं उसे सँभाल ही नहीं पाया' या 'मैंने कॉलेज छोड़ दिया और अलास्का चला गया, क्योंकि मुझे वही सही लगा।' सिर्फ भावनाओं के आधार पर लिए गये फ़ैसले, जिनकी कोई वास्तविक वजह नहीं होती, अन्त में आपकी लुटिया डुबो ही देते हैं। आपको पता है कौन अपने फ़ैसले भावनाओं की वजह से करता है? तीन साल के बच्चे और कुते। आप जानते हैं इसके अलावा वे और क्या कर सकते हैं? कारपेट पर पॉट्टी।

भावनाओं में बहकर लिए गये फ़ैसले इसलिए फ़ेल हो जाते हैं, क्योंकि कोई भी इमोशन ज्यादा समय तक नहीं टिकता। आज जो चीज़ हमें ख़ुशी दे रही है वो कल हमें ख़ुश नहीं रख पायेगी, क्योंकि हमारी बायोलॉजी को हमेशा कुछ और चाहिए होता है। ख़ुशियों पर टिकने का मतलब है, कभी न ख़त्म होने वाला "कुछ और"-एक नया घर, एक नया रिश्ता, एक और बच्चा, पगार थोड़ी और बढ़ना। हमारी सारी मेहनत और तनाव के बावजूद, हम अन्त में भी उतना ही खालीपन महसूस करते हैं, जितने ख़ाली हम शुरुआत में थे।

मनोचिकित्सक कई बार हेडोनिक ट्रेडमिल' के कॉन्सेप्ट का सन्दर्भ देते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है सुख विषयक चक्की'। इसके पीछे विचार यह है कि हम पूरी ज़िन्दगी अपने हालात बदलने के लिए संघर्ष करते हैं, लेकिन हमें वास्तव में कोई फ़र्क महसूस नहीं होता।

समस्याँ भी बार-बार हमारे सामने आती हैं, और हम उन्हें अनदेखा नहीं कर सकते। जिस इन्सान से आप शादी करते हैं, उसी से लड़ाई भी करते हैं। जिस घर को आप खरीदते हो, उसकी मरम्मत भी करानी होगी। जिस नौकरी के आपने सपने देखे थे, वही आपको तनाव भी देगी। सब कुछ एक साइड इपफेक्ट के साथ आता है। जो

चीज़ हमें ख़ुशी देती है, पक्का वही तकलीफ़ भी देगी। हमारी जीत ही हमारी हार है। जो हमारे लिए सकारात्मक अनुभव उत्पन्न करता है, वही हमारे नकारात्मक अनुभवों को भी परिभाषित कररेगा। यह दवाई निगलने में कड़वी ज़रूर है। हम उस सोच से प्यार करते हैं, जहाँ एक ऐसी ज़िन्दगी हो। जिसमें ढदेर सारी ख़ुशियाँ हों। हमें वह ज़िन्दगी चाहिए जिसमें कोई तकलीफ़ न हो। हम हमेशा सन्तुष्ट और परिपूर्ण रहना चाहते हैं। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता।

अपना संघर्ष खुद चुनो

अगर मैं आपसे पूछूं, "आप ज़िन्दगी से क्या चाहते हैं?" तो आप कहंगे कि "ज़िन्दगी में मैं ख़ुश रहना चाहता हूँ, मेरा अच्छा-सा परिवार हो, और मेरी पसन्द की नौकरी हो।" आपका जवाब बहुत ही आम और अपेक्षित है। सच पूछा जाये तो इसका कोई मतलब ही नहीं है।

सबको अच्छी चीज़ें चाहिए। हर कोई एक बेफ़िक्र, ख़ुशहाल और आसान ज़िन्दगी जीना चाहता है, प्यार, सेक्स, बेहतर सम्बन्ध चाहता है। आकर्षक दिखना, पैसा कमाना, लोकप्रियता और सबकी सराहना चाहता है।ये तो हर कोई चाहता है। ये चाहना आसान है।

इससे ज्यादा दिलचस्प सवाल है, जो ज्सादातर लोग खुद से नहीं पूछते, "कौन-सा दर्द आप अपनी ज़िन्दगी में चाहते हैं? कौन-सा संघर्ष आप करने को तैयार हैं?" यह सवाल सही मायनों में आपकी ज़िन्दगी के अगले मोड़ को निध्ारित करेगा।

उदाहरण के लिए, ज्यादातर लोग अपने लिए आलीशान ऑफ़िस और ख़ुब पैसे कमाने की चाह रखते हैं-लेकिन उनमें से ही कई लोग सप्ताह में साठ घण्टे काम करना नहीं चाहते, भारी बदलाव, पागलपन भरा पेपरवर्क, कॉपोरिट की साँप सीढ़ी भरी ज़िन्दगी बिताना नहीं चाहते।

बढ़िया सेक्स और लाजवाब रिश्ता तो आअधिकांश लोग चाहते हैं, लेकिन मुश्किल संवाद, अजीब-सी ख़ामोशी, तकलीफ़ और इमोशनल साइकोड्रामा से गुज़रना नहीं चाहते इसलिए वे अलग हो जाते हैं। अलग होकर वे सोचते हैं, 'अगर ऐसा होता तो?' सालों साल तक, जब तक कि सवाल 'अगर ऐसा होता तो?' से बदलकर इसके अलावा क्या? नहीं हो जाता और जब वकील घर पर जाता है और मुआवज़े का पैसा बैंक में, तो वे कहते हैं, "इसकी वजह क्या थी?" अगर बीस साल पहले

उनके सपने और उम्मीदें पूरे नहीं हो पाये तो इसका कारण क्या था?
क्योंकि ख़ुशियों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। ये परेशानियों में से ही अंकुरित होती हैं। खुशी यूँ ही ज़मीन से गुलाब या गैंदे की तरह नहीं उग आती। वास्तविक खुशी, जीवनभर की सन्तुष्टि और अर्थ आपको अपने संघर्षों के चुनाव और उनके प्रबन्धन से ही हासिल करनी होती है। भले ही आप हताशा, अकेलेपन या किसी मानसिक समस्या से गुज़र रहे हों या आपका खड़स बास आपके दन की वाट लगा रहा हो, लेकिन इसका समाधान समस्या से भीगने में नहीं उसे स्वीकार करके उसका हल निकालने में ही है।
लोगों को बढ़िया फिगर चाहिए। लेकिन आपको वह तबब तक नहीं मिल सकता जब तक आप उसके लिए घण्टों जिम में पसीना बहाने को तैयार न हों। या फिर इसके लिए आपको अपनी कैलोरी पर नज़र रखते हुए कम-से-कम खाने पर आना होगा।
लोग अपना बिज़नेस शुरू करना चाहते हैं। लेकिन आप तब तक एक सफल उद्यमी नहीं बन सकते जब तक आपको जोख़िम, अनिश्चितता, निरन्तर असफलता झेलनी नहीं आयेगी, इसके अलावा आपको बिना कुछ कमाये भी पागलों की तरह पूरा दिन मेहनत करने के लिए तैयार रहना होगा।
आप एक जीवनसाथी चाहते हैं। लेकिन आप किसी की भावनाओं की क़दर किये बिना उसे नहीं अपना सकते, और उन भावनाओं के पैकेज में इनकार, रूठना-मनाना, सेक्सुअल टेंशन, फ़ोन की ब्लैंक स्क्रीन को घण्टों घूरने की बेचैनी सब शामिल है। यह प्यार के खेल का हिस्सा है जिसमें आप बिना भाग लिए जीत नहीं सकते।
आपकी सफलता का निर्धारण इससे नहीं होता कि "आप किस चीज़ के मज़े लेना चाहते हो?' सही सवाल यह है कि "क्या आप दर्द झेलना चाहते हो?" ख़ुशियों का रास्ता बहुत से उतार-चढ़ाव और शर्मिन्दगी से भरा होता है।
आपको किसी-न-किसी का चुनाव करना ही होता है। आपको बिना दर्द की ज़िन्दगी नहीं मिल सकती। गुलाब के साथ काँटे भी होते हैं। ख़ुशी तो आसान सवाल है और इसका जवाब हर कोई एक-सा ही देता है।
ज्सादा दिलचस्प सवाल है दर्द। वह कौन-सा दर्द है, जिसे झेलने के लिए आप तैयार हैं? यही वह मुश्किल सवाल है, जो मायने रखता है। यही सवाल आपको कहीं पहुँचा सकता है। यही वह सवाल है जो ज़िन्दगी का नज़रिया बदल सकता है। यही आपको आप, और मुझे मैं बनाता है। यही हमें परिभाषित करके एक-दूसरे से भिन्न बनाता है।

अपनी पूरी युवावस्था में में एक संगीतकार बनने का सपना देखता रहा था-एक रॉकस्टार बनने का सपना। कोई भी बढ़िया-सी गिटार की धुन सुनता, तो ख़ुद को स्टेज पर खड़े देखता। जहाँ मैं ख़ुशी से चिल्लाती भीड़ के सामने, अपनी उँगलियों से मस्त कर देने वाली धुन बजा रहा होता। यह कल्पना मुझे घण्टों तक ड्बोये रखती। मेरे लिए, सवाल यह नहीं था कि क्या मैं भीड़ के सामने गाना गाऊँगा, बल्कि सवाल था कब। मैंने इस सबकी योजना बनायी थी। मुझे बस अपना टाइम निकालना था, फिर एक देशा में दम लगाना था। लेकिन योजना से अलग वास्तव में, सबसे पहले मुझे स्कूल पूरा करना था। फिर मुझे सामान ख़रीदने के लिए कुछ एक्स्ट्ा पैसे चाहिए थे। फिर प्रैक्टिस के लिए ख़ाली समय। फिर एक नेटवर्क बनाना था और अपना पहला परफ़ॉर्मेंस पेश करना था। फिर.. और फिर कुछ नहीं।
आधी से ज्यादा ज़िन्दगी तक इसका सपना देखने के बावजूद, सच में ऐसा कुछ नहीं हो पाया और इसकी व्ह जानने में मुझे बहुत समय लगा, मैंने बहुत संघर्ष भी किया। देखा जाये तो, मैं कभी इसे चाहता ही नहीं था।
असल में मुझे इसके रिज़ल्ट से प्यार था-खुद को स्टेज पर देखने से। मेंरे लिए खुशी से चिल्लाते हुए लोग, और दिल से धुन बजाता मैं -लेकिन इसकी प्रक्रिया से मुझे प्यार नहीं था और इसी वजह से मैं इसमें नाकाम रहा। दरअसल मैंने कोई कोशिश ही नहीं की। मैंने तो इसमें फेल होने लायक कोशिश भी नहीं की। रोज़ की प्रैक्टिस, ग्रुप बनाकर रिह्सल करना, धुन तलाशने का दर्द, लोगों को इकट्टा करके धुन सुनाना, गिटार के ट्रटते तारों को सँभालना.. कुछ भी तो नहीं किया मैंने। यह ऐसा सपना था, जिसके लिए पूरा पहाड़ चढ़ना था और जो बात समझने में मुझे इतना समय लगा, वह यह थी कि मैंने सिर्फ चोटी पर खड़े होने का सपना देखा था,
पूरा पहाड़ चढ़ने का नहीं।
सामान्य रूप से समझँ तो मुझसे कहा जायेगा कि मैंने हार मान ली, या मैंने उसे पाने की कोशिश नहीं की, या मैंने अपने सपने को पूरा नहीं किया, या मैंने समाज के दबाव के आगे घुटने टेक दिये लेकिन सच इनमें से किसी भी बहाने से कम दिलचस्प है। सच यह है कि मैंने कुछ पाने के बारे में सोचा, लेकिन वह पूरा नहीं हुआ, क्योंकि मैंने किया ही नहीं। यही कहानी का अन्त है।
मैं इनाम चाहता था, संघर्ष नहीं। मैं रिजल्ट चाहता था, प्रक्रिया नहीं। मुझे जीत से प्यार था, उस तड़प से नहीं।
और ज़िन्दगी इस तरह नहीं चलती। आप कौन हो, इसका फ़ैसला आपके द्वारा चुने हुए संघर्ष करते हैं। जो लोग जिम का दर्द झेलते हैं , वही मैराथन में जीत दर्ज करते हैं। जो लोग सप्ताह में देर तक काम करना और ऑफ़िस की पॉलिटिक्स पसन्द

करते हैं, वही टॉप तक पहुँचते हैं। जो लोग तनाव और अनिश्चितता झेलने का माद्दा रखते हैं, वही कलाकार बनते हैं। आपकी दृढ़ इच्छा या दम की वजह से नहीं है। यह कोई 'नो पेन, नो गैन' वाला मामला भी नहीं है। यह तो ज़िन्दगी का सबसे आसान और आधारभूत तत्व है: हमारे संघर्ष ही हमारी सफलता तय करेंगे। हमारी समस्याएँ ही ख़ुशियों को
जन्म देती हैं, साथ में दूसरी समस्याओं को भी। देखा, यह कभी न ख़त्म होने वाली सीढ़ी है और अगर आपको लगता है कि आपको चढ़ाई रोकने की इजाज़त मिल गयी है, तो मुझे डर है कि आप पॉइंट से भटक गये हैं क्योंकि इसका मज़ा तो चढ़ाई में ही है।

आप स्पेशल नहीं हैं

मैं एक इन्सान को जानता था; हम लोग उसे जिम्मी बुलाते थे।
जिम्मी हमेशा एक बिज़नेस से दूसरे बिज़नेस में छलाग लगाता रहता था। अगर आप उससे पूछे कि वह क्या कर रहा है, तो वह किसी फर्म का नाम लेगा, जिसका कि वह सलाहकार बना हुआ है, या किसी ऐसे मेडिकल एप्प के बारे में बतायेगा, जिसके फंड के लिए वह एंजल इन्वेस्टर की तलाश में था या वो किसी चैरिटी इवेंट की बात करेगा, जिसका कीनोट स्पीकर उसे बनाया जाने वाला था। या फिर उसके पास ज़्ादा प्रभावशाली गैस पम्प का आइडिया होगा, जिससे वह करोड़ों कमा सकता था। वह इन्सान हमेशा भटकता रहता, अगर आप उससे कुछ देर के लिए भी बात करने खड़े हो जायें, वह बताने लगेगा कि उसका काम किस तरह दुनिया घूमने वाला था, उसके आइडिया कितने बढ़िया थे। वह बड़े-बड़े लोगं के नाम इस तरह लेता, मानो वह किसी अखबार का रिपोर्टर हो।
जिम्मी हमेशा सकारात्मक रहता। वह हमेशा खुद को प्रोत्साहित करता, हमिशा एक हष्टिकोण पर काम करते जाओ और छा जाओ, जाने इससे उसका क्या मतलब था। सच यह था कि जिम्मी ज़िन्दगी से पूरी तरह हारा हुआ इन्सान था-वह सिर्फ़ बातें ही करता, कोई काम नहीं। ज्यादातर नशे में रहने वाला जिम्मी अपना अधिकांश पैसा बार और महँगे रेस्टोरेंट में ख़र्च करता, जिसे वह आअपने 'बिज़नेस आइडिया' का आधार बताता। जिम्मी एक प्रोफ़ेशनल जोंक (लीच) था, जो अपने परिवार के मेहनत

से कमाये हुए पैसों पर पल रहा था, जिनका लेनदेन वह अपने झूठे आइडिया के नाम पर करता रहता। यक़ीनन कई बार वह दिखावटी कोशिश करता, या यूँ ही फ़ोन उठाकर 'बड़े-बड़े नामों से बात करने का दिखावा करता, लेकिन वास्तव में कुछ नहीं था। उसका कोई भी 'आइडिया' कोई बड़ा काम नहीं कर पाया था।
हालाँकि उसने ऐसे ही कई साल निकाले अपनी गलफ्रेंड्स और द्रदराज के रिश्तेदारों के पैसों पर पलते हुए और इसकी सबसे ख़राब बात थी कि जिम्मी को इससे कोई ऐतराज़ नहीं था। उसका आत्मविश्वास भ्रम के स्तर तक था । जो लोग उसका मज़ाक़ बनाते, या उसे सलाह देने की कोशिश करते, वे उसकी नज़र में "ज़िन्दगी के मौक़े गँवा देने वाले लोग थे।" जो लोग उसके बिज़नेस आइडिया को बोगस समझते, वे उसके लिए 'बदतमीज़ और अनुभवहीन थे। उन लोगों में उसकी क़ाबिलियत समझने की क्षमता नहीं थी। जो लोग उसकी उबाऊ ज़िन्दगी का ज़िक्र करते, वह उससे ईष्या करते थे; कहता उसकी सफलता से नफ़रत करते थे।
हालॉकि जिम्मी ने कुछ पैसे भी कमाये थे, लेकिन दूसरे लोगों के आइडिया को अपना बताकर, द्ूसरों से उधार लेकर, या इससे भी बदतर, दूसरों के स्टार्ट-अप में हिस्सा लेकर। वह अक्सर लोगों से पब्लिक में बात करने के पैसे माँगता। (बात किस बारे में, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता।)
इसका बदतर पार्ट था कि जिम्मी को अपनी बकवास पर पूरा भरोसा था। उसका भ्रम इतना मज़बूत था कि उसे उससे बाहर निकाल पाना बहुत मुश्किल था।
1960 के दशक में, उच्च आत्मविश्वास"; अपने बारे में सकारात्मक विचार और बेहतर भावना-मनोविज्ञान उफान पर था। शोध में पाया गया कि जिन लोगों में आत्मविश्वास था, उन्होंने सामान्य तौर पर द्ुसरों से बेहतर प्रदर्शन किया और कम समस्याएँ पैदा कीं। बहुत से शोधकर्ता और नीति निर्धारक यह मानने लगे कि आत्मविश्वास से भरी जनसंख्या के साथ वे समाज का भला कर पायेंगे: अपराध कम होगा, अकादमिक रिकॉर्ड बेहतर होगा, रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे, और लागत कम होने लगेगी। परिणामस्वरूप, अगले दशक, 1970 की शुरुआत में, अभिभावकों को आम्मविश्वास की सलाह दी जाने लगी, जिस पर थेरेपिस्ट, राजनेता और टीचर्स, सभी ज़ोर दे रहे थे। उदाहरण के लिए, ग्रेड्स की वेल्यू बढ़ाई गयी, जिससे कम नम्बर लाने वाले छात्र भी बेहतर महसूस कर सकें। भागीदारी का अवार्ड और बोगस ट्रॉफ़ी भी इसी मक़सद से ईज़ाद किये गये। बच्चों को बेकार के असाइनमेंट्स होमवर्क के तौर पर दिये गये, जैसे कि वे सारे कारण लिखकर लाओ, जिनकी वजह से आपको लगता है कि आप स्पेशल हो, या अपने बारे में वो पाँच चीज़ें लिखो, जो आपको पसन्द हों। पादरी और मिनिस्टर अपनी सभाओं में बताने लगे कि गाड की नज़रों में सब ख़ास

हैं, और सबको किसी खास काम के लिए बनाया गया है, औसत काम के लिए नहीं। बिज़नेस और प्रेरक सेमिनार में भी यही मन्त्र दोहराया जाने लगा। हममें से हर कोई ख़ास है और बड़ी कामयाबी हासिल कर सकता है।

लेकिन अब एक पीढ़ी बाद, और डाटा आ जाने परः हम अपवाद नहीं हैं। अब साबित हो चुका है कि सिर्फ अपने बारे में अच्छा महसूस करने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, जब तक कि आपके पास अच्छा महसूस करने का कोई कारण न हो। साफ़ है कि कठिनाई और असफलता भी उपयोगी है, बल्कि एक सफल और मज़बूत इन्सान बनने के लिए ज़ ्रूरी भी है। स्पष्ट है कि लोगों को 'ख़ास होने का यक़ीन दिलाने या सकारात्मक सोच से आप पूरी जनसंख्या को बिल गेट्स और मार्टिन लूथर किंग नहीं बना सकते। इससे सिर्फ जिम्मी जैसे लोगों की संख्या ही बढ़ेगी।

जिम्मी, भ्रामक स्टार्ट-अप संस्थापक। जिम्मी, जो रोज़ नशा करता है, उसमें कोई वास्तविक गुण नहीं है, सिवाय अपने बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बात करने के। जिम्मी उस तरह का इन्सान है, जो अपने बिज़नेस पार्टनर को 'अपरिपक्क' कहकर चिल्ला सकता है, और फिर कम्पनी के क्रेडिट कार्ड को किसी महँगे होटल में, किसी रशियन मॉडल को ख़ुश करने पर ख़त्म कर सकता है। जिम्मी, वह इन्सान है जिसके अंकल और आंटियों की संख्या तेज़ी से कम होती जा रही है, जिनसे वह लोन ले सकता था।

हाँ, वही आ्मविश्वास से लबरेज़ जिम्मी। वही जिम्मी, जो अपनी तारीफ़ करते हुए यह तक भूल जाता है कि वह क्या करने आया था।

इस आत्मविश्वास या आत्मसम्मान आन्दोलन की सबसे बड़ी समस्या यही थी कि यह आत्मसम्मान का आकलन इससे हो रहा था कि लोग ख़ुद के प्रति कितने सकारात्मक थे। लेकिन किसी का वास्तविक आकलन इस बात से लगाया जा सकता है कि वह अपने नकारात्मक पहलुओं के बारे में क्या सोचता है। अगर जिम्मी जैसा इन्सान 99.9 प्रतिशत समय बेहतर महसूस करता है, जबकि उसके साथ कुछ भी सही नहीं हो रहा तो हम इसे सफल या ख़ुशहाल ज़िन्दगी का आकलन कैसे मान सकते हैं।

जिम्मी में एक अधिकार भाव है। उसे लगता है कि उसे ज़िन्दगी की सारी अच्छी चीज़ें मिलनी ही चाहिए, बिना कुछ करे ही। वह मानता है है कि वह अमीर बनने लायक है, बिना कोई काम किये ही। वह मानता है किसी की मदद किये बिना ही, उसे लोगों के बीच लोकप्रिय होना चाहिए। उसे विश्वास है कि उसके पास एक आलीशान ज़िन्दगी होनी चाहिए, बिना पसीना बहाये।

जिम्मी जैसे लोग ख़ुद के बारे में इस हद तक सकारात्मक होते हैं कि वे अपने आसपास भ्रम का एक घेरा-सा बना लेते हैं। उन्हें लगता है कि वे कई महान काम कर रहे हैं, जबकि वास्तव में वे कुछ नहीं कर रहे होते। उन्हें लगता है कि वे मंच पर कमाल के वक्ता साबित होते हैं, जबकि वास्तव में वे ख़ुद को ही उल्लू बना रहे होते हैं। उन्हें लगता है कि वे सफल स्टार्ट-अप फ़ाउंडर हैं, जबकि सच्चाई में उनका शुरू किया हुआ एक भी काम कभी सफल हुआ ही नहीं। वे ख़ुद को लाइफ़ कोच कहते हैं और द्रसरों से मदद के नाम पर फ़ीस भी लेते हैं, जबकि उनकी ख़ुद की उम्र 25 साल के आसपास होती है, और उन्होंने अब तक अपनी ज़िन्दगी में कुछ भी टिकाऊ नहीं किया होता।

ऐसे अधिकार भाव वाले लोगों में से आत्मविश्वास भ्रामक डिग्री तक टपकने लगता है। यह विश्वास कुछ समय के लिए लोगों को आकर्षित भी कर सकता है। कुछ मामलों में, ऐसे लोगों का भ्रामक आत्मविश्वास अपने आसपास के लोगों को भी संक्रमित कर उन्हें भी अपने बारे में फ़ील गुड़ कराता है। जिम्मी के सारे छल-कपट के बावजूद, मुझे मानना पड़ेंगा कि कई बार मैंने उसके साथ काफ़ी अच्छा समय बिताया है। उसके साथ आप किसी भी तरह की हताशा महसूस नहीं करते।

ऐसे लोगों के साथ समस्या यह है कि ये लोगों को अपने बारे में इतना फ़ील गुड़ करा देते हैं कि कई बार उन्हें अपने नज़दीकी लोगों का भी ध्यान नहीं रहता है, क्योंकि ऐसे लोगों को हमेशा फ़ील गुड की ज़रूरत पड़ती है। ये सारा समय अपने बारे में सोचने में ही लगा देते हैं। आखिरकार, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना कोई आसान काम तो है नहीं।

जब एक बार लोगों में हर चीज़ से ऊपर खुद को अतिरिक्त महत्त्व देने की भावना आ जाती है, तो फिर उनका उससे बाहर निकालना मुश्किल हो जाता है। ऐसा करने का कोई भी प्रयास उन्हें अपनी 'उतकृष्ट्ता पर सामने वाले का प्रहार लगता है, जो उनके टैलेंटागुड-लुक/ सफलता को झेल नहीं पा रहा।

अधिकार भाव रखने वाले लोग खुद को आत्मकाम के एक गुब्बारे में बन्द कर लेते हैं, जिसको बचाये रखने के लिए वे उसके रास्ते में आने वाली किसी भी और कैसी भी चीज़ को ख़त्म कर देते हैं। ऐसे लोग ज़िनदगी में आने वाली हर चीज़ को या तो ईश वचन समझते हैं या फिर ख़ुद उनकी महानता के लिए ख़तरा। उनके साथ कुछ अच्छा होता है तो वे उनके किसी महान करतब की वजह से हुआ होता है। अगर उनके साथ कुछ बुरा होता है तो वह इसीलिए कि कोई उनसे ईष्र्या कर रहा था, और नीचा दिखाना चाह रहा था। यह अधिकार भाव अभेद्य होता है, जहाँ से कोई भी त्कपूर्ण बात नहीं गुज़र सकती। ऐसे लोग अपनी महानता के पोषण के लिए कुछ भी

करते हैं। वे हमेशा श्रेष्ठता का एक मुखौटा चढ़ाये रखते हैं, भले ही कभी सच में मारपीट या गाली-गलौज की नौबत ही क्यों न हो, यह अधिकार भाव एक असफल रणनीति है। यह भी एक तरह का नशा है। यह वास्तव में ख़ुशी नहीं

अपना वास्तविक मूल्यांकन इस बात में नहीं है कि हम सकारात्मक अनुभवों में क्या महसूस करते हैं, बल्कि नकारात्मक अनुभव इन्सान को सही रूप से परिभाषित करते हैं। जिम्मी जैसे इन्सान काल्पनिक सफलता को मुखौटा बनाकर अपनी समस्याओं से मुँह छिपाते हैं। चूँकि वह अपनी समस्याओं का सामना नहीं कर सकता, तो भले ही वह अपने बारे में कितना ही फ़ील गुड़ कर ले, वह एक कमज़ोर इन्सान ही रहेगा।

एक इन्सान जो वास्तव में खुद को महत्त्व देता है, वह अपने नकारात्मक पहलुओं को भी ईमानदारी से स्वीकार करता है-"हाँ, कभी-कभी पैसों के मामले में मैं रैर-ज़िमेदार हो जाता हूँ." "हाँ, कभी-कभी मैं ख़ुद की सफलता को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता हूँ." "हाँ, मैं दूसरों के आसरे ज्ज़ादा रहता हूँ, मुझे खुद पर निर्भर होना चाहिए"-और फिर इन्हें सुधारने की कोशिश करता है। लेकिन अधिकार भाव से ग्रसित लोग, क्योंकि ईमानदारी से अपनी कमियों को स्वीकारने के लायक नहीं होते, तो वे कभी उन्हें सुधारने की कोशिश भी नहीं करते। वे बस एक नशे से दूसरे नशे की ओर भागते रहते हैं और समस्या से बचने के लिए भिन्न-भिन्न प्रयास करते रहते हैं, लेकिन आख़िर में सच्चाई सामने आती ही है, और अब तक छिपाकर रखी गयी समस्याएँ सिर उठाने लगती हैं। सवाल बस यह है कि वह पल कब आयेगा और कितना दर्दनाक होगा।

ताश के पत्तों का ढहना

मैं सुबह 9 बजे बायोलॉजी की क्लास में, अपनी बाँहों को डेस्क पर रख, उनमें अपना सिर छूपाये बैठा था। मेरी नज़र घड़ी की सेकेंड की सूई पर थी, उसकी हर टिक-टिक के साथ टीचर की क्रोमोसोम और मिटोसिस के बारे में समझाने की आवाज़ आ रही थी। किसी भी दूसरे, अपनी ही दुनिया में खोये रहने वाले 13 साल के लड़के की तरह, मैं भी वहाँ बोर हो रहा था। तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई। मिस्टर प्राइस, स्कूल के असिस्टेंट प्रिंसिपल ने अन्दर झाँका। "दखलअन्दाज़ी के लिए माफ़ी चाहता हूँ

मार्क, क्या तुम मेरे साथ एक मिनट के लिए चल सकते हो? और हाँ, अपना सारा सामान भी ले आना।"

अजीब है, मैंने सोचा। बच्चों को प्रिंसिपल के पास भेजा जाता था, लेकिन शायद ही कभी प्रिंसिपल उन्हें लेने ख़ुद आये हों। मैंने अपना सामान लिया और बाहर आ गया। गलियारा ख़ाली था। सामने की दीवार पर सैकड़ों लॉकर थे। "मार्क, क्या तुम मुझे अपने लॉकर तक ले चलोगे, प्लीज़?" "बिलकुल," मैंने कहा, और ख़ुद हॉल में आगे की तरफ़ बढ़ गया। मैंने बैगी जीन्स और उसके साथ ढीली-सी टी-शर्ट पहन रखी थी। मेरे बाल बड़े और हिप्पियों के स्टाइल के थे। हम लॉकर के पास आये।"इसे खोलो, प्लीज़," मिस्टर प्राइस ने कहा; तो मैंने लॉकर खोल दिया। वे मेरे आगे आ गये और मेरा कोट, जिम बैग, बैगपैक उठा लिया, लॉकर का सारा सामान, सिवाय कुछ नोटबुक्स और पेन्सिल छोड़कर। उन्होंने चलना शुरू कर दिया। "मेरे साथ आओ," उन्होंने कहा, बिना पीछे मुड़े। मुझे अब बेचैनी होने लगी। मैं उनके पीछे-पीछे, उनके ऑफ़िस तक गया, जहाँ उन्होंने मुझे बैठने को कहा। उन्होंने दरवाज़ा बन्द करके, लॉक लगा दिया। वे खिड़की के पास गये और उस पर भी ब्लाइंड्स एडजस्ट करके, पूरी तरह बन्द कर दिया। मेरी हथेली पर पसीना आने लगा। यह प्रिसिपल से नॉर्मल मुलाक़ात नहीं थी।

मिस्टर प्राइस बैठे और शान्ति से मेरा सामान टटोलने लगे, पॉकेट चैक कीं, जिप खोल दीं, मेरे जिम के कपड़ों को झाड़ा और उन्हें ज़र्मीन पर रख दिया।

बिना मुझे देखे ही मिस्टर प्राइस ने पूछा, "तुम जानते हो न मार्क, मैं क्या हूँढ रहा

"नहीं," मैंने कहा। "ड्रग्स।"

इस शब्द ने मेंरे छक्के छुड़ा दिये।

"ड-ड-डूग्स?" मैं हकलाया। "कैसी ड्ग्स?"

उन्होंने मुझे गुस्से से देखा। "मैं नहीं जानता; तुम्हरे पास कौन-सी है?" उन्होंने मेरा एक बाइंडर खोला और उसकी छोटी पॉरकिट देखने लगे, जो पैन रखने के लिए बनी थी।

मुझे पसीना आ रहा था, हथेली, बाँह और गले, सब जगह। मेरी कनपटी फड़क रही थी और मेरा चेहरा लाल होकर तपने लगा था। जैसा कि किसी भी तेरह साल के लड़के के साथ होता, जिसकी कि ड्रग्स के शक़ में तलाशी ली जा रही हो। मैं वहाँ से भागकर छिप जाना चाहता था।

"मैं नहीं जानता कि आप किस बारे में बात कर रहे हैं," मैंने विरोध किया, मेरे शब्द मुझे ही इतने कमज़ोर लग रहे थे कि मैं ख़ुद उन पर भरोसा नहीं कर पाता। मुझे लगा कि उस वक्त मुझे विश्वस्त दिखने की कोशिश करनी चाहिए या शायद नहीं।

शायद मुझे डरना चाहिए । झूठे लोग ज्य़ादा विश्वस्त दिखते हैं या डरे हुए? क्योंकि वे जैसे भी दिखते हों, मुझे उनसे उलट दिखना था। विश्वास हासिल करने की कोशिश में मैं और भी ज्यादा हड़बड़ाया हुआ दिखने लगा। यह अन्तर्मन की आवाज़ भी न।
"वह हम देख लेंगे," उन्होंने कहा, अपना ध्यान वापस मेरे बैगपैक पर लगाते हुए, जिसमें बहुत-सी पॉरकेट्स थीं। हरेक में ढेरों आड़-कबाड़ भरा हुआ था-रंग, पैन, क्लास में मिले पुराने नोट्स, नब्बे के दशक की सीडी, जिनके कवर टूटे हुए थे, सूखे हुए मार्कर, पुराना स्कैच पैड, जिसके आधे पत्ने रायब थे, मिट्टी वरौरह।
मेरा पसीना ज़रूर लाइट की तेज़ी से निकल रहा था, क्योंकि टाइम तो मानो ठहर गया था। अभी नौ बजकर कुछ ही मिनट हुए थे। अगला पीरियड लगने में तो अभी समय था, और मैं मानो हर पल मर रहा था। वहाँ सिर्फ़ मैं और मिस्टर प्राइस थे और मेरा मुड़ा-तुड़ा बैगपैक।
जाने कितनी देर बाद, मिस्टर प्राइस ने मेरे बैगपैक की तलाशी बन्द की। कुछ नहीं मिलने से वह नाराज़ दिखाई दे रहे थे। उन्होंने बैग को फ़ुर्श पर उलटा दिया और मेरा सारा सामान ज़मीन पर गिर पड़ा। अब उनका पसीना भी मेरी ही तरह बह रहा था, बस डर की जगह उनमें गुस्सा था।
"आज ड्रग्स नहीं है, हम्म?" उन्होंने सामान्य होकर पूछने की कोशिश की। "नहीं।" मैंने भी सामान्य दिखते हुए जवाब दिया।
उन्होंने मेरा सामान फैला दिया, हर आइटम को अलग-अलग कर, मेरे जिम के सामान के पास उनके छोटे-छोटे देर बना दिये। मेरा कोट और बैगपैक अब उनकी गोद में ख़ाली पड़े थे। उन्होंने आह भरकर दीवार को घूरा। किसी भी दूसरे लड़के की तरह मैं भी ज़ोर से रोना चाहता था, जो ऑफ़िस में बन्द था, जिसका सारा सामान फैला पड़ा था।
मिस्टर प्राइस ने ज़मीन पर रखे सामान को एक बार फिर से खँगाला। उसमें कुछ भी गैर-क़ानूनी, नशे का सामान नहीं था, न ही कुछ ऐसा था जो स्कूल के नियम के ख़िलाफ़ हो। उन्होंने आह भरकर कोट और बैगपैक भी ज़मीन पर फेंक दिया। उन्होंने झुककर अपनी कोहनियाँ अपने घुटने पर रखीं, और हथेली पर चेहरा टिकाकर, मेंरे नज़दीक हुए।
"मार्क, मैं तुम्हं सच बोलने का आख़िरी मौक़ा दे रहा हूँ। अगर तुम मुझे सच बता दोगे, तो इससे तुम्हारा काफ़ी भला हो सकता है। अगर पता चला कि तुम झूठ बोल रहे हो, तो उसका नतीजा बहुत बुरा होगा ।"
थोड़ा हौसला पाकर मैंने थूक निगला।
"अब मुझे सच बताओ," मिस्टर प्राइस ने जानना चाहा। "क्या आज तुम स्कूल में

ड्रग्स लाये थे?"
अपने आँसुओं से लड़ते हुए, गले में ही चीख़ को दबाते हुए, मैंने अपने उत्पीड़क को घूरा और विनती करते हुए कहा, "नहीं, मेरे पास कोई ड्रग्स नहीं है। मुझे नहीं पता कि आप किस बारे में बात कर रहे हैं।"
"ओके," उन्होंने हार मानते हुए कहा। "मुझे लगता है अब तुम अपना सामान इकट्ठा करके जा सकते हो।"
उन्होंने एक आखिरी नज़र ज़मीन पर पड़े मेरे बैगपैक पर डाली, वह किसी टूटे वादे की तरह बेजान पड़ा था। उन्होंने ऐसे ही अपना एक पैर बैग पर रखा, हल्के से थपथपाया, यूँ ही आखिरी कोशिश में। मैं बेचैनी से उनके उठकर जाने का इन्तज़ार कर रहा था, जिससे मेरी जान में जान आये और मैं इस सबको किसी भयानक सपने की तरह भूल जाऊँ।
लेकिन उनका पैर किसी चीज़ पर रुका। "ये क्या है?" उन्होंने पूछा, दोबारा अपना पैर थपथपाते हुए।
"क्या, क्या है?" मैंने कहा।
"इसमें अभी भी कुछ है।" उन्होंने बैग उठाया और उसकी तली को टटोलने लगे। मेरे लिए कमरे में अब अॅंधेरा छाने लगा था; सब कुछ घूम रहा था।
जब मैं छोटा था, तो स्मार्ट व मिलनसार था लेकिन बददिमाग भी था। मतलब कि शरारती अन्दाज़ में । मैं विद्रोही था, छोटी-छोटी बदमाशियाँ करता रहता था। गुस्से और बेचैनी से भरा रहता था। जब मैं बारह साल का था, तो मैंने अपने घर के सिक्योरिटी सिस्टम में रेफ्रिज़रेटर मैग्लेट से सेंध लगा ली, जिससे में बिना पकड़ में आये, घर से आधी रात को बाहर निकल सकूँ। मेरा दोस्त और मैं उसकी मॉम की कार को न्यूट्ल पर छोड़ देते, जिससे हम बिना आवाज़ किये उसे गली तक धक्का देकर ले जा सकें। मैं अबॉर्शन पर लेख भी लिख सकता था, क्योंकि मैं जानता था कि मेरी इंग्लिश टीचर पारम्परिक ईसाई थीं, जिन्हें इन बातों से सख्त ऐतराज़ था। मेरा दोस्त और मैं उसकी मॉम की सिगरेट चुराकर, उन्हें स्कूल गेट के पीछे दूसरे बच्चों को बेच देते थे। मैंने अपने बैगपैक की तली में एक सीक्रट कम्पार्टमेंट बना लिया था, गाँजा छिपाने के लिए।
यह वही सीक्रट कम्पार्टमेंट था, जिसे मिस्टर प्राइस ने हूँढ लिया था। मैंने झूठ बोला था और जैसा कि मिस्टर प्राइस ने वादा किया था, वह मुझे आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे। कुछ घण्टों बाद, पुलिस की गाड़ी में हथकड़ी लगाकर बैठे हुए मैंने सोचा था कि मेरी ज़िन्दगी यहीं ख़त्म हो गयी और एक तरह से मैं सही भी सोच रहा था। मेरे पेरेंटस ने मुझे घर में अलग-थलग कर दिया। निकट भविष्य में मेरे कोई दोस्त नहीं

बनने वाले थे। स्कूल से निकाल दिये जाने की वजह से, अब मुझे बाक़ी के बचे साल घर से ही पढ़ाई करनी थी। मेरी मॉम ने मेरे बाल कटवा दिये और मेरी सारी मार्लिन मैंसन और मैटालिका शर्ट्स उठाकर बाहर फेंक दीं (जो कि 1998 के किसी टीनएजर के लिए मौत की सज़ा से भी बदतर था)। मेरे डैड मुझे सुबह अपने साथ ऑफ़िस ले जाते और मुझसे घण्टों तक पेपर फ़ाइल करवाते। एक बार होमस्कूलिंग ख़त्म होने पर, मैरा दाखिला एक छोटे, प्राइवेट ईसाई स्कूल में करवा दिया गया और इससे आपको हैरानी नहीं होनी चाहिए कि वहाँ मैं पूरी तरह से फिट नहीं हो पा रहा था। आख़रकार अपनी करतूतों से बाहर आकर, मैंने अपने असाइन्मेंट पूरे कर लिए और क्लर्क की ज़िमेदारियों को भी सीखने लगा, तो मेरे पेरेंट्स ने तलाक़ लेने का फ़ैसला कर लिया।

मैं यह सब सिर्फ आपको इसलिए बता रहा हूँ, जिससे आप अन्दाज़ा लगा सकें कि मेरी टीनएज की तो पूरी तरह वाट लग चुकी थी। मैंने सारे दोस्त खो दिये थे, मेरा समुदाय, मेरे क़ानूनी हक़, और अब मेरा परिवार भी, वो भी सिर्फ़ नौ महीने के छोटे से अन्तराल में। बाद में, जब मैं बीस के दशक में था तो मेरे थेरेपिस्ट ने मेरे उस दौर को 'वास्तविक ज़ोर के झटके कहा था और मैं अगला दरशक इसे बदलने में, और इसकी वजह जानने में गुज़ारने वाला था। उस समय मैं ख़ुद को बहुत ही बेबस महसूस कर रहा था।

उस समय मेरी समस्या वे खराब बातें नहीं थीं, जो बोली गयी; बल्कि तकलीफ़ यह थी कि कुछ कहा ही नहीं गया था। मेरे घर की दीवारें उतनी ही सख्त थीं जितने सख्त वॉरेन बफ़ेट पैसे कमाने में और जेना जेमसन एडल्ट मूवीज़ करने में: हम सब अपनी फ़ील्ड के चैम्पियन थे। हमारे आसपास घर की चारदीवारी ढह रही थी और हम ऐसे बर्ताव कर रहे थे, "अरे नहीं, सब ठीक है। बस माहौल में हल्की-सी गर्मी है, लेकिन वैसे सब ठीक है।"

जब मेरे पेरेंटस का तलाक़ हुआ, तो उनके बीच कोई झगड़ा नहीं हुआ; कोई बर्तन नहीं टूटा, न ही किसी ने गुस्से में दरवाज़े बन्द किये, न चिल्ला-चिल्लाकर बहस की गयीं कि किसने किसको धोखा दिया। जब उन्होंने मेरे भाई और मुझे भरोसा दिलाया कि इसमें हमारी कोई ग़लती नहीं थी, तो हमारे बीच में सवाल- जवाब का दौर चला- हाँ, आपने सही पढ़ा-नये तरीक़े से रहने की ज़रूरतों के बारे में। कोई आँसू नहीं बहाया गया। किसी ने ऊँची आवाज़ में बात नहीं की। उसका सबसे ख़ास पल वह रहा, जब मेरे भाई और मुझे बताया गया, "किसी ने किसी को धोखा नहीं दिया है।" ओह, यह तो बढ़िया था। कमरे में हल्की-सी गर्मी थी, लेकिन वास्तविकता में सब ठीक था।

मेरे माता-पिता अच्छे इन्सान हैं। मैं उन्हें इसका दोष नहीं देता (कम-से-कम, अब तो नहीं)। मैं उन्हें बहुत प्यार करता हूँ। उनकी अपनी कहानी है, अपना सफ़र और अपनी समस्याएँ भी, जैसे कि सभी अभिभावकों की होती हैं और उन्होंने भी वही किया जो दूसरे करते हैं। बाक़ी पेरेंट्स की तरह, मेरे पेरेंट्स ने भी अच्छे मक़सद से, अपनी कुछ समस्याएँ मुझे बता दीं, जैसे शायद मैं भी अपने बच्चों को बताऊँगा। जब ऐसे 'वास्तविक ज़ोर के झटके' हमारी ज़िन्दगी में लगते हैं, तो हम बेध्यानी में सोचने लगते हैं कि इन मुश्किलों का कोई हल नहीं है और यही मानसिक अयोग्यता हमें और बेचारा बना देती है, लेकिन यह किसी और चीज़ का भी कारण बनती है। अगर हमारी कुछ समस्याएँ बिना सुलझाये रह गयीं तो हमारा मन अन्दर-ही- अन्दर हमें या तो ख़ास या फिर किसी तरह से डिफ़ेक्टिव मानने लगता है। उसे लगता है कि हम दुसरे लोगों से अलग हैं तो हमारे साथ व्यवहार भी अलग तरीक़े से ही होना चाहिए।

या आसान शब्दों में कहें तो: हममें अधिकार भाव आने लगता है।
किशोरावस्था में मिले दर्द की वजह से मुझमें कुछ ऐसा ही भाव घर कर गया था, जो मेरे वयस्क होने के शुरुआती दिनों में भी रहा। जहाँ जिम्मी के अधिकार भाव ने उसे बिज़नेस के क्षेत्र में एक नक़ली चेहरा दिखाने को प्रेरित किया, और वह ख़ुद को खूब सफल दिखाता था, मैं अपने निजी रिश्तों, ख़ासकर महिलाओं के साथ के रिश्ते में ऐसा ही बन गया। मेरा डर आत्मीयता और स्वीकृति के आसपास विकसित होने लगा, तो मुझे लगातार इसे बढ़ाकर दिखाने की ज़रूरत महसूस हुई। ख़ुद को यह साबित करने के लिए कि लोग मुझे चाहते हैं, प्यार करते हैं मैं इस तरह महिलाओं का पीछा करने लगा जैसे कोई कोकीन का आदी कोकीन हूँढ़ता फिरता है। पहले तो यह मुझे अच्छा लगता था, फिर मैं इसी में घुटता चला गया।
मैं एक खिलाडी बन गया-एक अपरिपव्क, स्वारथी और दिलफेंक खिलाड़ी और लम्बे समय के लिए रिश्तों की एक नक़ली और अस्वस्थ श्रृंखला में उलझकर रह गया। इसमें सेक्स के लिए उतनी लालसा नहीं थी, हालॉकि वह भी मज़ेदार था। लेकिन यह पुष्टिकरण के लिए था। मैं चाहता था कि कोई मुझे चाहे; प्यार करे। जब से मुझे याद है, तब से पहली बार मैं खुद को मूल्यवान समझ पा रहा था। पुष्टिकरण की यह ललक जल्दी ही ख़ुद को ज्ादा महत्त्व देने और अतिरिक्त दुलार में बदल गयी। मुझे लगने लगा कि जो मैं कर रहा हूँ या कह रहा हूँ वह सही है। लोगों का भरोसा तोड़ना, उनकी भावनाओं से खिलवाड़ और फिर बाद में आधे मन से सफ़ाई देकर अपना काम पूरा कर लेना।
हालांकि इस दौरान बहुत से अछे पल बीते, रोमांच भी रहा और मैं कुछ अचछी महिलाओं से भी मिला, लेकिन ज्यादातर इस दौरान मेरी ज़िन्दगी बर्बाद ही रही। ज्यादातर मैं बेरोज़गार रहा, दोस्तों के सोफ़े पर रातें गुज़ारता या फिर अपनी मॉम के घर हद से ज़्यादा शराब पीकर पड़ा रहता। मेरे दोस्तों की संख्या तेज़ी से घटने लगी- और फिर जब मैं उस महिला से मिला, जिसे मैं सच में पसन्द करता था, तब तक ख़ुद में डूबे रहने की मेरी आदत ने सब ख़त्म कर दिया।
दर्द जितना गहरा होता है, उतनी ही लाचारगी हम अपनी समस्याओं के प्रति महसूस करते हैं, और इनसे मुँह फेरने का अपना ही कोई तरीक़ा हूँढ़ लेते हैं। यह भाव दो तरह से काम करता है:
1. मैं कमाल हूँ और बाक़ी सारे बेकार, तो मेरे साथ ख़ास बर्ताव किया जाना चाहिए।
2. मैं बेकार हूँ और बाक़ी सारे कमाल के, तो मेरे साथ ख़ास बर्ताव किया जाना चाहिए।

बाहर से विरोधी सोच और अन्दर से मतलबीपन ऐसे लोगों के स्वभाव का हिस्सा बन जाता है। वास्तव में ऐसे लोग दो ही पहलुओं के आगे-पीछे चक्कर लगाते रहते हैं या तो वे दुनिया के टॉप पर होते हैं या फिर दुनिया ही उनके सिर पर सवार हो जाती है। यह उनके गुज़ारे हुए दिन या किसी पल के किसी ख़ास नशे पर निर्भर करता है। ज्यादातर लोग जिम्मी को ख़ुद में डूबे रहने वाले घमण्डी इन्सान के रूप में जानते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि वह अपनी बनायी हुई झूठी शान के लिए मुखर है। लेकिन ज्यादातर लोग यह नहीं समझ पाते कि अधिकार भाव से ग्रस्त लोग वे हैं जिनमें ख़ुद के लिए कोई हीन भावना है और जो ख़ुद को दुनिया की नज़रों में मूल्यवान नहीं समझते।

ख़ुद को पीड़ित महसूस करने के लिए ऐसे लोग किसी स्वार्थी की तरह ही ज़िन्दगी की हर चीज़ का अलग ही अर्थ निकाल लेते हैं। ऐसा भ्रम बनाये रखने में काफ़ी एनर्जी लगती है, जिसमें कोई मानने लगता है कि उसके पास समस्याओं का पहाड़ है और दूसरे के पास कोई समस्या ही नहीं है।

सच यह है कि निजी समस्या जैसी कोई चीज़ ही नहीं है। अगर आपके पास कोई समस्या है तो इसकी बहुत सम्भावना है कि अतीत मैं भी उस समस्या से बहुत से लोग गुज़रे होंगे अभी भी गुज़र रहे होंगे, या फिर भविष्य में गुज़रने वाले होंगे। आप भी ऐसे बहुत से लोगों को जानते होंगे। इससे समस्या कम नहीं हो जाती या इसका उद्देश्य तकलीफ़ पहुँचाने का नहीं है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि अप किसी ख़ास हालात के वैध शिकार नहीं हैं।

इसका मतलब बस यह है कि आप ख़ास नहीं हैं। अक्सर, यही एहसास-कि आप और आपकी समस्याएँ अपने में ख़ास नहीं हैं-

समस्या समाधान में महत्त्वपूर्ण क़दम साबित होता है। लेकिन किसी कारण से, ऐसा लग रहा है कि ज्यादा से ज्यसादा लोग, ख़ासकर युवा इसे भूलते जा रहे हैं। अनेक प्राध्यापकं और शिक्षाविदों ने आज के युवाओं में भावनात्मक लचीलेपन की कमी और स्वार्थपरकता तक ख़ुद को अहमियत देने का भाव स्वीकार किया है। पाठ्यक्रम की किताबों से किसी पाठ को सिर्फ़ किसी की भावनाओं को ठेस पहुँचने की वजह से हृटा देना भी अब सामान्य हो गया है। वक्ताओं और प्राध्यापकों को भी अब हो-हल्ला करने से मना कर दिया गया है और किसी की हैलोवीन ड्रेस तक पर टिप्पणी करने की वजह से उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश से प्रतिबम्धित कर दिया जाता है। स्कूली सलाहकारों ने भी पाया है कि ज्यादातर छात्रों में भावनात्मक तनाव के लक्षण दिखाई देने लगे हैं, वो भी रोज़मर्रा की सामान्य चीज़ों को लेकर, जैसे रूममेट के साथ कोई बहस, या क्लास में कम ग्रेड्स आने पर।

यह अजीब ही है कि जिस दौर में हम ज्यादा 'कनेक्ट' रहते हैं, उसी दौर में हम ज्यादा अकेलापन महसूस कर रहे हैं। आधुनिक तकनीक में कुछ तो ऐसा है, जिसने हमारी असुरक्षा को इतना बढ़ा दिया है। जितनी आज़ादी हम ख़ुद को अभिव्यक्ति के लिए दे रहे हैं., उतनी ही आज़ादी हम ख़ुद से असहमत या हमें परेशान करने वाले लोगों से चाहते हैं। विरोधी विचारों को हम जितना उजागर करने की कोशिश करते हैं, उतना ही हम उपस्थित नज़रियों से असहज होते हैं। जितनी आसान और समस्या रहित हमारी ज़िन्दर्गी हो रही है, उतना ही अधिक हम तनाव में सिकुड़ते जा रहे हैं। इंटरनेट और सोशल मीडिया के फ़ायदे बेशक़ कमाल के हैं। कई मायनों में, यह इतिहास का श्रेष्ठ समय है, जिसमें हम जी रहे हैं। लेकिन शायद इन तकनीकों के कुछ अलक्षित साइड इफ़ेक्ट्स भी हैं। शायद ये तकनीकें जो हमें आज़ाद करती हैं, शिक्षा देती हैं, ये ही हममें अकेलापन भी भरती जा रही हैं, हमें अधिकार भाव दे रही हैं।

असाधारणता का अत्याचार

हममें से अधिकांश लोग ज्यादातर कार्यों में औसत ही हैं। अगर आप किसी एक काम में खास हैं भी तो बहुत सम्भव है कि द्ूसरे कार्यों में आप औसत या औसत से नीचे ही हों। यह ज़िन्दगी का स्वभाव है। किसी कार्य में ख़ास बनने के लिए, आपको बहुत-सा समय और ऊर्जा उसी में झोंकनी पड़ती है; और क्योंकि हम सब के पास सीमित समय और ऊर्जा होती है, तो हममें से बाक़ी चीज़ों को छोड़कर किसी एक चीज़ में ख़ास बन जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आँकड़ों के हिसाब से यह असम्भव है कि कोई एक इन्सान अपने जीवन के सभी पहलुओं में, या फिर अधिकांश पहलुओं में गज़ब का प्रदर्शन करता हो। प्रतिभाशाली बिज़नेसमैन अक्सर निजी जीवन में मात खा जाते हैं। बेहतरीन खिलाड़ी प्रायः अन्दर से खोखले होते हैं। बहुत-से सेलिब्रिटीज़ अपनी ज़िन्दगी के बारे में उतने ही दिशाहीन होते हैं। जितना उनकि प्रशंसक।

हम सभी, ज्यादातर मामलों में, औसत इन्सान हैं। हम इसे पहले से जानते हैं, लेकिन शायद ही हम इस बारे में सोचते हों या इस पर बात करते हों। निश्चित रूप से हम इसे समस्या मानकर कभी इसकी चर्चा तो नहीं ही करते हैं।

इंटरनेट, गूगल, फेसबुक, यूक्यूब और टी.वी. के पाँच सौ चैनलों तक पहुँच होना अच्छी बात है। लेकिन हमारा ध्यान सीमित है। सूचनाओं की लगातार बहती इस नदी को पूरी तरह से आत्मसात करने का कोई तरीक़ा ही नहीं है। इसलिए, इतने बहाव में कोई ख़ास ख़बर ही हमारा ध्यान आकर्षित कर सकती है, और उसके होने की सम्भावना एक प्रतिशत ही बनती है।

हर समय, हर दिन हम पर 'असाधारणता' से वार किया जाता है। बेस्ट में से भी बेस्ट खोजा जाता है। बुरे में से भी बुरा। शूरवीरों में महान शरवीर। मज़ेदार से भी ज़्ादा मज़ेदार कॉमेडी। दिल को तार- तार कर देने वाली ख़बर। सबसे ज़्ादा भयानक डर। सब कुछ, बस लगातार।

आज का हमारा जीवन सूचनाओं से भरा हुआ है, मानवीय अनुभव में यह अपने चरम पर है, क्योंकि मीडिया का उद्देश्य ही आपकी नज़रों को आकर्षित करना है। वैसे भी कहते हैं न 'जो दिखता है, वो बिकता है। यही आधार है। हालोंकि जनसंख्या का बड़ा हिस्सा औसत में ही जीता है। ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा साधारण ही है, वास्तव में बिलकुल औसत।

सूचना का यह प्रवाह हमें मानने पर मजबूर कर देता है कि विशिष्टता ही अब नॉर्मल है क्योंकि हम सब ज्यादातर समय औसत ही होते हैं, तो 'विशिष्ट सूचना का यह प्रवाह हमें असुरक्षित और बेचैन महसूस करवाता है, क्योंकि साफ़ है कि हम उतने बेहतर नहीं हैं। इसलिए हम किसी ख़ास ज्ञान या लत के माध्यम से इसकी भरपाई करने की कोशिश करते हैं। हम उसी तरीक़े का इस्तेमाल करते हैं, जिसे हम जानते हैं: या तो खुद की प्रशंसा करके या फिर किसी दूसरे की तारीफ़ों के पुल बाँधकर। हममें से कुछ इसके लिए जल्दी अमीर बनने की योजनाएँ बनाते हैं। और कुछ लोग अफ्रीका में भूख से मरते बच्चों को बचाने के लिए निकल जाते हैं। कुछ लोग इसकी भरपाई स्कूल में अक्छे प्रदर्शन और प्रत्येक अवार्ड जीतकर करते हैं जबकि कुछ इसकी वजह से स्कूल में गोलियाँ ही चला देते हैं। कुछ लोग इसके लिए हर उस चीज़ से सेक्स करने को तैयार हो जाते हैं, जो साँस लेती हो और बात करती हो।

यह आपको ज्ञान की उस बढ़ती हुई संस्कृति में ले आता है, जिसके बारे में मैंने आपको पहले भी बताया था। मिलेनियत्स अक्सर इसका दोष बदलते समय को देते हैं, लेकिन शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि मिलेनियल्स ही सबसे ज्यादा ऑनलाइन और हमेशा 'दिखाई देने वाली' पीढ़ी है। वास्तव में, ज्ञान की तरफ़ यह झुकाव पूरे समाज में दिखाई दे रहा है। और मैं मानता हूँ कि इसका कारण मीडिया द्वारा उभारी गयी 'विशिष्टता' के प्रति दीवानगी ही है।

तकनीक की व्यापकता और अधिक प्रचार की समस्या यह है कि लोग अब अपनी ही उम्मीदों के तले दबने लगे हैं। विशिष्टता के इस सैलाब से लोग ख़ुद को बदतर मान, लाइमलाइट में आने के लिए ज्सादा भड़काऊ और ज्ादा विश्वस्त दिखने की कोशिश कर रहे हैं।

जब मैं किशोर था तो यौन-सम्बन्धों के प्रति मेरी असुरक्षा को मर्दानगी के भ्रामक वर्णन की वजह से हवा मिल रही थी। पूरा पॉप कल्चर भी तो इसी भ्रान्ति के गिर्द खड़ा हुआ है और वे भ्रम आज तक प्रचलित भी हैं: 'कूल दिखने के लिए आपको रॉकस्टार की तरह पार्टी करनी चाहिए; सम्मानित दिखने के लिए आपकी महिला प्रशंसक होनी ही चाहिए; आदमी के लिए सेक्स सबसे महत्तपूर्ण चीज़ है, भले ही इसके लिए आपको किसी भी चीज़ का त्याग क्यों न करना पड़े (चाहे वो आपका गौरव ही क्यों न हो)।

अवास्तविक मीडिया की यह निरन्तर बकवास पहले से ही मौजूद हमारी असुरक्षाओं का भार और बढ़ाती रहती है, और हमें ऐसे भ्रमित मानदण्ड दिखाती है, जिन पर जीना मुश्किल हो जाता है। हम न सिर्फ कभी न सुलझ सकने वाली समस्याओं में घिर जाते हैं, बल्कि हम ख़ुद को हारा हुआ इन्सान भी मानने लगते हैं, क्योंकि गूगल पर की गयी एक आसान-सी सर्च हमें हज़ारों ऐसे इन्सानों के बारे में बताती है, जिनके पास ऐसी समस्याएँ नहीं हैं।

तकनीक ने हमें नयी मानसिक समस्याएँ देकर अर्थव्यवस्था की पुरानी समस्याओं को खत्म कर दिया है। इंटरनेट न सिर्फ सूचनाओं का खुला स्रोत है; यह असुरक्षा, आत्म-सन्देह और शुर्म का भी खुला स्रत है।

ले-लेकिन, अगर मैं कोई ख़ांस या असाधारण ही नहीं बनने वाला हूँ, तो इसका मतलब क्या है?

यह आज हमारी संस्कृति का स्वीकृत भाग बन गया है कि हम यह मानकर चलें कि हम सबको किसी ख़ास मक़सद से बनाया गया है। सेलिब्रिटी ऐसा ही कहते हैं। बिज़नेस के दिग्गज ऐसा कहते हैं। राजनेता ऐसा कहते हैं। यहाँ तक कि ओपेरा भी यही कहता है (तो अब तो यह ज़रूर सच होना चाहिए)। हममें से हर कोई असाधारण हो सकता है। हम सभी उस महानता के हक़दार हैं।

सच यह है कि यह वाक्य ही अपने आप में विवादास्पद है- यदि हर कोई असाधारण होगा, तो परिभाष के आधार पर कोई भी असाधारण नहीं हो सकता-इस तथ्य की बहुत से लोगों ने अनदेखी की। और बजाय यह सवाल करने के कि हम किस चीज़ के योग्य हैं या किस चीज़ कि योग्य नहीं हैं, हम सब उस सन्देश को स्वीकार कर और ज्यादा की चाह करने लगे।

'औसत' होना अब असफलता का नया मानक बन गया है। बीच का होना, किसी घण्टे के मध्यि के फूले भाग में होना, सबसे बुरी बात माना जाने लगा। जब संस्कृति के सफलता मानक के तहत 'असाधारणता' को ही योग्य माना जाने लगा, तो घण्टे के मध्य की बजाय आपका निचले स्तर पर होना ज्ादा लुभावना है, क्योंकि वहाँ कम-से-कम आप ज्यादा लोगों के ध्यान में तो रहेंगे। बहुत से लोग इस रणनीति का चयन करते हैं; सबको यह साबित करने के लिए कि वे सबसे ज्यादा दयनीय हैं, या सबसे ज्यादा दमित, या सबसे ज्ादा पीड़ित हैं।

अधिकतर लोग औसत होने को स्वीकार नहीं करते क्योंकि वे मानते हैं कि अगर उन्होंने यह स्वीकार कर लिया, तो वे कभी भी कुछ हासिल नहीं कर पायेंगे, कुछ साबित नहीं कर पायेंगे, और फिर इस ज़िन्दगी के कोई मायने नहीं बचेंगे।

इस तरह की सोच ख़तरनाक है। एक बार जब आप स्वीकार कर लेते हैं कि ज़िन्दगी जब महान और उल्लेखनीय हो, तभी यह जीने के लायक है, तो आप इस तथ्य को भी स्वीकार कर लेते हैं कि ज्यादातर जनसंख्या (आपके समेत) बेकार है और उसका कोई मूल्य नहीं है। यही मनःस्थिति ख़तरनाक हो जाती है, आपके लिए भी और दूरसरों के लिए भी।

दुर्लभ लोग जो किसी काम में सच में ख़ास बन जाते हैं, वे इसलिए नहीं कि वे पहले से ख़ुद को ख़ास समझते हैं बल्कि वे इतने बेहतरीन इसलिए बन पाते हैं कि उनमें खुद में सुधार लाने की भावना घर कर जाती है और सुधार की यह लत उन्हें बताती है कि वे महान नहीं हैं। यह एक विपरीत भावना है। जो लोग किसी चीज़ में महान बनते हैं, वह इसलिए कि उन्हें लगता है कि वे उसमें पहले से महान नहीं थे- बल्कि औसत थे; साधारण थे-और वे उससे बेहतर कर सकते थे। वे सब बातें कि-"हर इन्सान असाधारण हो सकता है और महानता हासिल कर सकता है" सच में आपके स्वाभिमान को चोट पहुँचाने के लिए ही होती हैं। यह ऐसा सन्देश है जो सुनने में तो अच्छा लगता है, लेकिन वास्तविकता में यह उन ख़ाली कैलोरी से बेहतर नहीं है जो भावनात्मक रूप से आपको भारी और फूला हुआ दिखाती हैं। आपके दिल और दिमाग् के लिए यह एक बड़ा पत्थर है।

मानसिक स्वास्थ्य भी, शारीरिक स्वास्थ्य की तरह सब्जियाँ/ पौष्टिक चीजें खाने से ही आता है-जो है, ज़िन्दगी के बेस्वाद और सांसारिक सत्य को स्वीकार करनाः जैसे कि "आपके काम बड़ी योजनाओं में कोई मायने नहीं रखते" और "आपकी ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा उबाऊ और महत्वहीन ही होगा, जो सामान्य है।" यह आहार शुरू में कड़वा लगेगा। बहुत बुरा और आप इसे लेने से बचना चाहेंगे।
लेकिन एक बार पचाने कि बाद, आपका शरीर ज्यादा हल्का और ज्यादा जीवित महसूस करेगा। आखिरकार, कुछ ख़ास बनने, अगली बड़ी हस्ती बनने का निरन्तर दबाव आपके ऊपर से ख़तम हो जायेगा। ख़ुद को साबित करने का वह दबाव, वह हताशा छँट जायेगी और अपने सांसारिक अस्तित्व का ज्ञान और स्वीकृति आपको अपने मन का काम करने की आज़ादी देगी, बिना किसी पूर्वधारणा या भ्रामक उम्मीदों के।
आप ज़िन्दगी के आधारभूत अनुभवों को सरलता से सीख जायेंगे; एक अच्छी-सी दोस्ती का सुख, कोई नयी चीज़ बनाना, किसी ज़रूरतमन्द की सहायता करना, कोई अच्छी किताब पढ़ना, किसी ऐसे के साथ हँसना, जिसकी आप सच में परवाह करते हों।
यह सुनने में उबाऊ लगता है? क्योंकि ये सब सामान्य बातें हैं। लेकिन शायद किसी ख़ास वजह से ही इन्हें साधारण रखा गया है क्योंकि वास्तविकता में ये ही वे चीज़ं हैं, जो सच में मायने रखती हैं।

पीड़ा का मूल्य

1944 के आख़िरी महीनों में, युद्ध के लगभग एक दशक बाद, माहँौल जापान के ख़िलाफ़ होने लगा। उसकी अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने लगी, उनकी सेना लगभग आधे एशिया में पफैली हुई थी, और प्रशान्त महासागर में जो सीमाएँ उसने जीती थीं, उन पर अब संयुक्त राज्य की फ़ौज का क़ब्ज़ा होने लगा था। उसकी हार अब निश्चित जान पड़ रही थी।
26 दिसम्बर, 1944 को जापानी इम्पीरियल आ्मी के सेकैंड लेफ्टिनेंट हीरू ओनोडा को फिलीपींस में लुबांग के छोटे से हद्वीप पर भेजा गया। उसे आदेश दिया गया था कि जितना भी सम्भव हो सके संयुक्त राज्य की गतिविधि को थीमा करे। उसे हर

कीमत पर अपनी जंग जारी रखनी थी और कभी सरेंडर नहीं करना था। वह और उसके कमांडर, दोनों को पता था कि यह एक आत्मघाती मिशन था।

फ़रवरी 1945 में अमेरिकी लुबांग तक पहुँचे और अपनी ताक़त से द्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया। कुछ ही दिनों में बहुत से जापानी सैनिक या तो मारे गये या उन्होंने सरेंडर कर दिया, लेकिन औनोडा और उसके तीन आदमी किसी तरह जंगल में छिपे रह पाये। उन्होंने वहीं से अमेरिकी फ़ौज और स्थानीय लोगों के खिलाफ़ एक क़िस्म की गुरिल्ला जंग जारी रखी। वे उनकी सप्लाई लाइन पर हमला करते, कुछ भटके हुए सिपाहियों को अपना शिकार बनाते, और जिस भी तरीक़े से बन पड़ता अमेरिकी फ़ौज की नाक में दम किये रहते।

उसी साल कि अगस्त में, लगभग आधे साल बाद, संयुक्त राज्य ने हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिरा दिया। जापान ने आतम्मसमर्पण कर दिया, और मानव इतिहास का सबसे भयानक युद्ध एक नाटकीय अन्त पर आकर ख़त्म हो गया।

हालॉकि, अभी भी हज़ारों जापानी सैनिक प्रशान्त महासागर के द्वीपों में बिखरे पड़े थे और ज्यादातर, औनोडा की तरह जंगलों में छिपे थे। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि युद्ध ख़त्म हो चुका है। ये छिपे हुए सिपाही पहले की तरह ही हमला और लूटपाट करते रहे। युद्ध के बाद पूर्वी एशिया का पुनर्निर्माण वास्तविक समस्या थी और सरकारें मानती थीं कि इसके लिए कुछ किया जाना चाहिए।

संयुक्त राज्य की फ़ौज ने जापानी सरकार के साथ मिलकर प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में हज़ारों पर्चियाँ गिरायीं, जिनमें ऐलान किया गया था कि युद्ध खत्म हो चुका है। और अब हरेक सैनिक को अपने घर वापस लौटना चाहिए । दूसरे लोगों की तरह,ओनोडा और उसके आदमियों ने भी इन पर्चियों को पढ़ा, लेकिन दूसरों से विपरीत, औनोडा ने तय किया कि ये पर्चियाँ झूठी हैं, और गुरिल्लाओं को बाहर निकालने की अमेरिकी फ़ौज की कोई चाल है। ओनोडा ने वे पर्चयाँ जला दीं, और अपने आदमियों के साथ छिपकर हमला करना जारी रखा।

पाँच साल बीत गये। पर्चियोाँ बँटनी बन्द हो गयीं और ज्रादातर अमेरिकी फ़ौजें अपने घर को लौट गयीं। लुबांग की स्थानीय जनसंख्या भी खेती और मछली पालन की अपनी सामान्य ज़िन्दगी में लौटने लगी। लेकिन ओनोडा और उसके आदमियों ने किसानों पर गोली चलाना, उनकी फ़सलें जलाना, उनका अनाज चुराना, और जंगल में घूमते स्थानीय लोगों को मारने का अपना काम जारी रखा। ऐसा होते रहने पर फिलीपींस सरकार ने तब नयी पचियाँ छपवाकर उन्हें जंगल में बँटवाया। "बाहर आ जाओ", उन्होंने कहा। युद्ध ख़त्म हो चुका है। तुम लोग हार गये हो।

लेकिन इन्हें भी अनदेखा कर दिया गया।
1952 में, जापानी सरकार ने एक आखिरी कोशिश की अपने छिपे हुए सैनिकों को बाहर लाने की। इस बार, गुमशुदा सिपाहियों के परिवार की तस्वीर और उन्हीं का सन्देश छापकर बँटवार्यी गयीं, साथ ही उसमें सम्राट की तरफ़ से एक निजी सन्देश भी था। एक बार फिर, ओनोडा ने उस सूचना को सच मानने से इनकार कर दिया। फिर से उसने मान लिया कि यह अमेरिकी सेना की कोई चाल है। एक बार फिर से, उसने और उसके आदमियों ने युद्ध का अपना मोर्चा सँभाल लिया।
कुछ और साल गुज़र गये और उनके आतंक से डरे फिलीपींस के स्थानीय लोगों ने उनका सामना करने के लिए हथियार उठा लिये। 1959 तक, ओनोडा के एक आदमी ने समर्पण कर दिया और दूसरा मारा गया। फिर, एक दशक बाद, ओनोडा का आख़िरी साथी, जिसका नाम कोजुका था, वह भी चावल के खेत में आग लगाने की कोशिश में स्थानीय पुलिस की गोली का शिकार बना। ये लोग युद्ध ख़त्म होने के लगभग पच्चीस साल बाद भी स्थानीय लोगों के ख़िलाफ़ जंग जारी रखे हुए थे। ओनोडा, जो अपनी आधी से ज्यादा ज़िन्दगी लुबांग के जंगलों में बिता चुका था, अब पूरी तरह अकेला था।
1972 में, कोजुका की मौत की ख़बर जापान पहुँची और उसने वहाँ सरगर्मी पैदा की। जापानी लोगों का मानना था कि उनका आख़िरी सिपाही सालों पहले लोट चुका है। अब जापानी मीडिया सोचने लगा कि अगर कोज़ुका 1972 तक लुबांग के जंगलों में ज़न्दा रह सका, तो शायद, द्वितीय विश्वयुद्ध का आखिरी सिपाही, ओनोडा भी जीवित हो। उस साल, जापानी सरकार ने अपने साहसी लेफ्टिनेंट को ढूँढ़ने के लिए जंगल में खोजी दस्ता भेजा पर उन्हें कुछ नहीं मिला। वह लेफ्ट्रनेंट जो अब तक मिथकों का हिस्सा बन चुका था, जिसे नायक माना गया था और अतीत की एक छाया भी।
समय बीतने के साथ, लेफ्टिनेंट ओनोडा की कहानी जापान के शहरी लोगों की जुबान पर चढ़ गयी-वो जुनूनी युद्धनायक, शायद अभी भी जीवित था। बहुतों ने उसकी वीरता का बखान किया। कुछ ने उसकी आलोचना की। कुछ ने उसे परियों की कहानी का किरदार माना, ये उन लोगों की कल्पना थी जो अभी भी उस जापान पर भरोसा करते थे, जिसका अस्तित्व दशकों पहले ख़त्म हो चुका था।
जापान के ही नोरिओ सुजुकी नाम के एक युवा ने पहली बार ओनोडा का नाम सुना था। सुजुकी रोमांच व खोज में यक़ीन करता था और वह कुछ-कुछ हिप्पियों-सा था। उसका जन्म युद्ध ख़त्म होने के बाद हुआ था, उसने बीच में ही पढ़ाई छोड़ दी थी और चार साल तक यूँ ही एशिया, मध्य पूर्व और अफ्रीका में घूमते हुए बिताया। कभी

पार्क में पड़ी हुई बेंच पर सोया, तो कभी किसी अजनबी की कार में, कभी रात किसी जेल में काली हुई तो कभी तारों के नीचे। उसने खेतों में मज़दूरी की और रक्तदान करके अपने रहने का ख़र्च निकाला। वह खुले दिल का था, और शायद थोड़ा पागल भी।

1972 में, सुजुकी किसी और रोमांच की तलाश में था। अपने सफ़र के बाद वह जापान लौट आया। उसे समाज के रिवाज और पदानुक्रम बड़े दमघोंटू लग रहे थे। उसे स्कूल से नफ़रत थी। वह कोई नौकरी भी नहीं कर सकता था। वापस से सड़कों पर उतरकर, अपनी पुरानी ज़िन्दगी जीने के लिए वह बेचैन हो रहा था।

सुजुकी के लिए, महान हीरू ओनोडा उसकी समस्याओं के जवाब स्वरूप आया था। यह उसके लिए एक नया और मूल्यवान रोमांच था। सुजुकी को यक़ीन था कि वह ओनोडा को ज़रूर खोज लेगा। हालॉकि, जापान, फिलीपींस और अमेरिका के खोजी दल यह काम नहीं कर पाये थे; स्थानीय पुलिस ने तीस दिनों तक जंगल की ख़ाक छानी थी लेकिन उनके हाथ भी कुछ नहीं लगा था; हज़ारों पर्चियों का कोई जवाब नहीं आया था-लेकिन, इस सिरफिरे, कॉलेज-ड्रापआउट हिप्पी ने उसे रखोजने की ठान ली थी।

बिना हथियारों के और बिना किसी प्रशिक्षण के, या बिना किसी रणनीति के, सुज़की ने लुबांग का सफ़र किया और ख़ुद अकेले ही जंगल में जा घुसा। उसकी रणनीतिः बस ज़ोर-ज़ोर से ओनोडा का नाम चिल्लाना और उसे यह बताना कि सम्राट को उसकी चिन्ता हो रही थी।

उसने चार दिनों में ही ओनोडा को खोज लिया। सुजुकी, ओनोडा के साथ ही कुछ दिन जंगल में रहा। ओनोडा लगभग एक साल से अकेला था, और सुज़की ने उसे खोज लिया था, जिसका साथ उसे पसन्द भी आया। वह किसी ऐसे जापानी के मुँह से सब सुनना चाहता था, जिस पर वह यक़ीन कर सकता था। वह दोनों एक तरह से दोस्त बन गये। सुजुकी ने ओनोडा से पूछा कि वह अभी तक भी छिपकर हमला क्यों करता रहा। औनोडा ने कहा साफ़ थाः उसे "समर्पण न करने" के आदेश दिये गये थे। लगभग तीस सालों तक वह बस खुद को मिले आदेश का पालन कर रहा था। ओनोडा ने फिर सुजुकी से पूछा कि उसके जैसा 'हिप्पी लड़का उसे तलाशने क्यों आया। सुजुकी ने कहा कि उसने जापान तीन चीज़ों की तलाश में छोड़ा था: "लेफ्टिनेंट ओनोडा, पांडा बियर और हिमदैत्य"

दोनों बहुत ही असामान्य हालातों में एक-टूसरे से मिले थे। एक अच्छे मक़सद के साथ एक झूठे गौरव की तलाश में, जैसे दो वास्तविक जापानी डॉन कुइक्जोटे और सांचो पांजा, एक साथ फिलीपींस के जंगलों में आ मिलें, और ख़ुद को हीरो मानते

हुए, बिना कुछ करे ज़िन्दगी गुजारें। ओनोडा पहले ही अपनी पूरी ज़िनदगी उस विशाल युद्ध के नाम पर दे चुका था। सुजुर्की के पास भी करने को बहुत कुछ नहीं था। हीरू ओनोडा और पांडा बियर को तलाशने के बाद, वह कुछ सालों बाद हिमालय की पहाड़ियों में मर गया, उस हिम दैत्य की तलाश में।

इन्सान अक्सर अपनी ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा बेमतलब और विनाशकारी वजहों पर ख़र्च कर देते हैं। ऊपर से देखने पर, उन कामों का कोई मतलब नहीं होता है। यह कल्पना कर पाना भी मुश्किल है कि ओनोडा तीस सालों तक उस द्वीप पर ख़ुश कैसे रह पाया-मच्छरों और द्रसरे रैंगने वाले जानवरों के बीच, मिट्टी में सोकर, दशकों तक आम नागरिकों को मारते हुए। या फिर सुजुकी जिसे, बिना पैसे, बिना किसी साथी और बिना किसी मक़सद के यूँ पहाड़ों में भटकते हुए अपनी मौत के पीछे भागना था, वह भी किसी काल्पनिक येती के तलाश में।

हालॉकि, बाद में ओनोडा ने कहा था कि उसे किसी बात का अफ़सोस नहीं है। उसने दावा किया कि उसे अपने चुनावों पर और लुबांग में गुज़ारे गये अपने समय पर गर्व है। उसने कहा कि उसे गर्व है कि वह ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा एक ऐसे साम्राज्य की सेवा में बिता पाया, जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं बचा था। जीवित रहने पर शायद सुजुकी ने भी कुछ ऐसा ही कहा होता कि: वह वही कर रहा था जिसे करने के लिए पैदा हुआ था, और उसे किसी बात का अफ़सोस नहीं था।इन दोनों ने अपनी पीड़ा का चयन किया। हीरू ओनोडा ने एक मृत साम्राज्य की वफ़ादारी के लिए पीड़ा का चयन किया। सुजुकी ने रोमांच के लिए तकलीफ़ों को चुना, भले ही उनकी योजना कितनी ही बुरी क्यों न बनी हो। उन दोनों की तकलीफ़ों का कुछ मक़सद था; उस मक़सद की वजह से ही वे सब कुछ झेल पाये

या शायद उसका मज़ा ले पपाये।

अगर पीड़ा अपरिहार्य है, अगर हमारी ज़िन्दगी की समस्याएँ टाली नहीं जा सकती हैं, तो हमें यह सवाल नहीं पूछना चाहिए "मैं तकलीफ़ों को कैसे रोकूँ?"

बल्कि यह पूछना चाहिए कि "मैं क्यों तकलीफ़ झेल रहा हूँ-किस मक़सद से?"

हीरू ओनोडा 1974 में जापान लौट आया और अपने देश में एक तरह का सेलिब्रिटी बन गया। उसे रेडियो के भिन्न कार्यक्रमों में बोलने के लिए बुलाया जाने लगा; राजनेता ज़ोर-शोर से उससे हाथ मिलाने की होड़ करने लगे; उसकी एक किताब भी प्रकाशित हुई और उसे सरकार की तरफ़ से बड़ी धनराशि भी दी गयी। लेकिन जापान लौटने पर जो उसने पाया, उसने उसे डरा दिया: उपभोक्तावादी, पूँजीवादी, दिखावे की संस्कृति जिसके आगे सम्मान और त्याग की उस परम्परा को भुला दिया गया था, जिसमें उसकी पीढ़ी पली-बढ़ी थी।

ओनोडा ने अचानक मिली उस शोहरत से जापान के पुराने मूल्यों को वापस से जीवित करने की कोशिश की, लेकिन इस नये समाज ने उसकी एक न सुनी। उनके लिए वह एक गम्भीर चिन्तक के बजाय, महज एक शोपीस था-एक ऐसा जापानी आदमी जो टाइम मशीन से निकलकर आया था, एक ऐसा अवशेष जिसे म्यूज़ियम में संगृहीत किया जा सकता था। इससे भी बड़ी विडम्बना यह रही कि ओनोड़ा बहुत हताश हो गया, इतना हताश तो वह कभी जंगल में बिताये अपने समय में भी नहीं हुआ था। कम-से-कम जंगल में उसकी ज़िन्दगी का कोई मक़सद तो था; उसके पास कुछ करने को तो था। उसके मक़सद ने उसकी पीड़ा को सहने योग्य बना दिया था, शायद इच्छित भी। लेकिन वापस जापान में, उसका पूरा देश लगभग हिप्पी जैसे युवाओं और पश्चिमी कपड़े पहनी महिलाओं से भरा हुआ था। वह इस सच का सामना नहीं कर पा रहा था कि उसके युद्ध का कोई फ़ायदा नहीं हुआ था। जिस जापान के लिए वह जिया था और जिसके लिए लड़ा था, वह अब बचा ही नहीं था और यह बात उसे इस तरह छलनी कर रही थी, जैसे कभी किसी गोली ने भी नहीं किया था। उसने सोचा कि उस पीड़ा का कोई फ़ायदा नहीं था, तो उसे अचानक एहसास हुआ कि उसके तीस साल बर्बाद हो गये और 1980 में, ओनोडा अपना सामान पैक करके ब्राजील चला गया और अपने आख़िरी समय तक
वहीं रहा।

सेल्फ़-अवेयरनेस एक प्याज़ है

सेल्फ़-अवेयरनेस (आत्म-जागरूकता) एक प्याज़ की तरह है। इसकी अनेक परतें हैं, जितना आप इसके छिलके उतारते हैं, उतना ही फफक- फफककर रोने लगते हैं।

चलो मान लेते हैं सेल्फ़-अवेयरनेस की पहली परत है अपनी भावनाओं की समझ । "इससे मैं ख़ुश होताहूँ।" "ये मेरी उदासी का सबब है। "इससे मुझे एक उम्मीद बँधती है।" जैसी बातें।

बदक़िस्मती से, बहुत से लोग सेल्फ़-अवेयरनेस के इस बेसिक लेवल में ही उलझ कर रह जाते हैं। मैं यह जानता हूँ, क्योंकि मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। मैं और मेरी पती अक्सर एक ही जैसे सवाल एक-दूसरे से दोहरा रहे होते हैं:

पत्नी: क्या हुआ? मैं: कुछ नहीं। कुछ भी तो नहीं। पनी: नहीं, कुछ तो हुआ है। बताओ मुझे। मैं: मैं ठीक हूँ । सच में। पत्नी: पक्का? तुम परेशान लग रहे हो। मैं: झेंपी हुई हँसी से। सच में? नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूँ, सच में। (तीस मिनट बाद..) मैं: ...और इसलिए आज मेरी लगी हुई है। वह ऐसे शो करता है मानो मैं वहाँ हूँ शे नहीं।

हम सबकी कुछ ख़ाली जगहें होती हैं। अक्सर वो जगहें उन भावनाओं से जुड़ी होती हैं, जिनके बारे में हमें हमारे विकास के सालों में ग़लत सिखाया जाता है। उन ख़ाली जगहों को पहचानने और उनके साथ सही भावनाओं को जोड़ने में सालों का अभ्यास और कोशिशें लग जाती हैं। लेकिन यह काम बहुत महत्तवपूर्ण है, और इसके लिए मेहनत की जानी चाहिए।

सेल्फ़-अवेयरनेस की दूसरी परत उन भावनाओं के होने का कारण पूछने की योग्यता है।

ये व्यों वाले सवालू ज़रा मुश्किल होते हैं और अक्सर इनका सही और सटीक जवाब मिलने में कई महीने या फिर कई साल लग जाते हैं। अधिकतर लोगों को किसी तरह के थेरेपिस्ट के पास जाना पड़ता है बस इन सवालों को पहली बार सुनने के लिए। ऐसे सवाल मॅहत्तपूर्ण होते हैं क्योंकि ये हमें हमारी सपफलता या फिर असफलता के प्रति सजग करते हैं। आपको गुस्सा क्यों आता है? क्या इसलिए कि आप कोई निश्चित लक्ष्य

हासिल करने में कामयाब नहीं हो पाये? आप निष्क्रियता और उदासीनुता क्यों महसूस करते हैं? क्या इसलिए कि आपको लगता है आप उतने अच्छे नहीं हैं? सवालों की यह परत हमें उस भावना की जड़ तक पहुँचने में मदद करती है, जिससे हम जूझ रहे होते हैं। एक बार समस्या की जड़ तक पहुँचने के बाद, हम आदर्श रूप से उसे बदलने के लिए कुछ कर सकते हैं। लेकिन एक और, थोड़े और गहरे स्तर की सेल्फ़-अवेयरनेस है और उसकी परतें उतारने पर बहुत से आँसू उसी तरह निकलते हैं, जैसे प्याज छीलने पर। तीसरा स्तर है हमारे निजी आदर्श: मैं इसे कामयाबी। नाकामयाबी क्यों मानता हूँ? मैं अपने लिए कैसे मानदण्ड चुन रहा हूँ? किस स्तर पर मैं ख़ुद को और अपने आसपास के लोगों को आँक रहा हूँ?

इस स्तर तक पहुँचना बहुत मुश्किल है, जो लगातार सवालों और कोशिशों से भरा है। लेकिन यह सबसे ज्यादा ज़रूरी है, क्योंकि हमारे आदर्श ही हमारी समस्याओं की प्रकृति निर्धारित करते हैं, और हमारी समस्याओं की प्रकृति ही हमारे जीवन की गुणवत्ता तय करती है।

आदर्श ही हमारे अस्तित्व और हमारे का्यों में मुख्य भूमिका निभाते हैं। अगर हमारे आदशर्श मददगार नहीं हैं जिसे हम सफलता/असफलता मान रहे हैं, अगर उसका चुनाव सतकता से नहीं हुआ, तो उन आदश्शों पर टिका हुआ सब कुछ- विचार, भावनाएँ, दिन-ब-दिन की भावनाएँ- भरभराकर ढह जायेंगी। किसी हालात के बारे में हम जो सोचते हैं, जो महसूस करते हैं वह उससे जुड़े हमारे आदरश्शों का ही परिणाम होता है।

अधिकतर लोग इन 'क्यों' वाले सवालों का सटीक जवाब नहीं दे पाते, और इस वजह से वे अपने आदर्शों की गहराई तक नहीं पहुँच पाते। यक़ीनन, वे कह सकते हैं कि वे ईमानदारी और सच्ची दोस्ती को अहमियत देते हैं, लेकिन आपके मुड़ते ही ख़ुद को बेहतर दिखाने के लिए आपके बारे में झूठ बोलने से भी नहीं चूकते। लोग मानते हैं कि उन्हें अकेलापन महसूस हो रहा है। लेकिन जब वे ख़ुद से इसका कारण पूछते हैं, तो वे इसके लिए दूसरों को दोष देना शुरू कर देते हैं-हर कोई ख़राब है, या किसी में भी इतनी समझ नहीं है कि उनकी समस्या को समझ पाये-

और इस तरह समस्या सुलझाने की बजाय वे उसे टालते रहते हैं।

बहुत से लोग इसीलिए सेल्फ़-अवेयरनेस या आत्म-जागरूकता से कतराते हैं; क्योंकि अगर वे गहराई में जाने की कोशिश करके, अपने आदर्शों को टटोलते हैं, वास्तव में अपनी परेशानियों की ज़िम्मेदारियाँ लेने से भागते रहे थे,

बजाय इसके कि समस्या की जड़ पहचानकर उसके समाधान की कोशिश करते। वे देखते हैं कि उनके लिए गये फ़ैसले बस ऊँचे सपनों का पीछा करने के लिए थे, न कि वास्तविक ख़ुशी उत्पन्न करने के लिए।

अधिकतर सेल्फ़-हेल्प गुरु भी इस गहरे स्तर की आत्म-जागरूकता की अनदेखी करते हैं। वे ऐसे लोगों की बात सुनते हैं जिनहें अमीर बनना है, और फिर उन्हें ज्यादा पैसे बनाने के फ़ार्मूला बताते हैं; जबकि वे इससे जुड़े आदश्शों पर आधारित महत्तपूर्ण सवालों को अनदेखा कर जाते हैं, जैसे उन्हें अमीर बनने की ज़रूरत ही क्यों महसूस हुई? अपनी सफलता/असफलता के लिए वे कैसे मानदण्डों का चुनाव कर रहे हैं? क्या वाकई में उनके दुख की कोई और वजह नहीं हो सकती, बजाय इसके कि वे महँगी गाड़ी नहीं होने की वजह से दुखी हैं?

अधिकतर सलाहें लोगों को अल्पकाल की ख़ुशी के लिए ही दी जाती हैं, जबकि लम्बे समय के लिए उनकी समस्या वहीं की वहीं रहती है। लोगों का अनुभव और भावनाएँ भले ही कुछ बदल जायें, लेकिन उनके आदर्श, जिनसे वे ख़ुद को आँक रहे होते हैं, वही रहते हैं । यह वास्तविक तरक्की नहीं है। यह केवल ऊँचे लक्ष्य हासिल करने का अलग तरीक़ा

खुद से ईमानदारी से सवाल पूछना मुश्किल है। इसके लिए ख़ुद से वे सवाल पूछने होते हैं, जिनके जवाब देने में आप सहज नहीं होते। मेरे अनुभव में, जितना असहज जवाब होता है, उतना ही वह सच होता है।

एक पल लीजिए और उसके बारे में सोचिए जो वास्तव में आपको परेशान करता है। अब ख़ुद से पूछिए कि वह आपको परेशान क्यों कर रहा है। उम्मीद है कि आपके जवाब में किसी तरह की असफलता जुड़ी होगी। फिर उस असफलता को पकड़िए और पूछिए कि वह आपके लिए इतना मायने क्यों रखती है। हो सकता है जिसे आप असफलता मान रहे हैं, वह वास्तव में असफलता न हो? आप ही उसे ग़लत नज़रिये से देख रहे हों तो?

मेरी ख़ुद की ज़िन्दगी से एक हालिया उदाहरण: "यह बात मुझे परेशान करती है कि मेरा भाई मेरे मैसेज या ई-मेल का जवाब नहीं
देता।"

"मुझे ऐसा लगता है कि उसे मेरी परवाह ही नहीं है।" लेकिन यह आपको सच क्यों लगता है? "क्योंकि अगर वह मेरे साथ रिश्ता रखना चाहता, तो अपने दिन में से दस सेकेंड
का टाइम निकालकर मुझे जवाब दे सकता था।"

उसके साथ सम्बन्ध की कमी आपको अपनी असफलता क्यों लगती है? "क्योंकि हम भाई हैं; हमारे बीच में अच्छा रिश्ता होना ही चाहिए!"

यहाँ दो चीज़ें साथ चल रही हैं: एक तो वह सोच या आदर्श जो मैंने अपने मन में बसा रखा है, और दूसरा वह मीटर जिस पर मैं उस आदश्श की तरफ़ बढ़ने के अपने प्रयास को आँक रहा हूँ । मेरी सोच: भाइयों को एक-दूसरे के साथ अच्छा रिश्ता बनाकर रखना चाहिए। मेरा मीटर: फ़ोन या ई-मेल से जुड़े रहना-इससे में भाई के रूप में अपनी सफलता नापता हूँ। इस मीटर को पकड़कर मैं खुद को असफल मान रहा हूँ, जिससे मेरी कई शनिवार की सुबहें बर्बाद हुई हैं।

हम थोड़ी और गहराई में जा सकते हैं, इसी प्रक्रिया को दोहराकर: भाइयों में अच्छा रिश्ता क्यों होना चाहिए?

"क्योंकि वो एक परिवार हैं, और परिवार को तो आपस में जुड़े रहना चाहिए।!"

और यह आपको सच क्यों लगता है?

"क्योंकि आपका परिवार आपके लिए द्रसरी किसी भी चीज़ से ज्सादा मायने रखता है।"

और यह आपको क्यों लगता है?

"क्योंकि अपने परिवार से जुड़े रहना 'नॉर्मल' और 'हेल्दी' है, जो कि मैं नहीं हूँ।" इस बातचीत में मैं अपनी और छिपी हुई समझ उजागर कर रहा हूँ-भाई से अच्छा रिश्ता होना-लेकिन मैं अभी भी अपने मीटर पर अड़ा हूँ। मैंने इसे एक दुसरा नाम भी दे दिया है, नज़दीकी, लेकिन मीटर अभी भी नहीं बदला है। मैं अभी भी ख़ुद को भाई के तौर पर आपसी सम्पर्क के माध्यम से ही आँक रहा हूँ । हर किसी का (कम-से-कम लगता तो ऐसा ही है) अपने परिवार के सदस्यों से क़रीबी रिश्ता होता है, और मेरा नहीं है। तो ज़रूर मुझमें ही कुछ कमी है।
लेकिन अगर मैं अपने और अपनी ज़िन्दगी के लिए कोई गालत मीटर या मानदण्ड इस्तेमाल कर रहा हूँ तो सच कुछ और भी तो हो सकता है, जो मैं सोच ही नहीं पा रहा हूँ? हो सकता है अपनी उस सोच या आदर्श के लिए मुझे अपने भाई से नज़दीकी बढ़ाने की ज़रूरत ही न हो। शायद कुछ आपसी समझदारी की ही ज़रूरत हो (जो कि है) या शायद आपसी भरोसे की (और वो भी है)। शायद ये मानदण्ड भाइयों का रिश्ता मापने के लिए ज्य़रादा उपयुक्त हैं, बजाय कि मैसेज या मेल की गिनती करने से। इससे वाक़ई फ़र् पड़ा; यह मुझे ख़ुद के ज्ारादा क़रीब लगा। लेकिन अभी भी मेरे दिल में टीस थी कि मैं और मेरा भाई वैसे क़रीब नहीं हैं। और इसे बदलने का कोई पॉज़िटिव तरीक़ा नहीं है तथा कोई ऐसी जादू की छड़ी भी नहीं है जो इस ज्ञान के ज़रिये मेरी समस्या सुलझा दे। कभी-कभी भाइयों में-यहाँ तक कि खूब प्यार करने वाले भाइयों में भी-क़रीबी रिश्ता नहीं होता, और यह बिलकुल नॉर्मल है। शुरू में इसे स्वीकारने में दिक्क़त होती है, लेकिन कोई बात नहीं। आपके हालात के लिए सबसे ज़रूरी है कि आप समस्या को किस नज़रिये से देखते हैं, आप कौन-से मानदण्ड चुनते हैं और उन्हें कैसे आँकते हैं। समस्याएँ तो आयेंगी ही, लेकिन हम उन्हें कैसे देखते हैं यह हमारे हाथ में है। समस्या का समाधान निकालना पूरी तरह हमारे नियन्त्रण में है, कि हम उसके बारे में क्या सोचते हैं, किस मानदण्ड से उसे आँकते हैं।

रॉक स्टार की समस्या

1983 में, एक प्रतिभाशाली गिटारिस्ट को उसके अपने बैंड से धक्के मारकर बाहर निकाल दिया गया। बैंड ने बस एक रिकॉर्ड का करार साइन किया था, और वे लोग अपनी पहली एल्बम रिकॉर्ड करने वाले थे। लेकिन रिकाँ्डिग से एक-दो दिन पहले,

बैंड ने गिटारिस्ट को बाहर का रास्ता दिखा दिया-कोई चेतावनी नहीं दी गयी, इस पर कोई बात नहीं हुई, गुस्से का कोई नाटकीय प्रदर्शन भी नहीं। उन्होंने सच में उसे नींद से जगाकर, वापसी की बस का टिकट उसके हाथ में थमा दिया।

न्यूयॉर्क से लॉस एंजलिस की बस में बैठा वो गिटारिस्ट बार-बार ख़ुद से एक ही सवाल पूछे जा रहा था: ऐसा कैसे हो गया? मुझसे क्या ग़लती हुई? अब मैं क्या करूगा? रिकॉर्ड कॉन्टरैक्ट कोई यूँ ही आसमान से नहीं टपक पड़ता है, वह भी किसी नये मैटल बैंड के लिए। क्या उसने ख़ुद को मिला इकलौता मौक़ा गँवा दिया लेकिन जब तक बस लॉस एंजलिस पहुँची, गिटारिस्ट ख़ुद पर तरस खाने से उबर चुका था और अब उसने एक नया बैंड शुरू करने की क़सम खायी। उसने तय किया कि यह नया बैंड इतना सफल होगा कि पुराने बैंड को अपने फ़ैसले पर पछतावा होगा। वह इतना सफल हो जायेगा कि वे लोग दशकों तक उसे टी.वी. पर देखेंगे, रेडियो पर उसके प्रोग्राम सुनेंगे, गलियों में उसके लगे पोस्टर्स देखेंगे और मैगज़ीन में आये दिन छपने वाली उसकी तस्वीरें देखेंगे। वे कहीं बर्गर खाकर गुज़ारा कर रहे होंगे, अपने बेकार से क्लब को वैन में ढोते हुए, अपनी बदसूरत बीवियों के साथ, शराब पीकर घूमते हुए, जबकि वह खचाखच भरे स्टेडियम में प्रस्तुति दे रहा होगा, जिसका सीधा प्रसारण टी. वी. पर किया जायेगा। वह धोखे के बहुत आँसू बहा चुका था, और अब उसके हर आँसू की क़ीमत सौ का कड़क डॉलर होगी और फिर गिटारिस्ट ने यूँ दीवानों की तरह काम किया, मानो उस पर संगीत के शैतान की आत्मा आ गयी हो। उसने महीनों कोशिश करके श्रेष्ठ संगीतज्ञों की भर्ती की-उसके पिछले बैंड से कही ज्यादा प्रतिभाशाली संगीतज्ञ। उसने दर्जनों गाने लिखे और पूरे दिल से उनका अभ्यास किया। उसके दबे हुए गुस्से ने उसकी महत्वाकांक्षा में घी डाला; बदला ही अब उसका नशा था। कुछ ही सालों में, उसके नये बैंड ने रिकॉर्ड का एक करार साइन किया, और उसके एक साल बाद उनका पहला रिकॉर्ड दुनिया पर छा गया।

उस गिटारिस्ट का नाम डेव मस्टैन था, और जो नया बैंड उसने बनाया वह प्रसिद्ध हेवी-मेटल बैंड मेगाडेथ था। मैगाडेथ ने 25 मिलियन से ज्ादा एल्बम बेचीं और कई बार सफल वर्ल्ड टूर किये। आज, मस्टैन को हेवी-मेटल संगीत के इतिहास का सबसे प्रतिभाशाली और प्रभावशाली व्यक्ति समझा जाता है।

बदक़िस्मती से, जिस बैंड ने उसे धक्के मारकर निकाला, वह मेटालिका था, जिसने दुनिया भर में 180 मिलियन से ज्यादा एल्बम बेचीं। मेटालिका को बहुत से लोगों ने अपने समय का महान बैंड माना। इसी वजह से, 2003 में दिये गये अपने ख़ास इंटरव्यू में, मस्टैन ने भरी आँखों से बताया कि वह अभी भी ख़ुद को असफल मानता

है। इतनी उपलब्धि के बावजूद भी, उसके मन में एक ही कसक है कि उसे मेटालिका से बाहर निकाल दिया गया था।

हम बन्दर ही हैं। हमें लगता है कि अपने टोस्टर, ओवन और डिज़ाइनर जूतों की वजह से हम सभ्य बन गये हैं, लेकिन हम बस उपकरणों से युक्त बन्दरों का एक समूह ही हैं हम बन्दर हैं क्योंकि हम बिना सोचे ही ख़ुद के वक़द और स्तर को दूसरों से नापने लगते हैं। सवाल यह नहीं है कि क्या हमें दूसरों से तुलना करनी चाहिए या नहीं; बल्कि किस स्तर पर' ख़ुद का मूल्यांकन करना चाहिए?

डेव मस्टैन, चचाहे उन्हें एहसास हो या नहीं, ख़ुद को मेटालिका की कामयाबी और लोकप्रियता से आँक रहे थे। अपने भूतपूर्व बैंड से निकाले जाने का अनुभव इतना तकलीफ़देह था कि उन्होंने मेटालिका से जुड़ी सफलता' के मानदण्ड को अपनाया, और उसी से खुद को और अपने म्यूज़िक कैरियर को नापा।

अपनी ज़िन्दगी के एक खराब अनुभव और उसे कुछ सकारात्मक बनाने के बावजूद (जैसा कि मस्टैन ने मेगाडेथ बनाकर किया) वह दशकों तक अपनी ज़िन्दगी की सफलता/असफलता ऑकने के लिए मेटालिका का ही मानदण्ड पकड़कर बैठ रहा। ख़ुब पैसे, प्रशंसक और शोहरत के बावजूद वह खुद को नाकामयाब ही मानता रहा।

अब, आप और मैं डेव मस्टैन के हालात को देखकर हँस सकते हैं। मिलियन डॉलर कमाने वाला इन्सान, जिसके लाखों फ़ैन हों, जो अपनी ज़िन्दगी में अपने मन का काम कर रहा हो, लेकिन फिर भी वह अपने पुराने बैंड से बाहर निकाले जाने पर आँसू बहा रहा है।

आप और मैं इसलिए हँस पा रहे हैं कि हमारी समझ और हमारे आदर्श उससे अलग हैं, और हम ख़ुद को भिन्न मानदण्डों से मापते हैं। हमारे मानदण्ड कुछ ऐसे हैं: "मैं ऐसे बॉस के लिए काम नहीं करना चाहता जिससे मैं नफ़रत करता हूँ," या "अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में भेजने के लिए मुझे ज्य्ादा पैसे कमाने होंगे," या "अगर मैं सुबह नाले में न पड़ा मिलूँ तो मुझे खुशी होगी।" इन मानदण्डों के हिसाब से, मस्टैन बेशुमार रूप से कामयाब है। लेकिन उसके अपने मानदण्ड, "मेटालिका से ज्[ादा कामयाबी और शोहरत", जिनसे तुलना करने पर वह असफल है।

हमारे आदर्श ही उन मानदण्डों का निर्धारिण करते हैं जिनसे हम ख़ुद को और दूसरों को आँकते हैं। जापानी सम्राट के प्रति ओनोडा की वफ़ादारी के आदर्श ने उसे लुबांग के जंगलों में भी तीस साल तक लड़ने की प्रेरणा दी। लेकिन उसके इसी आदर्श ने वापस लौटने पर उसकी स्थिति दयनीय बना दी। मस्टैन के मैटालिका से बेहतर बनने के आदर्श ने उसे सफल म्यूज़िक कैरियर बनाने की प्रेरणा तो दी, लेकिन इसी आदर्श ने उसे कामयाबी मिलने के बाद भी ख़ुश नहीं रहने दिया।

अगर आप समस्या को देखने का अपना नज़रिया बदलना चाहते हैं, तो आपको सफलता/आसफलता को ऑकने के मानदण्ड को ही बदलना होगा।
उदाहरण के लिए, एक टूसरे म्यूज़िशियन की ज़िन्दगी देखते हैं, जिसे उसके बैंड से बाहर निकाल दिया गया था। उसकी कहानी डेव मस्टैन से भी ज्यादा तकलीफ़देह है, हालाँकि यह उससे भी दो दशक पहले घटित हुआ था।
वर्ष 1962 था और हर जगह लिवरपूल, इंग्लैंड के एक बैंड की चर्चा थी। इस बैंड के लोगों का मज़ाक्रिया सा हेयरकट था, और नाम भी अजीब थे, लेकिन उनका म्यूज़िक बेशक उम्दा था, और उन्होंने रिकॉर्ड इंडस्ट्री का ध्यान आकर्षित कर लिया था। उस बैंड का मुख्य गायक और गीतकार जॉन था; रोमांटिक बैस प्लेयर पॉल;विद्रोही गिटारिस्ट जॉर्ज, और था एक ड्रम बजाने वाला।
वह ड्रमर उस पूरे बैंड में सबसे आकर्षक था-लड़कियाँ उसके लिए पागल हो जाती थीं, और उसी का चेहरा पहले-पहल मैगज़ीन में छपा था। वह ग्रुप का सबसे प्रोफ़ेशनल सदस्य भी था। वह ड्रग्स नहीं लेता था। उसकी एक स्थायी गलफ्रेंड थी। सूट-बूट पहने कुछ लोगों को लगता था कि उसे ही बैंड का चेहरा बनाया जाना चाहिए, न कि जॉन या पॉल को।
उसका नाम पीट बेस्ट था। 1962 में, पहला कॉन्ट्रेक्ट मिलने के बाद ही बैंड के बाक्ी तीनों सदस्य शान्ति से मिले और उन्होंने अपने बैंड के मैनेजर, ब्रायन एप्स्टेन से पीट को निकाल देने को कहा। एप्सटेन ने फ़ैसले पर नाराज़गी दिखाई। वह पीट को पसन्द करता था, इसलिए उसने मामले को ठण्डा होने देने का समय दिया, इस उम्मीद में कि बाकी तीनों लोग कुछ समय बाद अपना मन बदल लेंगे।
महीनों बाद, पहली रिकॉर्डिंग से महज़ तीन दिन पहले, एप्सटेन ने बेस्ट को अपने ऑफ़िस में बुलाया। वहाँ, मैनेजर ने उसे बिना किसी लाग-लपेट के बताया कि उसे यह बैंड छोड़कर कोई दूसरा बैंड ढूँढ़ लेना चाहिए। उसे कोई कारण, कोई सफ़ाई या कोई सान्वना नहीं दी गयी-बस उसे बता दिया गया कि बाक़ी तीनों सदस्य उसे बैंड से बाहर निकालना चाहते हैं, तो उसके भविष्य के लिए शुभकामनाएँ।
पीट के बदले में बैंड ने एक अजीब से नाम वाले रिंगो स्टार को शामिल कर लिया। रिंगो उन सबसे बड़ा था, और उसकी बड़ी-सी वाहियात नाक थी। रिंगो जॉन, पॉल और जॉर्ज जैसे बेहदा बाल कटवाने को तैयार हो गया था, और उसने ऑक्टोपस और समुद्री जीवों पर गीत लिखने को ज़ोर दिया। दूसरे लोगों ने भी उसकी बात मान ली। बेस्ट को निकाले जाने के छह महीने बाद ही बीटल छा गया और उसने जॉन, पॉल, जॉर्ज और रिंगो को दुनिया के सबसे लोकप्रिय चेहरे बना दिया।

इस बीच, पीट बेस्ट गहरी निराशा में रहा और वही करने लगा जैसी किसी अंग्रेज़ आदमी से ऐसे हालातों में उम्मीद की जाती है: वह बेतहाशा शराब पीने लगा।
साठ का बाक़ी का दशक भी पीट बेस्ट पर मेहरबान नहीं रहा। 1965 तक उसने बीटल के दो सदस्यों पर मानहानि का मुक़दमा चलाया, और उसके दूसरे सभी म्यूज़िकल प्रोजेक्ट बुरी तरह असफल रहे। 1968 में, उसने आत्महत्या की कोशिश की। उसकी जिन्दर्गी पूरी तरह बिखर गयी थी।
बेस्ट की डेव मस्टैन जैसी आकर्षक कहानी नहीं है। वह कभी भी ग्लोबल स्टार नहीं बन पाया या उसने कभी लाखों डॉलर नहीं कमाये। फिर भी, कई मायनों में उसका अन्त मस्टैन से बेहतर रहा। 1994 में एक इंटरव्यू में, बेस्ट ने कहा, "मैं उससे कहीं ज्सादा ख़ुशहूँ, जितना शायद मैं बीटल में रहते हुए होता।"
क्या बकवास है?
बेस्ट ने उन परिस्थितियों के बारे में बताया, जो उसकी ज़िन्दगी में बीटल से निकाले जाने के बाद घटित हुई। वह अपनी होने वाली पत्नी से मिला और पफिर शादी के बाद उसके बच्चे हुए। अब उसके आदर्श बदल गये थे। वह अपनी ज़िन्दगी को एक अलग नज़रिये से देखने लगा। यक़ीनन शोहरत और कामयाबी अच्छे होते हैं- लेकिन उसने तय किया कि उसके लिए वही महत्त्वपूर्ण होगा जो उसके पास पहले से है: एक बड़ा और खुब प्यार करने वाला परिवार, एक स्थिर शादी, एक आम ज़िन्दगी । वह अभी भी ड्रम बजाता है, यूरोप के ट्रप पर जाता है और उसने 2000 के दशक में भी रिकॉर्डिंग की। वास्तव में उसने क्या खोया? बस बहुत-सी लाइमलाइट और चापलूसी, लेकिन जो उसने पाया वह उससे कहीं ज्यादा मूल्यवान
ये कहानियाँ बताती हैं कि कुछ आदर्श और मानदण्ड दूसरों से बेहतर होते हैं। कुछ आदर्श आपको ऐसी समस्याओं की तरफ़ ले जाते हैं जो आसान होती हैं, और जिन्हें सुलझाया जा सकता है; जबकि कुछ दूसरे आदर्श आपको ऐसी जटिल समस्याओं की तरफ़ ले जाते हैं जो न तो आसान होती हैं और जिन्हें न ही आसानी से सुलझाया जा सकता है।

बेतुके आदर्श

कुछ ऐसे सामान्य आदर्श होते हैं जो वास्तव में लोगों के लिए समस्याएँ पैदा करते हैं- ऐसी समस्याएँ जिन्हें सुलझा पाना बहुत मुश्किल होता है। तो चलिए जल्दी से उन पर

एक नज़र डालते हैं:

1. खुशीः खुशी अच्छी चीज़ है, लेकिन इस आदर्श के गिर्द अपनी ज़िन्दगी की योजना बनाना बहुत वाहियात है। किसी नशेड़ी से पूछो कि उसकी ख़ुशी क्या है। किसी व्यभिचारी से पूछो कि कैसे उसने एक ख़ुशी के लिए अपने परिवार, अपने बच्चों तक को गँवा दिया। किसी भुक्खड़ से पूछो, जिसने अपनी जान देने तक खाना खाया। खुशी एक भ्रम है। शोध बताता है कि जो लोग अपनी ऊर्जा बाहरी ख़ुशी की तलाश में लगाते हैं, वे और ज्यादा बेचैन, भावनात्मक रूप से अस्थिर और ज्यादा हताश हो जाते हैं। ख़ुशी ज़िन्दगी की सन्तुष्टि का सबसे नक़ली तरीक़ा है और इसे पाना और गँवाना दोनों ही बहुत आसान है। फ़िर भी, चौबीस घण्टे हमारे सामने खुशी की मार्केटिंग की जाती है। उसी को हम अपनी ज़िन्दगी का मानदण्ड मान लेते हैं। इसीलिए हम ख़ुद को सुत्र कर अपना फ़ोकस हटा लेते हैं। खुशी, हालॉकि ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी है, लेकिन हम ख़ुशी के पीछे ही भागते रहें सही नहीं है। खुशी सन्तोष का कारण नहीं है; बल्कि उसका परिणाम है। अगर आप दूसरे सभी काम सही कर रहे हैं (दूसरे आदर्श और मानदण्ड), तो ख़ुशी आपके पास आयेगी ही।

2. भौतिक सफलता: बहुत से लोग अपनी क़रीमत कमाये हुए पैसों और गाड़ी से आँकते हैं। उनका घर पड़ोसी के घर से बड़ा और शानदार होना चाहिए।

शोध बताते हैं कि एक बार जब कोई आधारभूत सांसारिक सुविधाएँ (रोटी, कपड़ा, मकान इत्पादि) लेने लायक हो जाता है तो ख़ुशी और भौतिक सफलता में कोई रिश्ता नहीं रह जाता। अगर आप भूख से मर रहे हैं और किसी विकासशील देश की सड़क पर रहने को मजबूर हैं तो साल के कुछ हज़ार अतिरिक्त डॉलर कमाने से आपकी खुशियों में फ़र्क़ पड़ेगा। लेकिन अगर आप किसी विकसित देश में आरामदायक मध्यवर्गीय जीवन जी रहे हैं तो कुछ हज़ार डॉलर से आपकी ख़ुशियों में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा-उसके लिए आपको जो अतिरिक्त काम करना पड़ेगा उससे सच में कुछ हासिल नहीं होगा।

भीतिक सफलता के साथ अपने आदर्श को जोड़ने का दूसरा ख़तरा है कि इससे आप ईमानदारी, अहिंसा और जुनून जैसे दूसरे आदरशों से कटने लगते हैं। जब लोग खुद को अपने व्यवहार से नहीं, बल्कि अपनी सामाजिक उपाधियों से नापते हैं, तो वे सिर्फ़ सतही और कमअक्ल होकर रह जाते हैं।

3. हमेशा सही होना; हमारा दिमाग एक बेकार मशीन है। हम लगातार बेकार की पूर्वधारणाएँ बनाते हैं, सम्भावनाओं को ग़ालत आँकते हैं, तथ्यों को गालत याद रखते हैं, भेदभाव आधारित सोच बनाते हैं और भावनाओं से प्रेरित होकर फ़ैसले लेते हैं। इन्सान के तौर पर हम लगातार ग़ालतियाँ करते रहते हैं, अगर आपकी ज़िन्दगी का

आदर्श हमेशा सही होना' है, तो इसे बरकरार रख पाने में आप बहुत-सी मुश्किलों का सामना करने वाले हैं।तथ्य भी है कि जो लोग अपना मूल्य सही होने से आँकते हैं, वह अपनी ग़लतियों से कोई सबक लेना ही नहीं चाहते। वे नये नज़रिये को अपनाने और दूसरों से सहानुभूति रखने की योग्यता खो देते हैं। वे नयी और महत्वपूर्ण सूचनाओं के लिए खुद को बन्द कर लेते हैं।

यह भी माना जा सकता है कि आप घमण्डी हैं और पूरी सच्चाई जानते ही नहीं हैं। इससे आप पुरानी सोच के साथ ही जुड़े रहकर नयी चीज़ें सीखने और विकास से चूक जाते हैं।

4. सकारात्मक रहनाः कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपनी ज़िन्दगी की हर घटना को सकारात्मकता (बिना ख़ुद को दोष दिये) से आँकते हैं। नौकरी चली गयी? कोई बात नहीं! इससे अपने जुनून को तलाशने का नया अवसर मिलेगा। आपके पति ने आपकी बहन से अफ़ेयर करके अआपको धोखा दिया? ख़ैर, इससे आपको अपने आसपास के लोगों को समझने का मौक़ा तो मिला। गले के कैंसर से बच्चे का मरना? अब कम-से -कम आपको कॉलेज की फ़ीस तो नहीं भरनी पड़ेगी। यह कहा गया है कि "ज़िन्दगी का अच्छा पहलू ही देखो," सच है कि ज़िन्दगी कभी- कभी भारी लगती है, और ऐसे समय में सबसे अच्छी बात है कि आप इसे स्वीकारें।

नकारात्मक भावों को अस्वीकार करने से आप और गहरे नकारात्मक भावों का अनुभव करते हैं और आप भावनात्मक असन्तुलन का शिकार होते हैं। नियमित सकारात्मकता समस्याओं से भागने का एक तरीक़ा है, न कि समस्याओं का कोई पुख्ता समाधान-वैसे अगर आप सही आदश्शों और मानदण्डों का इस्तेमाल कर रहे हैं तो समस्याएँ आपको प्रेरित ही करती हैं।

चीज़ें ग़लत होती हैं, लोग हमें परेशान करते हैं, दुर्घटनाएँ होती हैं; इन चीज़ों से हम दयनीय हालात में पहुँच जाते हैं। और यह सामान्य है। भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए नकारात्मक भाव भी ज़रूरी होते हैं। नकारात्मकता से इनकार समस्या के समाधान के बजाय उनसे मुँह मोड़ना है।

नकारात्मक भावनाओं को सँभालने का तरीक़ा है, (1) सामाजिक रूप से स्वीकृत और सही तरीक़े से उन्हें व्यक्त करो। (2) उन्हें इस तरह व्यक्त करो कि वे आपके आदर्श से मेल खा सकें। एक उदाहरण है: मेरा एक आदर्श अहिंसा है। इसलिए, जब मुझे किसी पर गुस्सा आता है, तो मैं गुस्सा दिखाता हूँ, लेकिन कभी उनके चेहरे पर मुक्का नहीं मारता। जानता हूँ कि यह अजीब बात है। लेकिन गुस्सा कोई समस्या नहीं है। गुस्सा स्वाभाविक है। गुस्सा ज़िन्दगी का एक हिस्सा है। कई हालातों में गुस्सा

आपकी सेहत के लिए अच्छा भी रहता है। (याद रखिए, भावनाएँ बस फ़ीडबैक होती हैं)

देखिए, किसी के चेहरे पर मुक्का मारने से समस्या उत्पन्न हो सकती है। गुस्से से नहीं। गुस्सा बस मेरे मुक्के के लिए सन्देश लेकर आया है। तो सन्देशवाहक को दोष मत दो। दोष तो मुक्के का है।

जब हम ख़ुद पर हर समय सकारात्मक रहने का दबाव डालते हैं तो हम अपनी ज़िन्दगी की समस्याओं से मुँह मोड़ते हैं और जब हम अपनी समस्याओं से मुँह मोड़ते हैं, तो हम उनके समाधान और ख़ुशी पाने में भी पिछड़ जाते हैं। समस्या एक तरह से हमारी ज़िन्दगी को एक अर्थ देती है। इसलिए समस्या से भागने का मतलब अर्थहीन जीवन जीना ही है। लम्बे समय के लिए देखा जाये तो मैराथन में दौड़ना हमें ज्यादा ख़ुशी देता है बजाय एक चॉकलेट केक के। किसी वीडियो गेम में जीतने से ज््ादा ख़ुशी एक बच्चे के पालन-पोषण में होती है। किसी नये कम्प्यूटर को ख़रीदने से जगादा खुशी किसी दोस्त के साथ शुरू किये गये नये काम से होती है। ये गतिविधियाँ तनाव भरी, दुष्कर और अक्सर ख़ुशनुमा नहीं होतीं। लेकिन फिर भी ये ऐसे अर्थपूर्ण पल होते हैं। जिनसे मिली ख़ुशी को हम ज़िन्दगी भर नहीं भूल पाते हैं। उनमें दर्द, संघर्ष, गुस्सा और निराशा भी शामिल होती है-लेकिन एक बार उनके पूरा होने पर, हम खुशर्शी भरे आँसू से उन्हें देखते हैं और अपने परपोते तक को गर्व से इस बारे में बताते हैं।

जैसा कि एक बार फ्रायड ने कहा था, "एक दिन, तनाव में बीते साल ही आपकी ज़िन्दगी के सबसे हसीन साल बन जायेंगे।"

इसीलिए ये आदर्श-खुशी, भौतिक सफलता, हमेशा सही होना, सकारात्मकता-जीवन जीने के लिए बेतुके हैं। किसी की ज़िन्दगी के महान पल वे नहीं होते, जिनमें खुशी, सफलता, सही होने का एहसास और सकारात्मकता होती है।

ज़रूरी है कि कुछ सही आदशों और मानदण्डों का चुनाव किया जाये, ख़ुशी एवं सफलता तो उसके परिणामस्वरूप आ ही जायेंगी। ये चीज़ें तो अच्छे आदर्शों का साइड इफ़ेक्ट हैं। अपने आप में तो वे केवल खोखली चीजें हैं। अच्छे और बुरे आदरश्शों की परिभाषा अच्छे आदर्श हैं. (1) वास्तविकता-आधारित, (2) सामाजिक रूप से रचनात्मक, (3) सहज और नियन्त्रित।

बुरे आदर्श हैं: (1) अग्धविश्वास, (2) सामाजिक रूप से विध्वंसक, (3) सहजता और नियन्त्रण से बाहर।

ईमानदारी एक अच्छा आदर्श है क्योंकि यह ऐसी चीज़ है जिस पर आपका पूरा नियन्त्रण होता है, इसमें वास्तविकता परिलक्षित होती है, और इसका फ़यदा दूसरों

को भी मिलता है (भले ही यह कभी-कभार ख़ुशनुमा न हो) I दूसरी तरफ़, लोकप्रियता एक बुरा आदर्श है। अगर यह आपका आदर्श है और आपका मानदण्ड डांस पार्टी में सबसे लोकप्रिय लड़का/लड़की होना है, तो वहाँ जो होगा वह आपके नियन्त्रण से बाहर होगा: आप नहीं जान पायेंगे कि उस पार्टी में और कौन-कौन आया था और आप जिनसे घिरे होंगे उनमें से भी आधे से ज्ादा लोग आपके लिए अजनबी होंगे। दूसरा वह आदर्श/मानदण्ड वास्तविकता पर आधारित नहीं होगा: भले ही आप लोकप्रिय या अलोकप्रिय महसूस करें, लेकिन आपको वास्तविकता में कोई अन्दाज़ा नहीं होगा कि दूसरे लोग आपके बारे में क्या सोच रहे थे।
अच्छे और स्वस्थ आदश्शों के कुछ उदाहरण: ईमानदारी, आविष्कार, कोमलता, अपने लिए खड़ा होना, द्सरों के लिए खड़ा होना, आत्मसम्मान, इच्छुकता, दान, इन्सानियत, रचनात्मकता। बुरे और अस्वस्थ आदर्शों के कुछ उदाहरण: किसी को हिंसा या जोड़- तोड़ से दबाना, भेदभाव, हमेशा फ़ील गुड़ करना, हमेशा आकर्षण के कैन्द्र में रहना, अकेले नहीं रहना, सबकी पसन्द बनना, बस ऐसे ही हवाबाज़ी के लिए अमीर बनना, भगवान के नाम पर न्दिोष जीवों की बलि चढ़ाना।
आप ध्यान देंगे कि अच्छे और स्वस्थ आदर्श अन्दर से हासिल किये जा सकते हैं। जैसे रचनात्मकता और इन्सानियत का अनुभव आप अभी कर सकते हैं। बस इसके लिए आपको अपना दिमाग़ किसी खास दिशा में मोड़ना होगा। ये आदर्श सहज और नियन्त्रत हैं और आपको एक वास्तविक दुनिया से जोड़ते हैं।
बुरे आदर्श सामान्यतया बाहरी परिस्थितियों से जुड़े हैं-प्राइवेट जेट में उड़ान भरना, हमेशा ख़ुद को सही बताना, बहामास में घर ख़रीदना, कानोली खाना, जबकि तीन स्ट्रिपिर आपके सामने अपने कपड़े उतार रहे हों। हालाकि बुरे आदर्श कभी-कभी मज़ेदार और ख़ुशी देने वाले महसूस होते हैं, लेकिन यह हमारे नियन्त्रण से बाहर होते हैं और इन्हें हासिल करने के लिए अक्सर सामाजिक विध्वंस या अन्धविश्वास का रास्ता अपनाना होता है।
आदर्श हमारी प्राथमिकता से तय होते हैं। बहामास में घर खरीदना हर किसी को पसन्द आयेगा। सवाल अआपकी प्राथमिकता का है। वे कौन से अआदर्श हैं जिन्हें आप दूसरी हर चीज़ से ऊपर प्राथमिकता देना चाहेंगे, वे ही आपके फ़ैसलों का निर्धारण करते हैं।
हीरू ओनोडा के सबसे ऊँचे आदर्श जापानी सम्राट की वफ़ादारी और सेवा थे। ये आदर्श, किसी सड़े हुए सुशी रोल की तरह थे। इन आदर्शों ने हीरू के लिए बड़ी समस्याएँ पैदा कीं-वह किसी दूर द्वीप पर जा फँसा और लगभग तीस सालों तक कीड़े-मकोड़े खाकर अपना काम चलाया। इसके अलावा उसे मासूम नागरिकों का

क़त्ल भी करना पड़ा। लेकिन इसके बावजूद हीरू ने ख़ुद को एक सफल व्यक्ति माना और आपने मानदण्डों पर अपना जीवन जिया। मुझे लगता है कि हम सब यह कह सकते हैं कि उसकी लाइफ़ की तो बैंड बज गयी थी-हममें से कोई भी मौक़ा मिलने पर उसके क़दमों पर नहीं चलना चाहेगा, न ही हम उसके कामों की तारीफ़ करेंगे। डेव मस्टैन ने बहुत नाम और शोहरत कमायी लेकिन फिर भी वह ख़ुद को नाकामयाब ही समझता रहा। ऐसा इसलिए कि उसने अपने लिए एक बेतुका आदर्श चुन लिया था। उसे अपनी सफलता की तुलना किसी दूसरे के साथ करनी थी। इस आदर्श ने उसे कुछ विकट समस्याएँ दीं जैसे, "मुझे 150 मिलियन रिकॉर्ड और बेचने होंगे; तब सब कुछ सही हो जायेगा," और "मेरा अगला शो और कहीं नहीं सिर्फ़ स्टेडियम में ही होना चाहिए"-उसे लगता था कि खुश होने के लिए उसे इन समस्याओं का समाधान करना होगा। इसमें हैरानी की बात नहीं है कि ऐसा कुछ नहीं हो पाया।

टूसरी तरफ़, पीट बेस्ट ने वाक़ई एक शानदार जीवन जिया। बीटल से बाहर निकाले जाने पर हताशा और टूट जाने के बावजूद, उसने अपनी प्राथमिकताओं को बदला और ज़िन्दगी को एक नये नज़रिये से देखा। इसकी वजह से, बेस्ट एक ख़श और स्वस्थ वृद्ध बना, जिसने एक बढ़िया जीवन जिया, जिसका एक शानदार परिवार रहा-ये ऐसी चीज़ें थीं, जो वे चारों बीटल्स (बीटल बैंड के सदस्य) दशकों के संघर्ष और उपलब्धियों के बाद भी हासिल नहीं कर पाये।

जब हमारे आदर्श बेतुके होते हैं-वे बेकार मानदण्ड जो हम अपने और दूसरों के लिए स्थापित कर लेते हैं-तो हम उन चीज़ों का लोड लेने लगते हैं जो वास्तव में हमारी ज़िन्दगी को जहन्नुम बनाती हैं। लेकिन जब हम अच्छे आदरशों का चुनाव करते हैं, तो हम अपना लोड कुछ बेहतर चीज़ों के लिए बचा पाते हैं-उन चीज़ों के लिए जो हमारे लिए मायने रखती हैं, जो हमारी जीवन-शैली को सुधारती हैं और सही मायनों में सफलता और खुशियाँ लेकर आती हैं।

यही वास्तव में 'आम्मसुधार' है: बेहतर आदशों को प्राथमिकता देना, लोड लेने के लिए सही चीज़ों का चुनाव करना; क्योंकि जब आप बेहतर चीज़ों की चिन्ता करते हैं, तो आपके सामने बेहतर समस्याएँ आती हैं और जब आपके पास बेहतर समस्याएँ होती हैं, तो आपको बेहतर ज़िन्दगी मिलती है।

आगे की पूरी किताब उन पाँच आदशों पर है जो मुझे लगता है कि अपनाये जाने चाहिए। सब उस 'बैकवर्ड लॉ के तहत ही हैं, जिन्हें हमने पिछले अध्यायों में पढ़ा था, और ज़िहें नकारात्मक' माना था। समस्या से भागने से बेहतर है उसका सामना

करके उसकी जड़ तक पहुँचा जाये। ये पाँच आदर्श गैर-पारम्परिक और असहज हैं। लेकिन मेरे लिए वे ज़िन्दगी बदलने वाले अनुभव रहे।
पहला, जिसके बारे में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे वे ज़िम्मेदारी का अलग ही रूप है: अपनी ज़िन्दगी में घटित होने वाली हर घटना की ज़म्मेदारी लेना, भले ही ग़लती किसी की भी हो। दूसरा है अनिश्चितता: अपनी लापरवाही की पहचान और अपने विश्वास पर उठने वाले सन्देह का निवारण। तीसरा है असफलता: अपनी ग्रलतियों और कमियों को पहचानने की चाह ही शायद आपको सुधार के रास्ते पर ले जा सकती है। चौथा है अस्वीकार: न कहने और सुनने की योग्यता, इससे आप तय कर पायेंगे कि आपको ज़िन्दगी में क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए। अन्तिम आदर्श है अपनी नश्वरता के प्रति चिन्तन; यह थोड़ा जटिल है, क्योंकि अपनी मौत के प्रति नियमित ध्यान ही हमें ज़िन्दगी की चीज़ों को बड़े मायने में समझने का नज़रिया देता है।

आप हमेशा चयन कर रहे हैं

कल्पना कीजिए कि किसी ने आपकी कनपटी पर बन्दूक रख दी है और आपको पाँच घण्टों में 26.2 मील दौड़ने को कह रहा है, नहीं तो वह आपको और आपके पूरे परिवार को मार देगा कितनी दमघोंटू स्थिति होगी।
अब कल्पना कीजिए कि आपने नये जूते और रनिंग गियर ख़रीदे, महीनों प्रशिक्षण प्राप्त किया, और अपना पहला मैराथन पूरा किया। फ़िनिशिंग लाइन पर खड़ा आपका परिवार और दोस्त आपकी हौसला अफ़ुजाई कर रहे हैं।
वह सम्भवतः आपके जीवन का सबसे गर्वित पल हो सकता है।
दूरी वही 26.2 मील की है और दोनों हालातों में दौड़ने वाला एक ही इन्सान है। उन्हीं पैरों के साथ आपको उसी दर्द से गुज़रना होगा। लेकिन जब आप आज़ादी से चुनते हैं और इसके लिए तैयारी करते हैं, तो यह आपकी ज़िन्दगी में गौरव का एक पल बन जाता है। लेकिन जब यह अप पर आपकी मज़ी के बिना थोपा जाता है, तो यही आपके जीवन का सबसे भयानक और दर्दनाक अनुभव बनकर रह जाता है।
किसी समस्या के तकलीफ़देह या ताक़तवर बनने के पीछे सिप्फ एक ही अन्तर होता है कि हम उसे किस तरह से लेते हैं, और हम उसके प्रति कितने ज़िम्मेदार होते

हैं।
अगर आपको अपने वर्तमान हालात बदतर नज़र आते हैं, तो सम्भव है कि उसके कुछ भाग को आप अपने नियन्त्रण से बाहर मानते हों-या वह कोई ऐसी समस्या है, जिसे सुलझाने की योग्यता अआपके पास नहीं है। वह समस्या बिना आपकी मर्जी के, आप पर डाल दी गयी है।
जब हमें महसूस होता है कि हम ख़ुद अपनी समस्याओं का चयन कर रहे हैं, तो हम ख़ुद को सक्षम महसूस करते हैं। जब हमें लगता है कि समस्याएँ हम पर बिना हमारी मज़ी के थोप दी गयी हैं, तो हम पीड़ित और असहाय महसूस करते हैं।

चयन

विलियम जेम्स की कई समस्याएँ थीं। वास्तव में भयानक समस्याएँ। एक धनी और नामी परिवार में पैदा होने के बावजूद जेम्स शुरू से ही कई गम्भीर स्वास्थ्य समस्याओं से जूझ रहा था: आँख की समस्या, जिसने उसे बचपन में ही आंशिक रूप से, अस्थायी नेत्रहीन बना दिया था; पैट में भयानक संक्रमण जिसकी वजह से उसे बहुत उलटी होती थी और उसे बहुत मुश्किल आहार नियमों का पालन करना पड़ा; सुनने में समस्या थी; कमर में इतनी जकड़न थी कि कई बार तो उसका सीधे बैठ पाना और खड़े हो पाना भी मुश्किल हो जाता था।
स्वास्थ्य की समस्याओं के चलते, जेम्स अपना ज्सादातर समय घर पर ही गुज़ारा करता। उसके ज्यादा दोस्त नहीं थे, और स्कूल में भी उसका प्रदर्शन विशेष रूप से अच्छा नहीं था। इसके बजाय, वह अपना समय पेंटिंग में बिताता था। यही इकलौती चीज़ थी जो उसे पसन्द थी और उसे लगता था कि इसमें वह अच्छा प्रदर्शन करता बदक़िस्मती से किसी और को ऐसा नहीं लगता था। जब वह बड़ा हुआ तो कोई भी उसके काम का ख़रीददार नहीं था। समय गुज़रने के साथ, उसके पिता (एक सम्पन्न व्यवसायी) उसे उसके आलस और निकम्मेपन के लिए कोसने लगे।
इस बीच, उसका छोटा भाई, हेनरी जेम्स दुनिया का जाना-माना उपन्यासकार बन चुका था; उसकी बहन, एलिस जेम्स लेखन में ख़ासा पैसा कमा रही थी। विलियम ही परिवार की कमज़ोर कड़ी था।
अपने बेटे का भविष्य सँवारने के अधीर प्रयास में, जेम्स के पिता ने अपने सम्परको का इस्तेमाल कर हार्वर्ड मेडिकल स्कूल में उसका दाख़िला करा दिया। यह उसका

आख़िरी मौक़ा था, उसके पिता ने उसे चेतावनी दे दी थी। अगर उसने इसे भी गँवा दिया तो उसके लिए कोई उम्मीद नहीं बची थी।

लेकिन जेम्स को न तो कभी घर पर, न ही हार्वर्ड में शान्ति का एहसास हुआ। दवाइयों ने उसे कभी आकर्षित नहीं किया। उसने वहाँ पूरा समय एक नक़ली और झूठा जीवन जीते हुए बिताया। अगर वह अपनी समस्याओं का निदान नहीं ढूँढ़ सकता था, तो द्रसरे लोगों को सही करने की उऊर्जा कहाँ से लाता? एक दिन मनोवैज्ञानिक फ़ैकल्टी का दौरा करने के बाद, जैम्स ने अपनी डायरी में लिखा कि उसे डॉक्टर्स से ज्यादा रोगियों के साथ अपनापन महसूस हुआ।

इसी तरह कुछ और साल निकले और अपने पिता की मर्जी के ख़िलाफ़, जेम्स ने मैडिकल स्कूल भी छोड़ दिया। लेकिन अपने पिता की नाराज़गी का सामना करने की बजाय उसने वहाँ से चले जाने का फ़ैसला लिया। उसने अमेज़न रेन फॉरस्ट में मानवशास्त्रीय अभियान के लिए अपना नाम लिखवा दिया।

यह 1860 की बात है, उस समय एक द्वीप से द्ूसरे द्वीप का सफ़र मुश्किलों और ख़तरों से भरा होता था। अगर आपने कभी बचपन में 'रेगोन ट्रेल नाम कम्प्यूटर गेम खेला है, तो यह सफ़र बहुत कुछ उसी तरह का था।

खैर, जेम्स ने अमेज़न तक का अपना सफ़र पूरा किया, जहाँ से वास्तविक रोमांच शुरू होना था। हैरानी की बात थी कि उसके नाजुक स्वास्थ्य ने अब तक उसका साथ दिया था। लेकिन जब वह वहाँ पहुँच गया, अभियान के पहले दिन ही, उसे चेचक निकल आया और जंगल में उसकी हालत मरने जैसी हो गयी।

फिर उसकी कमर की जकड़न भी लौट आयी और वह इतनी तकलीफ़देह थी कि जेम्स के लिए चल पाना भी मुश्किल हो गया। अब तक वह चेचक की व्ह से कमज़ोर हो भूख से मर रहा था, कमर की वजह से हिल भी नहीं पा रहा था, और साउथ अमेरिका में अकेला रह गया था (अभियान के बाक़ी सदस्यों को उसके बिना ही आगे बढ़ जाना पड़ा)। उसे वापसी का रास्ता भी नहीं पता था- और इस सफ़र में महीनों लगने वाले थे, जिसमें वह किसी भी पल मर सकता था। लेकिन किसी तरह वह वापस न्यू इंग्लैंड तक पहुँचा, जहाँ उसका स्वागत उसके निराश (पहले से भी कहीं ज्य़ादा) पिता ने किया। अब वह युवा भी नहीं रह गया था- लगभग तीस साल का बेरोज़गार, हर काम में असफल, शरीर ऐसा जो जब तब उसे धोखा दे जाता था, और शायद वह कभी ठीक हो भी नहीं सकता था। ज़िन्दगी में मिले हर फ़ायदे और अवसर के बावजूद, सब पूरी तरह से बर्बाद हो गया था। उसकी ज़िन्दगी में कुछ फ़िक्स था तो वह थी तकलीफ़ और निराशा। जेम्स बहुत हताश हो गया और अपनी जान लेने की योजनाएँ बनाने लगा था लेकिन एक रात, दार्शनिक चाल्र्स पियर्स का

व्याख्यान पढ़ते हुए, जेम्स ने एक छोटा-सा प्रयोग करने का निर्णय लिया। अपनी डायरी में उसने लिखा, एक साल वह पूरी तरह यह मानकर बितायेगा कि उसके जीवन में जो कुछ भी हुआ है, उसका सौ प्रतिशत ज़िम्मेदार वही है, चाहे वह जो भी हो। इस समय के दौरान, अपने हालात बदलने के लिए उससे जो भी बन पड़ेगा, वह करेगा, भले ही इसमें वह कितना ही असफल क्यों न रहे। अगर इस एक साल में हालात में कुछ भी सुधार नहीं हुआ तो यह साबित हो जायेगा कि सच में उसके आसपास के हालात उसके बस में नहीं हैं, और फिर वह आपना जीवन खत्म कर देगा।

इसके बाद विलियम जैम्स अमेरिकी मनोविज्ञान का जनक बन गया। उसके काम को अनेक भाषाओं में अनूदित किया गया और उसे अपनी पीढ़ी का सबसे प्रभावशाली बद्धिका/दार्शनिक/मनोवैज्ञानिक माना गया। वह हार्वर्ड में भी पढ़ाने गया और संयुक्त राज्य और युरोप में अनेक व्याख्यान दिये। उसने शादी की और उसके पाँच बच्चे हुए (जिनमें से एक हेनरी, मशहूर जीवनीकार बना और उसने पुलित्जर पुरस्कार भी हासिल किया)। जेम्स ने बाद में अपने उस छोटे से प्रयोग को अपना 'पुनज्जन्म' बताया, और इसी को अपने बाद के जीवन में हासिल होने वाली हर उपलब्धि का श्रेय दिया। यह एक साधारण-सा एहसास था जिससे प्र्येक निजी सुधार और विकास सम्भव हो पाया। यह एहसास था कि हम, व्यक्तिगत रूप से, अपनी ज़िन्दगी की हर चीज़ के लिए ज़िम्मेदार हैं, भले ही बाहरी हालात जो भी रहे हों। हमारे साथ जो होता है, अक्सर हमारा उस पर नियन्त्रण नहीं होता। लेकिन उस घटना को हम कैसे लेते हैं और उस पर कैसी प्रतिक्रिया देते हैं, यह हमेशा हमारे नियन्त्ण में होता है।

भले ही हम सचेत रूप से इसे जानें या नहीं, हम सभी हमेशा अपने अनुभवों के लिए ख़ुद ज़िम्मेदार होते हैं। ऐसा नहीं होना सम्भव ही नहीं है। सचेत रूप से अपने जीवन की घटनाओं का चयन नहीं करके भी हम उन्हें चुन ही रहे होते हैं। उन घटनाओं पर प्रतिक्रिया नहीं देने का चयन करके भी हम दूसरे रूप में उनका जवाब दे रहे होते हैं। अगर आप पर से खिलौना कार निकल जाये या आप बच्चों से भरी स्कूल बस से टकरा जायें तो भी यह आपकी ही ज़िम्मेदारी होगी कि आप उस घटना को किस तरह देखते हैं और उस पर क्या प्रतिक्रिया देते हैं।

भले ही हम इसे पसन्द करें या नहीं, लेकिन हम क्या कर रहे हैं और हमारे साथ क्या होता है, इसमें निश्चित रूप से हमारी सक्रिय भूमिका होती है। हम हमेशा, हर पल और हर घटना की व्याख्या कर रहे होते हैं। हम हमेशा उन आदर्शों का चयन करते हैं, जिनके हिसाब से हम जीते हैं , और जो हमारी ज़िन्दगी की हर गतिविधि का

मानदण्ड बनते हैं। हमारे चयनित किये गये मानदण्ड के हिसाब से ही कोई घटना अच्छी या बुरी होती है।
मुख्य बात यह है कि हम हमेशा चुनाव कर रहे होते हैं, भले ही हम इसे जानें या नहीं। हमेशा।
इससे वास्तव में, वही बात सच होती है कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि आप लोड न लें। यह असम्भव है। हम सभी को किसी न किसी चीज़ का लोड लेना ही पड़ता है। किसी बात का लोड नहीं लेकर भी आप किसी चीज़ का तो लोड ले ही रहे होते वास्तविक सवाल है, हम लोड लेने के लिए किस चीज़ का चुनाव कर रहे हैं? अपने कार्यों के आधार के लिए हम किन आदर्शों का चुनाव कर रहे हैं? अपनी ज़िन्दगी को आँकने के लिए हम किस मानदण्ड का इस्तेमाल कर रहे हैं? और क्या वह चुनाव ही-सही आदर्श और सही मानदण्ड है?

ज़िम्मेदारी महज़ भ्रम

सालों पहले, जब मैं युवा और बचकाना हुआ करता था, तो मैंने एक ब्लॉग पोस्ट लिखी, और उसके अन्त में मैंने कुछ ऐसी लाइन लिखी, "और जैसा कि किसी महान दार्शनिक ने कहा था: 'बड़ी ताक़त के साथ बड़ी ज़िम्मेदारी भी आती है। यह सुनने में अच्छा और अर्थपूर्ण लगा। मुझे याद नहीं आ रहा था कि यह किसने कहा था, और मुझे गूगल सर्च से भी कुछ पता नहीं लग पाया, लेकिन फिर भी में इस लाइन को जोड़ना चाहता था। यह लाइन मेरी पोस्ट के साथ बहुत अच्छी तरह फिट हो रही थी। लगभग दस मिनट बाद, पहला करमंट आया: दार्शनिक', जिनका आप ज़िक्र कर रहे हैं स्पाइडर-मैन फ़िल्म के अंकल बेन हैं।"
"मुझे लगता है वह 'महान
शिट! "बड़ी ताक़त के साथ बड़ी ज़िमेदारी भी आती है।" ये अंकल बेन के पीटर पार्कर से कहे हुए आखिरी शब्द थे, जिसने अपनी लापरवाही से एक चोर को लोगों से भरे हुए फुटपाथ पूर भागने का मौक़ा दिया और उसी चोर ने भागते हुए उसके अंकल का कत्ल कर दिया। वह ही थे महान दार्शनिका
फिर भी, हम सभी ने वह उद्धरण सुना। उसे बहुत बार दोहराया गया-आमतौर पर बियर के सात पेग चढ़ाने के बाद, विडम्बना के रूप में। ये उन कुछ उद्धरणों में से हैं

जो सुनने में वाक़ई बुद्धिमत्तापूर्ण लगते हैं, लेकिन यह आपको वही बात बताते हैं, जो आप पहले से जानते हो, भले ही आपने पहले कभी इस मामले पर न सोचा
हो।
"बड़ी ताक़त के साथ बड़ी ज़म्मेदारी भी आती है।" पड़ता है: "बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ बड़ी ताक़त भी आती है।" दिशा में पहला क़दम बढ़ा देते हैं।
यह सच है। लेकिन उस उद्धरण का एक बहतर संस्करण भी है, ऐसा संस्करण जो वास्तव में गम्भीर है, और इसके लिए बस आपको संज्ञा शब्दों का स्थान बदलना
अपनी ज़िन्दगी में हम जितनी ज़िम्मेदारी लेते हैं, उतनी ही शक्ति हमें अपने जीवन में मिलती है। अपनी समस्याओं के लिए ज़िम्मेदारी लेकर हम उनके समाधान की मैं
एक आदमी को जानता था जिसे इस बात का यक़ीन था कि उसका क़ृद छोटा, इसीलिए महिलाएँ उसे पसन्द नहीं करती हैं। वह पढ़ा-लिखा था, दिलचस्प और दिखने में आकर्षक था-हर मायने में एक बढ़िया साथी, लेकिन उसके दिल में घर कर गया था कि उसके क़द की वजह से कोई भी लड़की उसे प्यार नहीं कर सकती। क्योंकि उसे लगता था कि वह बहुत छोटा है, इसलिए वह बाहर निकलकर किसी महिला से मिलने की कोशिश भी नहीं किया करता था। कुछेक बार जब उसने कोशिश की भी, तो भी अक्सर अपने व्यवहार से जता देता कि शायद वह लड़की के लिए ठीक नहीं है और फिर अपने मन में और पुख़्ता धारणा बना लेता कि लड़की ही उसे पसन्द नहीं करती थी, भले ही वह करती भी हो। आप कल्पना कर सकते हैं कि उसके जीवन में प्यार की कमी थी।
उसे इस चीज़ का एहसास था कि उसने अपने लिए उन आदश्शों को चुन लिया है, जो उसे तकलीफ़ पहुँचाते हैं । उसने मान लिया था कि महिलाएँ सिर्फ़ क़द की वजह से ही आकर्षित होती हैं। भले ही वह कितनी भी कोशिश करे, उसे आखिर में छोड़
इस आदर्श का चुनाव उसे असहाय बना रहा था। यह चुनाव उसी कि लिए समस्या खड़ी कर रहा था; लम्बे लोगों की दुनिया में वह ख़ुद को बौना मानकर जी रहा था, जबकि अपने प्यार के लिए वह कोई दूसरा आदर्श भी चुन सकता था।"में सिर्फ उस महिला से प्यार करेरूँगा जो मुझे मेरी वास्तविकता के साथ चाहे" शायद यह एहसास किसी शुरुआत के लिए बेहतर होता-एक ऐसा मानदण्ड जो ईमानदारी और स्वीकृति को सही तरह से माप सकता। लेकिन उसने इनका चुनाव नहीं किया। उसे शायद पता भी नहीं था कि वह अपने आदश्शों का चुनाव कर रहा है। (या शायद पता था)। हालॉकि उसे एहसास नहीं था, लेकिन वह खुद अपनी समस्या का ज़िम्मेदार था।
इस ज़िम्मेदारी के बावजूद वह शिकायत करता रहता: "लेकिन मेरे पास कोई विकल्प ही नहीं है," वह बारटेंडर से कहता। "मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता!

महिलाएँ बहुत घमण्डी होती हैं, जो दिखावे को पसन्द करती हैं, वह कभी मुझे पसन्द नहीं करेंगी" हाँ, यह हर उस महिला की गलती है जिसने उस ख़ुद पर तरस खाने वाले, सतही सोच वाले और गलत आदशों वाले इन्सान को पसन्द नहीं किया।
यक़ीनन।
बहुत से लोग अपनी समस्या की ज़िम्मेदारी लेने से हिचकिचाते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि अपनी समस्या की ज़िम्मेदारी लेकर वे ग़लत साबित हो जायेंगे।
हमारी संस्कृति में ज़िमेदारी और 'ालत होने को अक्सर एक ही समझा जाता है। लेकिन यह एक बात नहीं है। अगर मैं आपको अपनी कार से ठोंकता हूँ, तो यक़ीनन उस मामले में मैं ग्रलत हूँ और क़ानूनी रूप से आपको हर्जाना देना मेरी ज़िम्मेदारी है। भले ही वह एक एक्सीडेंट था, लेकिन उसका ज़िम्मेदार मैं ही हूँ। हमारे समाज में गलत होना इसी तरह काम करता है: अगर आपने कोई रायता फैलाया है, तो आप ही को उसे सही करना चाहिए और यह ऐसे ही काम करता है। लेकिन ऐसी भी समस्याएँ होती हैं जिनमें हमारी ग़लती नहीं होती, लेकिन फिर भी हमें उसकी ज़िम्मेदारी लेनी पड़ती है। उदाहरण के लिए, अगर आप एक दिन उठें और अपने दरवाज़े पर किसी नवजात बच्चे को पारयें, तो यह आपकी गलती नहीं है कि वह आपके दरवाज़े पर है, लेकिन वह बच्चा अभी आपकी ज़िम्मेदारी है। आपको चयन करना ही होगा कि क्या किया जाये। भले ही आप चाहे जो चुनाव करें (उसे रखें, उससे छुटकारा पायें, उसे अनदेखा करें, उसे दूध पिलायें), आपके हर विकल्प के साथ कुछ समस्याएँ जुड़ी होंगी-और उनके लिए सिर्फ़ आप ही ज़िम्मेदार होंगे।
जज अपने मामलों का चुनाव नहीं करते। जब किसी मुक़दमे को कोर्ट में भेजा जाता है, तो जिस जज को इसके लिए नियुक्त किया जाता है, उसने न तो वह अपराध किया होता है, न ही वह उस अपराध का गवाह होता है, और न ही उस पर उस अपराध का कोई प्रभाव पड़ा होता है, लेकिन फिर भी वह उस अपराध का ज़िमेदार होता है। जज ही उसके परिणाम का चयन करता है; वह उस मानदण्ड को पहचानता है जिसके अनुसार उस अपराध को मापा जायेगा और वही यह सुनिश्चित करेगा कि उस मानदण्ड का पालन किया जाये। हम उन अनुभवों के लिए भी ज़िम्मेदार होते हैं, जिनमें हमारी रालती नहीं होती है। यह जीवन का ही हिस्सा है।
दो धारणाओं के बारे में अन्तर करने का एक ख़ास तरीक़ा है। गलती अतीत की बात करती है। ज़िम्मेदारी वर्तमान की। ग़लती उन चुनावों का परिणाम होती है, जो कि जा चुके हैं। ज़िम्मेदारी उन चुनावों का परिणाम होती है जो आप अभी कर रहे हैं, हर रोज़, हर पल। इसे पढ़ना भी आपका चयन है। इस धारणा के बारे में सोचना भी आपका ही चयन है। इसे स्वीकार या अस्वीकार करना भी आपका चयन है। मेरे

विचार आपको बेकार लगें तो यह मेरी गलती हो सकती है, लेकिन अपने निर्णय तक पहुँचने के आप ही ज़िमेदार हैं। यह आपकी ग्ालती नहीं है कि मैं इस लाइन को लिख रहा हूँ, लेकिन आप फिर भी इसे पढ़ने (या न पढ़ने) का चुनाव करके ज़िम्मेदार हैं।

अपने हालात के लिए किसी दूसरे को दोष देने और वास्तव में आपके हालात के लिए उसके दोषी होने में एक अन्तर है। आपके हालात के लिए आपके सिवाय कोई दूसरा ज़िम्मेदार नहीं है। आपके दुख के लिए कई लोगों को ज़िम्मेदार माना जा सकता है, लेकिन आपके सिवाय कोई भी आपकी तकलीफ़ का ज़िम्मेदार नहीं है। ऐसा इसलिए कि हालात को किस तरह देखना है, उस पर क्या प्रतिक्रिया देनी है, उसे कैसे आँकना है, यह हमेशा आपके हाथ में होता है। आप ही उन मानदण्ड़ों का चयन करते हैं, जिनके आधार पर आप अपने अनुभवों को आँकते हैं। मेरी पहली गलफ्रेंड ने मुझे एक ही झटके में अपनी ज़िन्दगी से बाहर कर दिया। अपने टीचर के साथ अफ़ेयर करके वह मुझे धोखा दे रही थी। वह बहुत ही दर्दनाक अनुभव था। दर्दनाक से मेरा मतलब है, मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरे पेट में 253 बार मुक्के मारे हों। हालात और बदतर हुए जब मैंने उससे इस बारे में पूछा, वह तुरन्त मुझे छोड़कर चली गयी। साथ में बिताये गये हमारे तीन साल, मानो पल भर में ही हवा हो गये।

इसके बाद मैं महीनों तक परेशान रहा। ऐसा अपेक्षित था। अपने इस बुरे हालात के लिए मैं उसे ज़िम्मेदार ठहरा रहा था। लेकिन, सच कहूँ तो इससे भी मुझे कोई राहत नहीं मिली बल्कि इसने मेरे हालात को और बिगाड़ ही दिया।

देखिए, मैं उस पर नियन्त्रण नहीं कर सकता। भले ही मैं उसे कितने ही फ़ोन कर, या उस पर चिल्लाऊँ, या मुझे वापस अपनाने की उससे भीख मॉगूँ, या बिना बताये उसके घर पहुँच जाऊँ, या फिर ठुरुकराए हुए प्रेमियों की तरह वाहियात हरकतें करूं। मैं उसके दिल या उसकी हरक्तों को नियन्त्रित नहीं कर सकता। भले ही उसे मेरी हालत का दोषी कहा जाये, लेकिन फिर भी वह मेरी भावनाओं की ज़िम्मेदार नहीं थी। उसका ज़िम्मेदार मैं ही था।

एक मोड़ पर, खुब आँसू बहाने और ख़ुब शराब पीने के बाद, मेरी सोच का दायरा बदलने लगा और मैं समझने लगा। हालॉकि उसने मेरे साथ ग़लत किया था और इसके लिए दोषी वही थी, लेकिन अब ख़ुद को दोबारा ख़ुशहाल बनाने की ज़िमेदारी मेरी ही है। वह अब कभी दोबारा आकर मेरे लिए सब कुछ पहले जैसा नहीं कर देगी। मुझे ही अपने लिए सब सही करना होगा।

जब मैंने यह नज़रिया अपनाया, कुछ चीज़े हुई। पहली, मैंने ख़ुद में सुधार करने शुरू किये। मैंने एक्सरसाइज़ और अपने दोस्तों के साथ ज्यादा समय बिताना शुरू किया (वे दोस्त जिनकी मैं कब से अनदेखी करता आ रहा था)। मैंने जानबूझकर नये लोगों से मिलना शुरू किया। मैंने विदेशों में स्टडी-ट्रिप किये और कुछ समाजसेवा के काम भी किये और धीरे-धीरे मैं अपनी तकलीफ़ से उबरने लगा। मेरी एक्स-गलफ्रेंड ने जो मेरे साथ किया, उसे लेकर मैं अभी भी बेचैन था। लेकिन अब कम-से-कम मैं अपनी भावनाओं की ज़िम्मेदारी तो लेने लगा था और ऐसा करके, मैं बेहतर आदरशों का चुनाव कर रहा था-वह आदर्श जो मुझे खुद का ध्यान रखना, ख़ुद के बारे में अच्छा महसूस करना सिखा रहे थे, बजाय इसके कि मैं हालात बदलने के लिए अपनी एक्स का इन्तज़ार करता रहता।
(वैसे, "मेरी भावनाओं के लिए उसे ज़िम्मेदार ठहराने" और वह चीज़ें जिनकी वजह से वह मुझे छोड़कर गयी, उनके बारे में आगे कुछ और अध्यायं में बताया जायेगा।)
फिर, लगभग एक साल बाद, कुछ और दिलचस्प होने लगा। जब मैंने मुड़कर अपने रिश्ते को देखा, तो मुझे कुछ समस्याएँ महसूस होने लगीं, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था। वे समस्याएँ जिनके लिए मुझे दोष दिया जा सकता था और उनके समाधान के लिए मुझे ही कुछ करना चाहिए था। मुझे महसूस हुआ कि मैं ही शायद आदर्श ब्बॉयफ्रेंड नहीं था, कोई भी वैसे ही, बिना किसी वजह के, किसी एक को धोखा देते हुए, किसी और से चक्कर चलाने नहीं लगता।

मैं यह नहीं कह रहा कि इससे मेरे एक्स का धोखा कुछ कम हो जाता है-बिलकुल भी नहीं। लेकिन अपनी गालती को पहचान कर मुझे एहसास हुआ कि मैं भी कोई इतना मासूम पीड़ित नहीं था, जितना अब तक मैं ख़ुद को मान रहा था। एक बेतुके सम्बन्ध को इतने अरसे तक खींचने में मेरी भी भूमिका थी। आखिरकार, जो लोग एक-दूसरे को डेट करते हैं उनके कुछ तो साझा आदर्श होते होंगे और अगर मैं किसी बेतुके आदर्श वाले इन्सान के साथ इतने लम्बे समय तक रहता हूँ, तो इससे मेरे आदर्शों के बारे में क्या पता चलता है? मैंने सीखा कि अगर रिश्ते में कोई एक इन्सान स्वार्थी है और वह दूरसरे को तकलीफ़ पहुँचाने वाली चीज़ें कर रहा है, तो इसका मतलब दूसरा इन्सान भी किसी- न-किसी रूप में वही चीज़ें कर रहा था, भले ही उसे इसका एहसास न हो।

देखा जाये तो, इससे मुझमें चीज़ों को वापस मुड़कर देखने की समझ आयी और मैं अपनी ग्लफ्रिंड के चरित्र की वे ख़ामियाँ देख पाया, जिन्हें उसके साथ रहते हुए मैं अनदेखा कर रहा था। यह मेरी गालती थी। अब मैं समझ सकता हूँ कि मैं भी उसके लिए कोई ब्वॉयफ्रेंड ऑफ़ द ईयर नहीं था। वास्तव में, मैं अक्सर उसके प्रति रूखा और बदतमीज़ था; और कई बार मैं उसकी क़दर न करके उसे एक तरह से दुत्कार देता था। ये मेरी ग्रलतियाँ थीं। क्या मेरी ग़लतियाँ उसकी ग़लती की सफ़ाई दे सकती हैं? नहीं। लेकिन फिर भी, मैंने ज़िम्मेदारी ली कि मैं वैसी ग़लतियाँ फिर दोबारा नहीं करूँगा, और फिर से उन लक्षणों को अनदेखा नहीं करुलगा, जिससे मुझे यह तकलीफ़ दोबारा झेलनी नहीं पड़ेगी। मैं ज़म्मेदारी लूँगा कि भविष्य में उससे ज्यादा बेहतर महिलाओं के साथ रिश्ता बनाऊँ और मुझे बताते हुए ख़ुशी हो रही है कि मेरे पास एक बेहतर रिश्ता है। अब और कोई गलफ्रेंड मुझे धोखा देकर नहीं जाती, पेट में 253 मुक्के खाने की तकलीफ़ महसूस नहीं होती। मैंने अपनी समस्याओं की ज़िम्मेदारी ली और उनके सुधार पर काम किया। एक अस्वस्थ रिश्ते में मैंने अपनी भूमिका की ज़िम्मेदारी ली और बाद के रिश्तों के लिए उसे सुधारा। और जैसा कि आप जानते हैं मेरी गलफ्रंड का छोड़कर जाना मेरे लिए सबसे तकलीफ़देह अनुभव था, लेकिन वह मेरी ज़िन्दगी का सबसे महत्तवपूर्ण और प्रभावशाली अनुभव भी था। अपने निजी विकास का श्रेय मैं उसी को देना चाहूँगा। अपनी दर्जनों सफलताओं से मैंने उतना नहीं सीखा, जितना उस अकेली असफलता से सीखा।

हम सब सफलता और ख़ुशियों की ज़िम्मेदारी लेना पसन्द करते हैं। और तो और, अक्सर हम उनका श्रेय लेने के लिए लड़ाई भी करते हैं। लेकिन अपनी समस्याओं की ज़िम्मेदारी लेना उससे कहीं ज्यादा महतवपूर्ण है, क्योंकि उन्हीं से आप सही

मायनों में कुछ सीख सकते हैं। उन्हीं से सीखकर आप वास्तव में कुछ सुधार ला सकते हैं। दूसरों को दोष देने से सिर्फ़ आपकी तकलीफ़ ही बढ़ सकती है।

दुखद घटना की प्रतिक्रिया

लेकिन वास्तव में त्रासद घटनाओं का क्या? बहुत से लोग काम-सम्बन्धी समस्पाओं की बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ लेकर सफ़र करते हैं। शायद जो समय उन्हें बच्चों के साथ खेलते हुए या कुछ रचनात्मकता में बिताना चाहिए, उसे वे टी.वी. देखते हुए बिताते हैं। लैकिन जब भयानक घटनाएँ घट जाती हैं, तो वे ज़िम्मेदारी की चेन खींचकर, चलती ट्रेन को रोककर रास्ते मैं उतर जाते हैं। अपनाने के लिए कुछ चीजें उन्हें बहुत तकलीफ़देह लगती हैं।

लेकिन इसके बारे में सोचिए: घटनाओं की गम्भीरता भी उसके नीचे छिपे सच को बदल नहीं सकती। अगर आपको लूट लिया जाता है, तो यक़ीनन उस लूट के लिए आप ज़िम्मेदार नहीं थे। कोई भी अपने लिए ऐसी घटना का चयन नहीं करेगा। लेकिन आपके दरवाज़े पर छूटे बच्चे की तरह, आप तुरन्त ही जीवन-मरण के से हालातों की ज़िमेदारी लेने के लिए मजबूर हो जाते हैं। क्या आप उस लूटने वाले से लड़ाई करोगे? क्या आप घबरा जाओगे? क्या आप डर से सुन्न पड़ जाओगे? क्या आप पुलिस में रिपोर्ट लिखवाओगे? क्या आप इसे भूलने की कोशिश करके ऐसा जताओगे कि कुछ हुआ ही नहीं? ये सभी विकल्प और प्रतिक्रियाँ आपको उस घटना को स्वीकार या अस्वीकार करने का विकल्प देती हैं। लूट का चयन आपने नहीं किया था, लेकिन उस घटना से होने वाले भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक (और क़ानूनी) प्रभाव को सॅभालना आपकी ही ज़िम्मेदारी है।

2008 में, तालिबान ने स्वात घाटी, उत्तर पूर्वी पाकिस्तान के द्रस्थ इलाके पर क़ब्ज़ा कर लिया। उन्होंने तुरन्त वहाँ अपना मुस्लिम अतिवाद का एजेंडा लागू कर दिया। टेलीविज़न नहीं चलेगा। कोई फ़िल्म नहीं देखी जायेगी। बिना किसी मर्द के कोई महिला घर से बाहर क़दम नहीं रखेगी। लड़कियाँ स्कूल में पढ़ने नहीं जायेंगी।

2009 तक, मलाला युसुपफ़ज़ई नाम की ग्यारह साल की पाकिस्तानी लड़की ने स्कूल पर लगे प्रतिबन्ध के खिलाफ़ बोलना शुरू कर दिया। अपना और अपने परिवार का जीवन ख़तरे में डालते हुए, उसने अपने स्थानीय स्कूल में पढ़ाई करना जारी रखा; वह पास के शहरों में होने वाले सम्मेलनों में भाग लेने भी जाती रही।

उसने ऑनलाइन लिखा, "तालिबान को क्या हक़ है कि मुझसे मेरे तालीम के अधिकार को छीन सके?"

2012 में, चौदह साल की उम्र में, एक दिन उसे स्कूली बस में ही सिर पर गोली मार दी गयी। नक़ाब पहने एक तालिबानी सिपाही, राइफल लिए हुए बस में चढ़ा और बोला, "मलाला कौन है? मुझे बताओ, नहीं तो यहाँ बैठे हर बच्चे को गोली मार दूँगा।" मलाला ख़ुद उसके सामने आयी (एक शानदार विकल्प), और उस आदमी ने बाक़ी बच्चों के सामने उसके माथे पर गोली मार दी।

मलाला कोमा में चली गयी, वह बिलकुल मरने की हालत में थी। तालिबान ने सबके सामने घोषणा की कि अगर किसी तरह वह बच भी गयी तो वे पुनः उसे और उसके पूरे परिवार को मार डालेंगे। आज, मलाला जीवित है। वह आज भी मुस्लिम देशों में महिलाओं के खिलाफ़ होने वाली हिंसा और दमन के बारे में बोलती है, और आज वह एक कामयाब लेखिका भी है। 2014 में उसे उसके प्रयासों के लिए शान्ति का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। ऐसा लगता है कि सिर पर गोली मारकर उन लोगों ने उसे पहले से ज़्ादा साहस और श्रोता दे दिये। उसके लिए बिना कुछ करे यह कहना ज्यादा आसान होता, "मैं कुछ नहीं कर सकती," या "मेरे पास कोई विकल्प ही नहीं हैं।" विडम्बना है कि उसके पास अभी भी इसके लिए विकल्प है। लेकिन उसने इसके विपरीत हालात को चुना।

कुछ साल पहले, मैंने इस अध्याय के कुछ विचारों को अपने ब्लॉग पर लिखा, और एक आदमी ने उस पर कमेंट किया। उसने कहा कि मैं खोखला और नक़ली है, और मुझे ज़िन्दगी की असली समस्याओं या इन्सानी ज़िम्मेदारी का कोई एहसास ही नहीं है। उसने बताया कि अभी हाल ही में एक कार एक्सीडेंट में उसके बेटे की मौत हुई है। उसने मुझ पर आरोप लगाया कि वास्तविक दर्द की मुझे समझ ही नहीं है और में सबसे बड़ा बेवकूफ़ हूँ जो उसे उस दर्द की ज़िम्मेदारी लेने का सुझाव दे रहा है, जो उसे अपने बेटे की मौत से हुआ था।

वह आदमी यक़ीनन उस भयानक तकलीफ़ से गुज़र रहा था जिसका सामना अधिकतर लोगों को अपने जीवन में शायद ही करना पड़ता हो। उसने अपने बेटे की मौत नहीं चुनी थी, न ही अपने बेटे की मौत में उसकी कोई गलती थी। लेकिन इसके बावजूद भी, अपनी भावनाओं, मान्यताओं और प्रतिक्रिया के लिए वह ख़ुद ज़िम्मेदार था। अपने बेटे की मौत पर प्रतिक्रिया देना पूरी तरह से उसका अपना चुनाव था। दर्द कैसा भी हो, उसे टाला नहीं जा सकता। लेकिन वह हमारे लिए क्या मायने रखता है, यह हमारे हाथ में ही होता है। इस बात का दावा करने में भी कि उस मामले पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं था और वह बस अपने बेटे को वापस पाना चाहता है, वह

एक चुनाव तो कर रहा था, किसी-न-किसी तरीक़े से वह उस दर्द का ही चुनाव कर रहा था।
यक़ीनन, मैंने उससे इसमें से कोई बात नहीं कही। मैं यह सोचने में बहुत व्यस्त था कि हाँ शायद मुझे सच में नहीं पता था कि ऐसे हालात में क्या कहना चाहिए। यह वो समस्या है जो मेरे काम के साथ आती है। ऐसी समस्या जिसका मैंने ख़ुद चयन किया था। एक ऐसी समस्या जिसका सामना करना मेरी ही ज़िम्मेदारी थी।
पहले तो सिर्फ मुझे बुरा लगा। लेकिन फिर, कुछ पल बाद, मैं नाराज़ होने लगा। मैंने ख़ुद से कहा कि मैं जो कह रहा था उसका उसकी आपत्ति से कोई लेना-देना नहीं था और यह क्या बकवास थी? क्योंकि मेरे पास कोई बच्चा नहीं था जो मर गया था, तो इसका यह मतलब नहीं था कि मैं किसी भयानक पीड़ा से नहीं गुज़रा था, लेकिन फिर मैंने ख़ुद अपनी सलाह पर अमल किया। मैंने अपनी समस्या का चुनाव किया। मैं भी उस आदमी पर बौखला कर उससे बहस कर सकता था। अपने दर्द से उसे उसकी तकलीफ़ से बाहर निकालने की कोशिश कर सकता था, लेकिन इससे हम दोनों ही बेवकूफ़ और असंवेदनशील नज़र आते। या मैं बेहतर समस्या का चुनाव करके, धैर्य का अभ्यास करके, अपने पाठकों को बेहतर तरीक़े से समझकर आगे के लिए एक सबक ले सकता था। अब जब भी मैं पीड़ा या त्रासदी के बारे में लिखता हूँ तो उस आदमी की बात मेरे दिमार में रहती है और मैंने इस दूसरे विकल्प का ही चुनाव किया।
मैंने बस इतना जवाब दिया कि उसकी तकलीफ़ के लिए मुझे अफ़सोस है। इससे ज्सादा और मैं कुह भी क्या सकता था?

अनुवांशिकी और हालात को स्वीकारना

2013 में, बीबीसी ने ऑब्सेसिव-कम्पल्सिव डिसऑर्डर (ओसीडी) वाले लगभग दर्जन भर युवाओं को इकट्ठा किया और उनकी थेरेपी के दौरान उनकी गतिविधियों पर नज़र रखी। वे युवा थेरेपी के माध्यम से अवांछित विचारों और अपने दोहराव वाले बर्ताव को नियन्त्रित करना चाहते थे। उनमें एक सत्रह साल की लड़की थी, इमोजेन, जो किसी भी चीज़ के पास से गुज़रती, तो उसकी सतह को लगातार थपथपाती रहती। अगर वह ऐसा नहीं कर पाती तो उसके मन में बहुत से भयानक विचार कुलबुलाने लगते, जैसे कि उसका परिवार किसी हादसे का शिकार हो जायेगा। एक

जॉश नाम का लड़का था जो कोई भी काम अपने शरीर के दायें और बायें, दोनों भागों से करता था-जैसे किसी इन्सान से हाथ मिलाते हुए अपने दोनों हाथों का इस्तेमाल करता, खाना खाने में भी अपने दोनों हाथों का इस्तेमाल करता, किसी दरवाज़े से बाहर निकलते हुए अपने दोनों पैर एक साथ उठाता, वग्रह। अगर वह अपने दोनों भागों का 'बराबरी' से इस्तेमाल नहीं कर पाता, तो उसे घबराहट का दौरा पड़ने लगता। एक जैक नाम का लड़का था, जिस को हर जगह कीटाणु होने का एहसास रहता और वह कभी भी अपने घर से बिना दस्ताने पहने बाहर नहीं निकलता। पानी पीने से पहले उसे उबालता, और खुद अपने हाथ से बना हुआ साफ़ खाना ही खाता कुछ और नहीं।

औसीडी एक तन्तिका सम्बन्ी और अनुवांशिकी समस्या है, जो पूरी तरह से ठीक नहीं हो सकती। इसे बस किसी हृद तक नियन्त्रित ही किया जा सकता है। और यह देखा गया है कि किसी की यह समस्या सन्तुलित करने के लिए उसके आदशों को सन्तुलित करना पड़ता है।

इस प्रोजेक्ट में मनोवैज्ञानिक सबसे पहला काम यह करते हैं कि वे बच्चों को बताते हैं कि अपनी इस कमी को स्वीकार करना होगा। इसका एक उदाहरण है, जब इमोजेन को ऐसे भयानक ख़याल आते हैं कि उसका परिवार ख़त्म हो जायेगा, तो उसे स्वीकार करना होगा कि एक दिन वास्तव में उसके परिवार में सभी की मौत हो जायेगी। वह इसके लिए कुछ नहीं कर सकती है। उसे यह बताया गया कि उसके साथ जो भी घटित होगा उसमें उसकी कोई ग़लती नहीं होगी। जॉश पर दबाव डाला गया कि आगर वह लम्बे समय तक दोनों भागों की 'बराबरी' पर ज़ोर डालता रहेगा तो उसकी समस्या घबराहट के उन दौरों से और ज्यादा बढ़ जायेगी। और जैक को याद दिलाया गया कि वह भले ही कुछ भी कर ले, कीटाणु तो हर जगह रहेंगे ही और वह उसे हमेशा टूरषित भी करते रहेंगे।

इसका लक्ष्य बच्चों को यह समझाना था कि उनके आदर्श तर्कसंगत नहीं थे- वास्तव में वह आदर्श उनके अपने आदर्श थे भी नहीं, बल्कि उस असन्तुलन के थे। और इन बेतुके आदर्शों को पूरा करने में वे अपने जीवन की गतिविधियों को नुक़सान पहुँचा रहे थे।

अगला क़दम है उन बच्चों को एक महत्त्वपूर्ण आदर्श के चयन के लिए प्रेरित करना और उस पर ध्यान कैन्द्रित करना, बजाय उनके ओसीडी वाले आदर्श के। जॉश के लिए, ज़रूरी है कि वह अपने परिवार और दोस्तों के सामने अपनी कमी न छिपाये, और एक सामान्य, सामाजिक जीवन जिये। इमोजेन को अपने विचारों और भावनाओं पर नियन्त्रण करके वापस से एक ख़ुशहाल ज़िन्दगी जीनी होगी, और जैक को लम्बे

समय तक घर छोड़कर बाहर ही रहते हुए उस भयानक एपिसोड से छुटकारा पाने की कोशिश करनी होगी।
अपने मन में इन नये आदश्शों को बसाये ये किशोर अब और गहन अभ्यास के लिए तैयार हैं, और अपनी ज़िन्दगी को इसी के गिर्द बुनने का प्रयास करें े। घबराहट के दौरे फिर भी पड़े; आँसू भी बहे; जैक ने बीच में आने वाली चीज़ों को छुआ और फिर वापस अपना हाथ धोने भागा। लेकिन डॉक्यूमेंट्री खत्म होने तक, एक बड़ा सफ़र पार किया जा चुका था। इमोजेन को अब हर चीज़ थपथपाने की ज़रूरत नहीं थी। उसने बताया, "मेरे मन में अब भी बुरे ख़याल आते हैं, और शायद यह हमेशा रहेगा, लेकिन अब वह पहले से शान्त है।" जॉश पच्चीस से तीस मिनट तक का समय अपने दोनों भागों की 'बराबरी' किये बिना निकाल लेता है। और जैक, जिसने शायद सबसे ज्सादा विकास किया, अब वास्तव में रेस्टोरेंट्स में जाकर बोतल और गिलास को बिना थोये पानी पीने लगा था। जैक अपने सीखे सबक को यूँ बताता है: "मैंने इस ज़िन्दरगी को नहीं चुना था; मैंने इस बुरे, भयानक हालात को नहीं चुना था। लेकिन मैंने इसके साथ जीने का तरीक़ा चुन लिया; मुझे वह सीखना ही था।"
बहुत से लोग इन कमियों, चाहे वह ओसीरडी हो या कोई और छोटी बात, पर ख़ास ज़ोर देते हुए अपनी ज़िन्दगी को जस-का-तस अपना लेते हैं। उन्हें लगता है कि इसके लिए वे कुछ नहीं कर सकते, वे अपने हालात की ज़िम्मेदारी लेने से कतराते रहते हैं। वो मानते हैं, "मैंने अपनी यह अनुवांशिकी नहीं चुनी, अगर हालात बिगड़ते हैं तो इसमें मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है।"
और यह सच है, इसमें उनकी कोई ग़लती नहीं है। लेकिन फिर भी यह उनकी ही ज़िमेदारी है।
कॉलेज के दिनों में, मुझ पर एक प्रोफ़ेशनल पोकर प्लेयर (प्त्तेबाज़) बनने का जुनून सवार था। मैं उसमें पैसे भी जीत लेता और उसमें मज़ा भी था, लेकिन एक साल तक गम्भीरता से पोकर खेलने के बावजूद मैंने उसे छोड़ दिया। पूरी रात जागकर, कम्प्यूटर रक्रीन को घूरना, एक ही दिन में हज़ारों डॉलर जीतना और फिर उसमें से काफ़ी अगले ही दिन हार जाने में मेरा मन नहीं लग पा रहा था। मुझे समझ आ गया था कि यह कमाने का कोई स्वस्थ तरीक़ा नहीं था। लेकिन पोकर प्लेयर के रूप में बीते मेरे समय ने मुझे ज़िन्दगी में बहुत कुछ सिखाया। पोकर की सबसे बड़ी खुबसूरती यही थी कि इसमें हमेशा क़िस्मत हावी रहने के बावजूद वह आपके रिजल्ट में लम्बे समय तक मुख्य कारण नहीं बन पाती थी। किसी आदमी को बुरे पत्ते भी मिल सकते हैं और वह अच्छे पत्ते वाले आदमी को पीटकर अपनी हताशा भी निकाल सकता है। यक्कीनन, जिसके पास अच्छे पत्ते आये हैं, उसके जीतने की

उम्मीद ज्रादा है, लेकिन आख़िर में विजेता का निर्णय-आपने बिलकुल सही सोचा-उस चुनाव से ही होता है जो खिलाड़ी गेम के दौरान करते हैं। मैं ज़िन्दगी को भी इसी नज़रिये से देखता हूँ। हम सबको पत्तों का सामना करना पड़ता है। हमें से कुछ को दूसरों से बेहतर पत्ते मिलते हैं। पत्तों के सहारे चलना बिलकुल आसान है। हम सोच सकते हैं कि हमने दूसरे लोगों को मात दे दी, लेकिन वास्तविक खेल उन पत्तों के प्रति हमारे चुनाव से चलता है, वह जोख़िम मायने रखता है जो हम लेना चाहते हैं, और वह परिणाम जिसके सहारे हम जीने का निर्णय लेते हैं। जो लोग हमेशा बेहतरीन चुनाव करते हैं वही पोकर के खेल में विजेता बनते हैं, ऐसा ही ि़न्दगी में भी है, और इसके लिए आपके पास अच्छे पत्ते होना ज़रूरी नहीं है।

ऐसे बहुत से लोग हैं जो किसी अनुवांशिकी या तन्त्रिका सम्बन्धी कमी के चलते मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक रूप से पीड़ित हैं। लेकिन इससे कुछ नहीं बदलता। यक़लीनन, उनके हिस्से कुछ बुरे पत्ते आये हैं और इसका उन्हें दोष भी नहीं दिया जा सकता। जैसे कोई छोटे क़द का आदमी डेट पर जाना चाहता है तो उसके छोटे क़द को इसका दोष नहीं दिया जा सकता या कोई व्यक्ति जिसके साथ लूट हुई है, उसे इस लूट का ज़िम्मेदार नहीं माना जा सकता। लेकिन फिर भी आगे के हालात की ज़िम्मेदारी उन्हीं की है। वह इसके लिए मानसिक इलाज हूँढ़कर, थेरेपी लेते हैं। या फिर कुछ नहीं करते, यह चुनाव सिर्फ़ उन्हीं का है। बहुत से लोगों का बचपन बुरा बीता होता है। बहुत से लोग शारीरिक, भावनात्मक और आर्थिक रूप से शोषण का शिकार होते हैं। अपनी अड़चन या समस्याओं के लिए ख़ुद दोषी नहीं होते हुए भी, आगे बढ़कर अपने हालात बदलने की ज़िम्मेदारी हमेशा उन्हीं की होती है। अगर आपको ऐसे लोगों को इकट्ठा करना पड़े जो किसी तरह की मनोवैज्ञानिक समस्या का शिकार रहे हों, तनाव से पीड़ित हों, आत्महत्या जैसे विचारों से जूझ रहे हों, कभी-न-कभी शोषण का शिकार हुए हों, किसी अप्रिय घटना का सामना किया हो, किसी तरह की गम्भीर शारीरिक समस्या से जूझ रहे हों, किसी दुर्घटना का शिकार हुए हों या ज़िन्दगी में कभी कोई सदमा लगा हो- अगर आप ऐसे लोगों को इकट्ठा करके एक कमरे में बन्द करने जायेंगे, तो शायद आपको अपने आसपास कि सभी लोगों को उस कमरे में बन्द करना होगा। क्योंकि कोई भी इन्सान ऐसा नहीं होता जो अपने मन पर इनमें से किसी एक तकलीफ़ का दाग लेकर नहीं चल रहा हो।

यक़ीनन कुछ लोग, द्रसरों से ज्यादा परेशानी का सामना करते हैं और कुछ लोग क़ानूनी रूप से पीड़ित होते हैं। लेकिन भले ही यह हमें कितना ही परेशान क्यों न करे, सच यही है कि किसी भी हालात को बदलने की ज़िम्मेदारी हमारी अपनी ही होती है।

पीड़ित होने का फ़शन

ज़िम्मेदारी का झूठा भ्रम लोगों को अपनी समस्या के समाधान की ज़िम्मेदारी दूसरों पर डालने की छूट देता है। दूसरों को दोष देकर हम थोड़ी देर तक बेहतर महसूस करते हैं और हमें एहसास होता है कि हम नैतिक रूप से सही की तरफ़ हैं। बदकिस्मती से, इंटरनेट और सोशल मीडिया का एक साइड इफ़ेक्ट है कि अब अपनी ज़िम्मेदारी टालना आसान होता जा रहा है-भले ही वे कितने ही छोटे मसले क्यों न हों-लेकिन उन्हें तुरन्त किसी दूसरे व्यक्ति या समूह पर डाल दीजिए। वास्तव में, इस तरह का पब्लिक ब्लेम/शेम गेम बहुत लोकप्रिय भी है; और कुछ निश्चित लोग इसे 'कूल' भी मानते हैं। नाइन्साफ़ी के सार्वजनिक प्रदर्शन से आप सोशल मीडिया पर ज्यादा ध्यान और भावनात्मक खिंचाव महसूस करते हैं, बजाय कि किसी सामान्य घटना के। जो लोग ख़ुद को पीड़ित दिखा पाते हैं उन्हें सहानुभूति और ध्यान इनाम में मिलते हैं।

पीड़ित होने का फ़ैशन' राइट और लेफ्ट दोनों तरह की विचारधाराओं के प्रचलन मैं है, इससे अमीर या ग़रीब कोई भी अछूता नहीं है। वास्तव मैं, मानव इतिहास में शायद पहली बार ऐसा हो रहा है जब जनसंख्या का हर समूह ख़ुद को अनुचित रूप से हालात का शिकार मान रहा है। सब ख़ुद को नैतिक रूप से महान बताते हुए अपनी समस्याओं को डिस्प्ले पर रख रहे हैं।

आज के समय में, कोई भी किसी भी चीज़ से आहत हो सकता है-भले ही इसकी वजह यूनिवसिटी में लगी रंग-भेदी कोई किताब हो, या स्थानीय मॉल में क्रिसमस ट्री लगाने का प्रतिबन्ध हो या बचत राशि पर आधा प्रतिशत टैक्स और बढ़ा दिया गया हो-सबको महसूस हो रहा है कि उसे किसी-न-किसी रूप में दबाया जा रहा है और इसलिए उसे अपना गुस्सा ज़ाहिर कर लोगों का ध्यान आकर्षित करने का हक़ है। वर्तमान मीडिया ऐसी प्रतिब्क्रियाओं को न सिर्फ़ बढ़ावा देता है, बल्कि उन्हें स्थिर बना देता है, क्योंकि यह उनके बिज़नेस के लिए अच्छा है। लेखक और मीडिया कमेंटेटर रयान होलीडे इसे 'अत्याचार का पोन कहते हैं: असली मुदों या असली कहानियों को कवर करने के बजाय, मीडिया को यह ज्सादा आसान (और ज्यादा फ़ायदेमन्द) लगता है कि किसी को आहत पाकर, उसकी कहानी को ज्यादा से ज्ादा लोगों तक पहुँचाकर, लोगों में उत्तेजना पैदा की जाये, और फिर उस उत्तेजना को जनसंख्या कि दूसरे हिस्से में दिखाकर उनका भी ध्यान उस मु् तक लाया जाये। इससे एक पलटवार का अहं पनपता है और दो काल्पनिक धड़े आपस में उलझकर

रह जाते हैं और इस बीच सबका ध्यान वास्तविक सामाजिक मुद्दों से हट जाता है। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि अआज हम राजनीतिक रूप से पहले से ज्यादा धुवीकृत हो रहे हैं। पीड़ित होने के फैशन से सबसे बड़ी समस्या यह है कि इससे वास्तविक रू्प से पीड़ित इन्सानों पर ध्यपान जा ही नहीं पाता। यह वैसी बात है मानो कोई लड़का "भेडिया आया' का झूठा शोर मचाकर रो रहा हो। छोटी-छोटी बातों के लिए आहत होने वाले लोगों की संख्या में इतनी बढ़ोतरी के चलते, अब यह मुश्किल हो चला है कि हम वास्तव में पीड़ितों की पहचान कर पायें।

लोगों में भी हर समय पीड़ित बने रहने का एक नशा-सा होने लगता है क्योंकि इससे कुछ देर के लिए वे बेहतर महसूस कर पाते हैं। ख़ुद को साधु और नैतिक रूप से श्रेष्ट दिखाकर वे सहानुभूति हासिल करने के खेल में टिकना सीख जाते हैं। जैसा कि राजनीतिक कार्टूरनिस्ट टिम क्रेडर ने न्यूयोर्क टाइम्स में कहा था, "उत्तेजना उन चीज़ों में से है जो आपको अच्छा महसूस करवाती है लेकिन समय के साथ यह हमें अन्दर से खोखला कर जाती है। यह दूसरे विपरीत प्रभावों से ज्यादा धोखेबाज़ है क्योंकि हम सचेत रूप से कभी नहीं जान पाते कि यह एक भ्रामक सुख है।"

लेकिन लोकतन्त्र और मुक्त समाज में रहने का एक हिस्सा यह भी है कि हमें उन नज़रियों और लोगों के साथ भी व्यवहार करना पड़ता है, जिन्हें ज़रूरी नहीं कि हम अच्छा मानें। यह वो क़ीमत है जिसका भुगतान हमें करना ही पड़ता है-आप इसे सिस्टम का तरीक़ा भी मान सकते हैं लेकिन लगता है कि अब ज्य़ादातर लोग इसे भूलने लगे हैं।

हमें अपने संघर्षों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए, जबकि साथ ही साथ अपने दुश्मन के साथ भी कुछ तो सहानुभूति रखनी ही चाहिए। हमें ख़बरें और समाचार स्वस्थ सन्देह से देखने चाहिए और जिनसे हम सहमत नहीं हैं उन्हें गहरे रंग से रेखांकित करने से बचना चाहिए। हमें ईमानदारी और पारदर्शिता को प्राथमिकता देनी चाहिए और अपने आदर्शों पर उठे सन्देह को खुले दिल से अपनाने के लिए तैयार रहना चाहिए। अज की शोरगुल भरी दुनिया में लोकतन्त्र के इन आदर्शों पर टिके रहना बहुत मुश्किल हो चला है। लेकिन हम सबको ज़िम्मेदारी स्वीकार कर, सुधार की उममीद तलाशनी चाहिए। हमारी राजनीतिक प्रणाली की भुविष्य की स्थिरिता इसी पर टिकी है।

कैसे का सवाल ही नहीं है

बहुत से लोग इसे सुन लेते हैं और फिर पूछते हैं, "ठीक है, लेकिन कैसे? मैं समझ गया हूँ कि मेरे आदर्श बेतुके हैं और मैं हमेशा से अपनी समस्या की ज़िम्मेदारी लेने से बचता आया हूँ और मैं उन लोगों की बात का लोड ले लेता हूँ जिन्हें लगता है कि यह दुनिया मेरे गिर्द घूमती है-लेकिन मैं कैसे बदल सकता हूँ?"

और इसके लिए मैं कहता हूँ: "करो या मत करो; लेकिन कैसे' का सवाल ही नहीं है।"

आप पहले से ही चुनाव कर रहे हैं, हर दिन के हर पल में, किस चीज़ का लोड लेना है, तो बस अपने लोड को किसी दूसरी चीज़ पर लगा दो।

यह इतना ही सरल है। लेकिन उतना आसान नहीं।

यह आसान नहीं है क्योंकि आप ख़ुद को हारा हुआ महसूस करने लगते हैं, एक धोखेबाज़ और मूर्ख। आप घबरा सकते हैं। आप बेचैन हो सकते हैं। इस प्रक्रिया में हो सकता है आप पत्नी, अपने दोस्त या फिर अपने पिता पर ही भड़क जायें। ये आपके आदश्श बदलने के साइड इफ़ेक्ट हैं। लेकिन इन्हें टाला नहीं जा सकता। ये सरल तो हैं, लेकिन हैं बहुत मुश्किल। चलिए एक नज़र इन साइड इफ़ेक्ट्स पर डालते हैं। आप

अनिश्चितता महसूस कर सकते हैं; इसकी में गारंटी लेता हूँ। "क्या यह मुझे छोड़ देना चाहिए? क्या यह करने के लिए सही चीज़ है?" वे आदर्श जिन पर सालों से चलते चले आ रहे हैं, उन्हें छोड़ने से आप बिखरा हुआ महसूस करते हैं, मानो अब तक आपको सही-गालत की समझ ही नहीं थी। यह मुश्किल है, लेकिन सामान्य है। अगला, आप असफल महसूस करोगे। आपने अपनी आधी ज़िन्दगी खुद को उसी मानदण्ड से नापते हुए गुज़ार दी है, तो जब आप अपनी प्राथमिकता, अपने मानदण्ड बदलते हैं और पुराने तरीक़ि से बर्ताव करना बन्द कर देते हैं, तो एकबारगी तो आपको लगता है कि आपका कोई वजूद ही नहीं है। यह पूरी तरह सामान्य है, होँ कुछ असहज ज़रूर है और निश्चित रूप से आपको कुछ इनकार का सामना भी करना पड़ सकता है। आपकी ज़िन्दगी के बहुत से रिश्ते आपके पुराने आदर्शों के गिर्द बनते हैं, तो जिस पल आप उन आदशों को बदलने का निर्णय लेते हैं उसका असर आपके रिश्तों पर भी पड़ेगा। मानो आपने तय किया कि यँ पार्टी- शाटी में ज़िन्दगी बिताने का कोई फ़ायदा नहीं है, और शादी करके घर बसाना आपके लिए ज्ग़ादा सही रहेगा; या फिर पैसों से ज्ञादा मनचाहा काम करने में आपको ज्यादा ख़ुशी मिलेगी-तो आपके आसपास का माहौल भी बदलेगा, और हो सकता है कि कोई आपके मुँह पर मुक्का भी मार दे। यह भी सामान्य है, और यक़ीनन असहज भी।

यह ज़रूरी है, थोड़ा तकलीफ़देह भी, ये आपके लोड लेने की वजह बदलने के साइड इफ़ेक्ट हैं। जब आप अपने आदर्शों को बदलते हैं तो आपको कई अन्दरूनी और बाहरी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इसे भी ज्यादा, आप अनिश्चित महसूस करेंगे और आपको लगेगा कि आपसे कोई ग़लती तो नहीं हो गयी।
लेकिन जैसा कि हमने देखा, यह सब अच्छे के लिए होगा।

आप हर मामले में गलत हो (लेकिन मैं भी)

पाँच सौ साल पहले नवशानवीसों को लगता था कि कैलिफ़ोर्निया एक द्वीप है।
डॉक्टर्स मानते थे कि किसी आदरमी की बाँह काटने (या कहीं से भी ख़ुन बहने पर) बीमारी का इलाज हो सकता था।
वैज्ञानिकों का मानना था कि आग किसी फ्लोजिस्टन नामक तत्त्व से निकलती है।
औरतें मानती थीं कि कुत्ते का पेशाब अपने मुँह पर लगाने से उनकी त्वचा पर एटी-एजिंग असर होगा। अन्तरिक्ष यात्रियों का मानना था कि सूर्य पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाता है।
जब मैं एक छोटा लड़का था, तो सोचा करता था कि 'मीडियोकर' किसी तरह की सब्ज़ी है, जो मैं नहीं खाना चाहता था। मैं सोचता था कि मेरे भाई ने मेरी दादी के घर में एक गुप्त रास्ता हूँढ़ लिया है क्योंकि उसे बाहर जाने के लिए बाथरूम का बहाना नहीं बनाना पड़ता था। मैं यह भी सोचता था कि जब मेरा दोस्त और उसका परिवार 'वाशिंगटन बी.सी. जाया करते थे तो यह किसी तरह की टाइम मशीन से समय में पीछे की तरफ़ जाते थे, क्योंकि 'बी.सी. तो ईसा पूर्व की बात करता है न। जब में किशोर था, तब सबसे कहा करता था कि मुझे किसी बात की परवाह नहीं है, जबकि सच यह था कि मैं तो बहुत ज्ज्रादा परवाह किया करता था। दूसरे लोग मेरी ज़िनदगी पर इतना प्रभाव डालते थे, जितना मुझे पता भी नहीं था। मैं सोचता था खुशी मंज़िल है, चुनाव नहीं। मैं सोचता था प्यार बस हो जाता है, इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता। मुझे लगता था 'कूल' दिखने के लिए अभ्यास की ज़रूरत होती है, और इसे दूसरों से सीखा जा सकता है, बजाय इसे अपने अन्दर हूँढ़ने।

जब मैं अपनी पहली गलफ्रेंड के साथ था, तो सोचता था कि हम हमेशा साथ रहेंगे और फिर, जब वो रिश्ता ख़त्म हो गया, तो मुझे लगा कि अब मैं फिर किसी महिला के बारे में वैसा नहीं सोच पाऊँगा लेकिन जब मैं किसी और महिला के बारे में वैसे ही महसूस करने लगा, तो मैंने सोचा कभी-कभी सिर्फ़ प्यार ही काफ़ी नहीं होता। और फिर मुझे एहसास हुआ कि हर इन्सान को अपने बारे में केवल इतनी ही सीमा निर्धारित करने का हक़ है, और प्यार वही बन सकता है, जो हम उसे बनाना चाहते हर क़ृदम पर मैं रालत था। हर चीज़ के बारे में। अपनी पूरी ज़िन्दगी, मैं अपने बारे में, समाज के बारे में, संस्कृति, दुनिया, संसार, सभी के बारे में ग़लत रहा। और मुझे उम्मीद है कि मेरे बाक़ी के जीवन में भी यही सब चलता रहेगा। जैसे कि आज वर्तमान के मार्क को अतीत के मार्क में कमियाँ और ग्रालतियाँ नज़र आती हैं, हो सकता है भविष्य के मार्क को वर्तमान के मार्क के हर काम में (हो सकता है इस किताब में लिखी बातों के बारे में भी) ग्रलतियाँ दिखें और यह अच्छी ही बात होगी, क्योंकि इसका मतलब है कि मैं हर दिन कुछ नया सीख रहा हूँ। अपना विकास कर रहा हूँ।

इस बारे में मशहूर माइकल जॉर्डन ने बताया था कि वि बार-बार असफल हुए, और यही उनकी सफलता का राज है मैं हमेशा से हर चीज़ के बारे में गालत रहा, बार-बार, और इसी तरह मैंने ज़िन्दगी के अहम सबक सीखे।

विकास एक बार-बार दोहराये जाने वाली प्रक्रिया है। जब हम कुछ नया सीखते हैं तो हम रालत' से 'सही' नहीं बन जाते बल्कि हम कुछ कम ग़लत हो जाते हैं पफिर हम कुछ और सीखते हैं, फिर कुछ और कम ग़लत होते हैं तथा फिर कुछ और कम, यह प्रक्रिया इसी तरह चलती रहती है। हम हमेशा सच और परफ़ेक्शन तक पहुँचने की प्रक्रिया में होते हैं और वास्तव में कभी वहाँ तक नहीं पहुँचते।

हमें अपने बारे में पूरी तरह 'सही जवाब को हूँढ़ने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, बल्कि हमें जानना चाहिए कि जिस चीज़ में हम आज ग़लत हैं, कल उसमें कुछ कम ऱलत हों।

जब इस नज़रिये से देखते हैं, तो निजी विकास एकदम साफ़-साफ़ समझ आता है। हमारे आदर्श हमारा अनुमान होते हैं. यह व्यवहार अच्छा और महत्त्वपूर्ण है; जबकि टूसरा व्यवहार नहीं। हमारे काम एक प्रयोग होते हैं; उनसे उत्पन्न हुए भाव और विचार हमारा डाटा।

कोई भी सही सिद्धान्त या अचूक आदश्शवाद नहीं होता। आपके अनुभव से जो बात आपके लिए सही होती है, वही सही है-भले ही, वह गालत ही क्यों न हो। आपकी, मेरी और हर किसी की ज़रूरतें अलग हैं, हमारा निजी इतिहास, हालात भिन्न हैं तो

हम सब भिन्न-भिन्न 'सही' जवाबों पर पहुँचते हैं। और यही हमारे लिए मायने रखता है। मेरे सही जवाब में सालों तक अकेले सफ़र करना, अजीब जगहों पर रहना, और ख़ुद अपने पाद पर हँसना शामिल है, कम-से-कम, हाल तक वह मेरे लिए सही जवाब था। वह जवाब बदल जायेगा; क्योंकि मैं भी हर पल बदलता हूँ, सीखता हूँ; और जब मैं और अनुभवी हो जाऊँगा, तो मैं कहँगा कि उस समय मैं कितना ग़लत था।

निश्चितता विकास की दुश्मन है। कुछ भी निश्चित नहीं है, जब तक कि वह वास्तव में घटित न हो गया हो-फिर भी, उसमें बहस की गुंजाइश बनी रहती है। इसलिए अपने आदर्शों की अपरिहाय्य कमियों को स्वीकार करना हमारे विकास के लिए ज़रूरी है। निश्चितता के पीछे भागने की बजाय, हमें सन्देहों की नियमित रूप से तलाश करते रहना चाहिए: अपने विश्वासों के प्रति सन्देह, अपनी भावनाओं के प्रति सन्देह, भविष्य में हमारे लिए क्या छिपा है उसके प्रति सन्देह, जब तक कि हम ख़ुद वहाँ पहुँचकर उसे अपने नियन्त्रण में न ले लें। हमेशा सही दिखने की कोशिश न करके, हमें यह देखना चाहिए कि हम कैसे हर समय ग़लत थे, क्योंकि यही सच है।

ग़लत को स्वीकारने से ही बदलाव की सम्भावना बनेगी। गलत होने से ही सही के लिए अवसर आयेंगे। इसका मतलब है जुकाम का इलाज करने के लिए अपना हाथ मत काटो या जवान दिखने के लिए अपने चेहरे पर कुत्ते का पेशाब मत मलो। इसका मतलब है कि 'मीडियोकर' को सब्ज़ी मत मानो, और चीज़ों की परवाह करने से डरो मत, क्योंकि कुछ है जो अजीब है, लेकिन सच है। हम वास्तव में नहीं जानते हैं कि सकारात्मक या नकारात्मक अनुभव क्या होता है। कभी-कभी हमारी ज़िन्दगी के कुछ सबसे ज्यादा मुश्किल और तनाव भरे पल ख़त्म होते हुए सबसे ज्यादा संगठित और प्रेरक साबित होते हैं। ज़िन्दगी के कुछ मज़ेदार और शानदार अनुभव बाद में दिशाहीन और हतोत्साहित करने वाले महसूस होते हैं। अपने सकारात्मकनकारात्मक अनुभव की अवधारणा पर विश्वास मत करो। जो बात हम निश्चित रूप से जानते हैं वह है कि उस पल में किस चीज़ ने हमें तकलीफ़ पहुँचायी और किसने नहीं। और इसकी ज़्रादा अहमियत नहीं होती। जैसे हम पाँच सौ साल पहले के लोगों की ज़िन्दगी को डर से देखते हैं, तो मैं कल्पना करता हूँ कि अब से पाँच सौ साल पहले के लोग हम पर और हमारी निश्चितता पर हँसेंगे। वे हँसेंगे कि हमने कैसे हमारे पैसे और नौकरी से ख़ुद को परिभाषित होने दिया। वे हँसेंगे कि हम उनकी तारीफ़ करने से हिचकते हैं जो सच में हमारे लिए मायने रखते हैं, और उन सेलिब्रिटीज़ की तारीफ़ करते हैं जो उसके क़ाबिल ही नहीं होते। वे हमारे रिवाजों और हमारे वहमों पर हँसेंगे, हमारी चिन्ताओं और लड़ाइयों का मज़ाक़ बनायेंगे;

हमारी बेरहमी से अवाक् रह जायेंगे। वे हमारी कला और हमारे तकों को हमारे इतिहास की नज़र से देखेंगे। वे हमारे उस सच को समझ जायेंगे जिसके बारे में हम अभी तक नहीं जानते हैं।
लेकिन वे भी गलूत हो सकते हैं। बस हमसे कुछ कम ग़ालत। हम अपने विश्वासों के निर्माता इसे ट्राई कीजिए। किसी भी इन्सान को कुछ बटन्स के साथ एक कमरे में बन्द कर दीजिए। फिर उसे बताइए कि जब भी वह कुछ ख़ास काम करेगा-कुछ भी काम,यह उसे ख़ुद तलाशना होगा-एक बत्ती जलेगी और इससे पता चलेगा कि उसने एक पॉइंट जीत लिया है। फिर उसे बताइए कि हम देखेंगे कि आधे घण्टे में वह कितने पॉइट जीतता है।
जब मनोवेज्ञानिकों ने यह शोध किया, तो उन्हें वही परिणाम मिला जिसकी आप उम्मीद कर रहे हैं। लोग बैठे और जल्दी-जल्दी से
बटन दबाने शुरू कर दिये, जब तक कि पहली बार लाइट नहीं जली और उन्हें एक पॉइंट नहीं मिल गया। उन्होंने उसी पैटर्न को बार-बार दोहराया और ज्यादा पॉइंट्स लेने की कोशिश की। लेकिन अब लाइट नहीं जली। तो पफिर उन्होंने कुछ और जटिल नम्बरों के साथ प्रयोग करने शुरू किये-और कहा-इस नम्बर को तीन बार दबाओ, फिर उस पॉइंट को एक बार, फिर पाँच सेकेंड इन्तज़ार करो, और-डिंग।! एक और पॉइंट। लेकिन इससे भी बात नहीं बनी। फिर उन्होंने सोचा, शायद इसका नम्बरों से कुछ लेना-देना ही नहीं है। शायद इसका मेरे बैठने के तरीक़े से कुछ सम्बन्ध है या शायद जिसे मैं छू रहा हूँ। शायद मेरे पैर हिलाने से। तभी डिंग! एक और पॉइंट। हाँ, शायद मेरे पैर और फिर इसके साथ कोई बटन। डिं गा
आमतौर पर, दस से प्द्रह मिनट में हर व्यक्ति ने कोई ख़ास नम्बर या अपने बर्ताव की कोई ख़ास बात पॉइंट के नज़रिये से हूँढ़ ली थी। इसके लिए वे एक पैर पर खड़े होने या कोई लम्बा-सा नम्बर याद रखने जैसे प्रयोग भी करके देख चुके थे। लेकिन इसका एक मज़ेदार भाग भी है: पॉइट्स बस ऐसे ही मिल रहे थे। उनका कोई क्रम नहीं था; कोई पैटर्न नहीं था। बस डिंग की आवाज़ से एक लाइट जल जाती थी और लोग उसके लिए कार्टव्हील तक कर रहे थे, मानो ऐसा करने से ही उन्हें पॉइंट्स मिल रहे थे।
मज़ाक़ को परे रखें तो इस प्रयोग का उद्देश्य यह दिखाना था कि इन्सानी दिमाग़ किस तरह से किसी भी चीज़ पर यक़ीन करने लगता है, भले ही वह वास्तविक न हो। और देखा जाये तो इस चीज़ में हम बहुत ही अच्छे हैं। उस कमरे से बाहर निकलने पर हर इन्सान को लग रहा था कि उसने इस प्रयोग को समझकर इस खेल को जीत लिया था। उन सबका मानना था कि उन्होंने उस परफ़ेक्ट क्रम को तलाश लिया था,

जिससे पॉइंट हासिल किये जा रहे थे। लेकिन हरेक का तरीक़ा ख़ुद उसी की तरह अनोखा और ख़ास था। एक आदमी ने बटन दबाने का एक लम्बा-सा क्रम बताया, जिसे उसके सिवाय कोई और नहीं समझ सकता था। एक लड़की ने बताया कि जब भी एक ख़ास संख्या तक छत को टैप करती, उसे पॉइंट मिल जाता। जब वह कमरे से बाहर निकली तो बार-बार उछलकर थक चुकी थी। हमारा दिमागा एक अर्थपूर्ण मशीन है। जिसे हम 'अर्थ समझते हैं वह दो अनुभवों से जुड़कर बनता है। हमने एक बटन दबाया और देखा कि लाइट जल गयी; हमने मान लिया कि बटन दबने से ही लाइट जलती है। यहाँ अर्थ की गहराई में यही है। बटन, लाइट; लाइट, बटन। हमने एक कुससी देखी। हमने ध्यान दिया कि यह स्लेटी रंग की है। हमारे दिमार ने कुर्सी और उसके रंग के बीच तालमेल बना लिया और अर्थ बना: कुसी स्लेटी रंग की है। हमारा दिमाग् हर समय काम कर रहा है, और ज्यादा से ज्ञादा चीज़ों के मतलब निकालने की कोशिश कर रहा है, जिससे हम अपने आसपास के माहौल पर नियन्त्रण बना सकें। जिस भी चीज़ का हम अनुभव करते हैं, अन्दर और बाहर से, वो हमारे मन में नये तार जोड़ती है। इस पन्ने पर लिखे शब्दों से लेकर, व्याकरण का कोई भी नियम जिससे आप उन्हें समझते हैं, या आपके मन में अचानक आया कोई गन्दा ख़याल-ऐसा हर ख़याल, विचार, समझ एक साथ आपके दिमार की हज़ारों तन्तिकाओं को प्रभावित करता है, और आपके मन में एक समझ, ज्ञान उत्पन्न करता है।

लेकिन दो समस्याएँ हैं। पहली, दिमाग परफ़ेक्ट नहीं है। हम चीज़ों को सुनने और देखने में ग़लती करते हैं। हम आसानी से चीज़ों को भूल जाते हैं या उनकी गालत व्याख्या कर लेते हैं।

दूसरी, एक बार जब हम अपने लिए मतलब बना लेते हैं, तो हमारा दिमाग उसी पर अड़ जाता है। हमारे दिमाग द्वारा निकाले गये मतलब की तरफ़ हम झुकने लगते हैं और उससे परे कुछ सोचना ही नहीं चाहते। अगर हमें अपने निकाले अर्थ के विपरीत सबूत भी दिखाये जायें, तो हम उन्हें भी अनदेखा करके, अपनी ही बात पर टिके रहना चाहते हैं।

कॉरमेडियन एमो फिलिप्स ने एक बार कहा था, "मैं सोचा करता था इन्सानी दिमारा मेरे शरीर का सबसे शक्तिशाली अंग है। फिर मुझे एहसास हुआ कि यह बात मुझे बता कौन रहा था।" सबसे बदक़िस्मती की बात है कि हम जो कुछ भी जानते' और मानते हैं वह हमारे दिमाग् में मौजूद स्वाभाविक अशुद्धता और भेदभाव का ही उत्पाद है। हमारे बहुत से आदर्श उन घटनाओं का उत्पाद हैं जो बड़े पैमाने पर

दुनिया का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, या वह एक गलत समझे हुए अतीत का परिणाम हैं।
इस सबका परिणाम? हमारी ज्यादातर मान्यताएँ ग़ालत हैं। या और सही बात कही जाये, तो सारी मान्यताएँ ग़लत हैं-बस कुछ दुसरों से कम रालत हैं। इन्सानी दिमाग अशुद्धता का घालमेल है। भले ही यह आपको असहज करे, किन्तु यह एक बहुत ही महत्तपूर्ण धारणा है जिसे स्वीकार करना ही चाहिए।

अपनी मान्यताओं के प्रति सचेत रहें

1988 में, एक थेरेपी के दौरान, पत्रकार और महिलावादी लेखिका मेरेडिथ मारां को हैरानी भरा एहसास हुआः बचपन में उसके पिता ने उसका शारीरिक शोषण किया था। यह उसके लिए बड़ा सदमा था, एक दबी हुई याद को लिए वह अपनी काफ़ी ज़िन्दगी जी चुकी थी। लेकिन 37 साल की उम्र में उसने यह बात अपने पिता और परिवार के दूसरे सदस्यों को बतायी।
मेरेडिथ की खबर ने पूरे परिवार को सकते में ला दिया। उसके पिता ने तुरन्त ऐसी किसी भी बात से इनकार किया। परिवार के कुछ सदस्य मेरेडिथ की तरफ़ आ गये। कुछ उसके पिता की तरफ़। उनका परिवार दो टुकड़ों में बँट गया। आरोप लगने से पहले भी मेरेडिथ और उसके पिता के बीच तनाव भरा रिश्ता था जो अब पूरी तरह से ख़त्म हो गया। इस सच ने हर किसी को तोड़ डाला।
1996 में, मेरेडिथ को एक और सच पता चला: उसके पिता ने वास्तव में उसे कभी शारीरिक रूप से शोषित किया ही नहीं था। (ऊप्स!) उसने एक जानी-मानी थेरेपिस्ट की मदद से अपनी दबी हुई याद के बारे में जाना। पछतावे से भर उसने बाकी की ज़िन्दगी अपने पिता और परिवार के बाक़ी सदस्यों के साथ सम्बन्ध सुधारने में लगायी। लेकिन काफ़ी देर हो चुकी थी। उसके पिता का देहान्त हो गया और उसका परिवार कभी वापस जुड़ नहीं पाया।
पता चलता है कि मेरेड़िथ अकेली नहीं थी। जैसा कि उसने अपनी आत्मकथा, माय लाइफ़ ए ट्र् स्टोरी औफ़ फ़ाल्स मेमोरी, में बताया कि 1980 के दशक में बहुत-सी महिलाओं ने अपने परिवार के पुरुष सदस्यों पर शारीरिक शोषण का आरोप लगाया, जिसे सालों बाद उन्हीं महिलाओं ने खण्डितू कर दिया। इसी तरह, बहुत से लोगों का

दावा था कि उसी दशक के दौरान एक शैतान सम्प्रदाय ने बच्चों का शोषण किया था, लेकिन दर्जनों शहरों में पुलिस की छानबीन के बावजूद ऐसे
किसी सम्रदाय के कोई प्रमाण नहीं मिले।
लोगों ने अचानक ऐसी यादों का आविष्कार कहाँ से कर लिया जहाँ परिवारों या सम्प्रदायों ने उनका शोषण किया हो? और यह सब 1980 के दशक में ही क्यों हो रहा था?
आपने बचपन में कभी टेलीफ़ोन का खेल खेला है? आप जानते हैं, आपने एक इन्सान के कान में कुछ कहा और यह आगे दस अआदमियों तक दोहराया जाता था, और जो बात आखिरी व्यक्ति के कान तक पहुँचती थी वह उससे बिलकुल जुड़ी हुई नहीं होती थी, जो बात आपने शुरू में कही थी। इसी तरह हमारी यादें काम करती हमें कुछ अनुभव हुआ हो। फिर कुछ दिन बाद हम इसे किसी और रूप में याद करते हैं, मानो वह बात फुसपफुसाकर कही गयी थी, या ग़लत सुन ली गयी थी। फिर हम इस बारे में किसी और को बताते हैं और बीच की एकाध ख़ाली जगह को अपनी सोच से भरने की कोशिश करते हैं। ऐसा हम इसलिए करते हैं कि हमारी कही बात का कुछ मतलब निकले और सामने वाला हमें पागल न समझ ले। फिर उन खाली जगहों में भरी गयी बात का भी हम भरोसा करने लगते हैं, और अगली बार से उसे भी अपनी बात में शामिल कर लेते हैं जबकि वे सच नहीं होते हैं। फिर हम अपने अनुभव में कुछ गलत बात भी जोड़ लेते हैं और उस बात के एक साल बाद, एक रात शराब पीते हुए हम उस कहानी को ज़रा और सजाकर सुनाने लगते हैं-ठीक है, ईमानदारी से बताते हैं। हम उसकी एक-तिहाई कहानी आअपने मन से ही बना लेते हैं। लेकिन अगले दिन, जब हमारा नशा उतरता है, तो हम यह स्वीकारना नहीं चाहते कि हमने इतना बड़ा झूठ बोला था, इसलिए हम उस शराब के नशे में दोहराई हुई कहानी को ही अपना लेते हैं। और पाँच साल बाद तो हम उसके लिए भगवान की मरी हुई माँ की कसम तक खाने को तैयार हो जाते हैं और जो बात 50 प्रतिशत सच थी, वह अब सच से भी बड़ा सच लगने लगती है। हम सभी ऐसा करते हैं। आप करते हैं। मैं करता हूँ। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि हम कितने ईमानदार हैं या कि हमारा इरादा नेक है, लेकिन हम ख़ुद को और दूसरों को भ्रम में तो रख रहे थे और अपने मन में ऐसी कहानी बनाकर बैठे थे जो पूरी तरह सही नहीं
थी।
न सिर्फ़ हमारी यादें हमें धोखा देती हैं-ये इतना बड़ा छलावा होती हैं कि प्रत्यक्षदर्शी के बयान को भी न्यायालय में हमेशा गम्भीरता से नहीं लिया जाता बल्कि
हमारा दिमागा भी पक्षपाती रूप से काम करता है।

कैसे? हमारा दिमाग वर्तमान हालात को हमें उसी तरह समझाता है, जैसे कि उससे जुड़ा हमारा अतीत का अनुभव होता है। सूचना का हर नया हिस्सा उसी मानदण्ड पर आँका जाता है और हम उसी परिणाम पर पहुँचते हैं, जो हमें पहले से पता होता है। परिणामस्वरूप, उस पल के लिए हमें जो सच लगता है, हमारा दिमार भी उसी तरफ़ झुक जाता है। तो जब अपनी बहन के साथ हमारा रिश्ता अच्छा होता है, तो उससे जुड़ी लगभग सारी यादें हम सकारात्मक रोशनी मैं देखते हैं। लेकिन जब रिश्ता ख़राब होता है, हम उन्हीं यादों को कुछ अलग तरह से देखने लगते हैं, उनहें उसी नज़रिये से दोबारा आविष्कृत कर लेते हैं, जो वर्तमान में हम उसके बारे में सोच रहे होते हैं। वह प्यारा-सा तोहफ़ा, जो उसने हमें पिछले क्रिसमस पर दिया था अब हमें उसकी दया और दिखावा लगता है। वह जब हमें अपने लेक हाउस पर बुलाना भूल गयी थी, उसकी मासूम-सी ग़लती अब हमें जानबूझकर किया गया षड्यन्त्र नज़र आता है।

मेरेडिथ की नक़ली शोषण की कहानी को हम तब अच्छी तरह समझ पाते हैं जब इसके इर्द-गिर्द बनी उसकी मान्यताओं को समझ पाते हैं। सबसे पहले तो, लगभग पूरी ज़िन्दगी ही मेरेडिथ का अपने पिता के साथ रिश्ता तनावपूर्ण और मुश्किल था। दूसरा, मेरेडिथ के रिश्ते कई आदमियों के साथ ख़राब हुए थे, जिसमें उसकी नाकामयाब शादी भी शामिल थी।

तो पहले से उसके आदर्शों में, 'आदमियों के साथ नज़दीकी रिश्ता' उतना सुहाना नहीं था।

फिर, 1980 के दशक की शुरुआत में, मेंरेड़िथ एक उत्साही महिलावादी बन, बच्चों के शोषण की कहानियों पॅर शोधू करने लगी। उसे एक के बाद एक भयानक् कहानी सुननी पड़तीं, और वह गम्भीर पीड़ितों-आमतौर पर छोटी बच्चियों से बराबर मिलती रहंती। उसने उन आँकड़ों परं भी रिपोर्ट बनायी जो उस समय अचानक सामने आने लगे थे कि बच्चों का शोषण कितने बड़े स्तर पर किया जाता है। (सबसे प्रचलित शुध था कि हर तीन में से एकृ महिला का उसके बच्पन् में शोषण हुआ था, वे आँकड़े जो बाद में झूठ लगने लगे) इस सबसे भी ऊपर, मेरेडिथ को एक दूसरी पीड़ित महिला से प्यार हो गया और उसके साथ एक रिश्ता बन गया। मेरेडिथ ने अंपनी पार्टनर के साथ सह-निर्भरता का रिश्ता बना लिया। उसे लगने लगा था कि उसे ही अपनी पार्टनर को उसके भयानक अतीत से बचाना होगा। उसकी पार्टनर भी अपने आतीत का इस्तेमाल एक हथियार के तौर पर मेरेड़िथ की सहानुभूति के लिए कर रही थी (इस बारे में अधिक जानकारी ' ना कहने की महत्ता नामिक अध्याय में)। इस दौरांन, मेरेडिथ के रिश्ते अपने पिता के साथ और बिगड़ गये (वे अपनी बेटी के लेस्बियन

सम्बन्ध से ख़ुश नहीं थे), वह थेरेपी लेने लगी। उसकी थेरेपिस्ट, जिसके अपने आदर्श और मान्यताएँ थीं, नियमित रूप से दबाव डालती कि मेरेडिथ के इस बर्त्व की वजह सिर्फ़ उसका तनाव भरा काम या असफल रिश्ते ही नहीं थे; इसके पीछे ज़रूर कुछ और था, कुछ बहुत गहरा। इसी दौरान, इलाज का एक नया तरीक़ा प्रचलन में आया, जिसे रिप्रेस्ड मेमोरी (दबी हुई यादेँ) कहा गया। इस थेरेपी में थेरेपिस्ट अपने क्लाइंट को सम्मोहित-सा कर उसे समस्या की जड़ तक जाने के लिए प्रेरित करती थी, और बचपन की किसी भूली हुई याद को सहेजने को कहती थी। अक्सर ये यादें भुला दी गयी होती थीं, लेकिन विचार था कि उनमें से ही किसी याद के चलते यह अवसाद मन में घर कर

गया होगा। बेचारी मेरेडिथ, जो पहले से ही पीड़ित और शोषित बच्चों की कहानियाँ लिख रही थी, अपने पिता से नाराज़ थी, पूरी ज़िन्दगी नाकामयाब रिश्तों का बोझ उठाती रही थी, और एक अकेली इन्सान जो उसे लगता था उसे समझती थी वह भी शोषण का शिकार थी। ओह, वह काउच पर लेटकर रो रही थी, क्योंकि थेरेपिस्ट रोज़ उससे कुछ ऐसी बात याद करने के लिए ज़ोर डाल रही थी, जो वह भूल चुकी थी और फिर उस पल, आपके पास शारीरिक शोषण की याद का आविष्कार करने की पूरी रेसिपी मौजूद थी, वह शोषण जो कभी हुआ ही नहीं था।

अनुभवों को सहेजते हुए हमारे दिमाग् की सबसे बड़ी प्राथमिकता होती है कि वह उन्हें पिछले अनुभवों, भावनाओं और मान्यताओं से जोड़ देता है। लेकिन अक्सर हम ऐसे हालातों में होते हैं जहाँ अतीत और वर्तमान की घटनाएँ आपस में जुड़ी हुई नहीं होतीं। ऐसे अवसरों पर हम जो उस पल में महसूस कर रहे होते हैं, उसी सच को अपने अतीत के बारे में भी स्वीकार कर लेते हैं। जुड़ाव तक पहुँचने की कोशिश में, ऐसे हालातों में अक्सर हमारा मन अतीत की झूठी यादों का आविष्कार कर लेता है। हमारे वर्तमान के अनुभव को काल्पनिक अतीत से जोड़ते हुए, हमारा मन हमें वह मानने का भ्रम देता है, जो हम पहले से ही समझे बैठे हैं।

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि मेरेडिथ की कहानी इकलौती नहीं थी। वास्तव में, 1980 और 90 के दशक की शुरुआत में, सैकड़ों निर्दोष लोगों पर, ऐसे ही हालातों में शारीरिक शोषण के आरोप लगाये गये। उनमें से बहुतों को तो जेल भी जाना पड़ा। जो लोग अपनी ज़िन्दगी से असन्तुष्ट होते हैं, उनके लिए ये सुझाये गये स्पष्टीकरण और मीडिया के सनसनीखेज तरीक़े से बनाये गये मसाले, जैसे-शारीरिक शोषण और शैतानी हिंसा की कहानियाँ प्रचलन में थीं ही, आप भी उनका शिकार हो सकते हो-लोगों के अचेत मन को छूट देते हैं कि वे भी अपनी तकलीफ़ और वेदना को उससे जोड़कर ख़ुद को पीड़ित बना लें। रिप्रेस्ड मेमोरी का काम इन अचेत इच्छाओं

को सामने लाकर उन्हें अपनी यादों का हिस्सा बना लेना था। यह प्रक्रिया और दिमागी हालत उस् सुमूय इतनी सामान्य बन गयी कि इसके लिए एक नाम भी तलाशा गया: फ़ाल्स मेमोरी सिंड़ोमा इसने न्यायालय के काम करने का तरीक़ा बदल दिया। बहुत से थेरेपिट्स पर मुक़दमे ठोंके गये और उनके लाइसेंस रद्द करने पड़े। रिप्रेस्ड मेमोरी को अभ्यास से बाहर कर कुछ ज्यादा प्रैक्टिकल तरीक़ि अपनाये गये। हालिया शोध सिर्फ़ तकलीफ़ भरे उस दौर पर ही ज़ोर देता है: हमारी मान्यताएँ हिलाई जा सकती हैं, और हमारी यादें भयानक रूप से अविश्वसनीय हो सकती हैं । बहुत-सी पारम्परिक मान्यताएँ हैं जो आपसे कहती हैं "ख़ुद पर भरोसा करो," और "अपने दिल की सुनो" और कुछ ऐसे ही मन को लुभाने वाली बातें, लेक्िन शायद जवाब है कि ख़द पर कम भरोसा करो। आखिरकार, अगर आपका दिल और दिमाग इतने अविश्वसनीय हो सकते हैं, तो शायद आपको अपने मक़सद और प्रेरणा पर और ज्यादा सवाल उठाने चाहिए। अगर हम सब ग़लत हैं, और वो भी हर समय, तो अपनी मान्यताओं और धारणाओं पर सन्देह करना क्या सही तार्किक प्रक्रिया नहीं है?
यह सुनने में डरावना और स्व-विनाशक लग सकता है। लेकिन वास्तव में यह है इसका पूरी तरह से विपरीत। यह न सिर्फ सुरक्षित विकल्प है, बल्कि यह हमें ज्सादा खुलकर जीने की आज़ादी भी देता है।

सम्पूर्ण निश्चितता का ख़तरा

एरिन एक सुशी रेस्तराँ में मेरे सामने बैठी थी और मुझे समझाने की कोशिश कर रही थी कि उसे मौत पर यक़ीन क्यों नहीं है। वहाँ बैठे हुए हमें लगभग तीन घण्टे बीत चुके थे, और वो खीरे के चार रोल्स और बियर की पूरी बोतल अकेले गटक चुकी थी। (वास्तव में, उसकी दूसरी बोतल भी आधी से ज्यादा ख़ाली हो गयी थी।) मंगलवार दोपहर के चार बज चुके थे।
मैंने उसे यहाँ नहीं बुलाया था। वह इंटरनेट से मेरी लोकेशन पता करके मुझे ढूँढ़ते हुए यहाँ आ पहुँची थी।
फिर से।
वह ऐसा पहले भी कर चुकी थी। आपने देखा, एरिन को पूरा भरोसा था कि वह मौत से भी लड़ सकती थी, लेकिन उसे लगता था कि इस काम में उसे मेरी मदद की भी

ज़रूरत होगी। किन्तु मेरी मदद किसी बिज़नेस के मक़सद से नहीं। अगर उसे मेरी मदद सिर्फ़ पीआर एडवाइस या ऐसे ही किरसी और काम के लिए चाहिए होती, तो भी कुछ और बात होती। नहीं, बात इससे ज्यादा थी वह मुझे अपना बॉयपफ्रेंड बनाना चाहती थी। क्यों? तीन घण्टे के सवाल-जवाब और डेढ़ बोतल चढ़ा लेने के बाद भी, यह साफ़ नहीं हो पाया था।

वैसे मैं बता दूँ कि मेरी मंगेतर भी हमारे साथ रेस्टोरेंट में थी। एरिन को लगा था कि उसका भी इस बातचीत में रहना महत्वपूर्ण होगा; एरिन उसे बताना चाहती थी कि वह "मुझे शेयर करने को तैयार थी" और उसे एरिन से "असुरक्षित महसूस नहीं करना चाहिए"।

मैं 2008 में एरिन से एक सेल्फ़-हेल्प सेंटर में मिला था। वह एक अच्छी इन्सान लगी थी। वह नयी उम्र के युवाओं की तरह थोड़ी-सी तुनक मिज़ाज थी, लेकिन वह वकील थी और आइवी लीग स्कूल में पढ़ी थी। यक़ीनन वह स्मार्ट थी। मेरे चुटकुलों पर हँसती थी और मुझे प्यारी भी लगती थी-तो, यक्ीनन जो मुझे जानते हैं, मैंने उसके साथ रिश्ता बनाया।

एक महीने बाद, उसने मुझे शहर से बाहर मिलने बुलाया, वह मेरे साथ वहीं बस जाना चाहती थी। इससे मेरे दिमाग में ख़तरे की घण्टी बजी, तो मैंने उसके साथ चीज़ं ख़त्म करने की कोशिश की। उसने कहा कि अगर मैंने उसके साथ आने को मना किया तो वह आत्महत्या कर लेगी। उफ़, ख़तरे की डबल घण्टी। मैंने तुरन्त उसे अपनी सारी ई-मेल आईडी पर ब्लॉक कर दिया।

इससे वह रुकी तो नहीं, लेकिन धीमी ज़रूर हो गयी।

मुझसे मिलने से सालों पहले, एरिन की कार का एक बड़ा एक्सीडेंट हुआ था और उसमें वह लगभग मर ही गयी थी। वास्तव में, कुछ पलों के लिए वह मेडिकल रूप से मृत' थी-उसकि दिमाग़ की सारी गतिविधि बन्द हो गयी थीं-लेकिन किसी चमत्कार से वह बच गयी। जब वह वापस आयी तो उसका कहना था कि वह बदल चुकी है। अब वह बहुत आध्यात्मिक इन्सान बन गयी। अब वह एनजी हीलिंग और ब्रह्माण्ड की एंजत्स, टैरो कार्ड आदि में यक़ीन करने लगी। उसे यह भी यक़ीन था कि अब वो हीलर (उपचारक) और भविष्यद्रष्ट बन गयी है। और जो भी कारण रहा हो, मुझसे मिलकर उसे लगा कि उसे और मुझे नियति ने दुनिया को बचाने के लिए चुना है क्योंकि हम दोनों साथ में मिलकर मौत को हरा सकते थे।

मेरे ब्लॉक करने के बाद वह नयी ई-मेल आईडी बनाकर मुझे मेल भेजने लगी। एक दिन में लगभग दर्जनों नाराज़गी भरे मैल्स। उसने ट्विटर और फेसबुक पर नक़ली एकाउंट्स बनाये और मुझे और मेरे क़रीबी लोगों को परेशान करना शुरू किया।

उसने मेरे ही जैसी एक वेबसाइट बनायी और उस पर दर्जनों लेख लिखे कि मैं उसका ब्बवॉयपफ्रेंड था और मैंने उससे झूठ बोला और उसे धोखा दिया। उसने कहा, मैंने उससे शादी का वादा किया था और वह और मैं एक-दूसरे के लिए बने थे। जब मैंने उससे वह वेबसाइट हटाने के लिए सम्पर्क किया, तो उसने कहा कि मुझे उसके साथ रहने के लिए कैलिफ़ोनिया जाना होगा। यह उसका समझौते का विचार था।

इस सबके दौरान वह एक ही बात कहती थी; मैं उसके साथ रहने के लिए ही बना हूँ, कि भगवान ने हमारी जोड़ी बनायी है कि एक बार आधी रात को वह एजल की आवाज़ सुनकर उठी थी, और उसने आदेश दिया था "हमारे ख़ास रिश्ते के बारे में"। इसी रिश्ते से धरती पर स्थायी रूप से शान्ति आ सकती थी (हाँ, उसने सच में मुझे यह बताया।)।जब तक हम साथ में सुशी रेस्तराँ में बैठे, उससे पहले तक हज़ारों मेल आ चुके थे। भले ही में उनका जवाब दूँया नहीं, जवाब सम्मान से हूँ या गुस्से से, उसमें कोई बदलाव नहीं आया था। उसका मन कभी नहीं बदला; उसकी मान्यताओं ने कभी हार नहीं मानी। उस बात को अब सात साल बीत चुके थे और अब, उस छोटे से सुशी रेस्तरां में, एरिन टैपिंग एनर्जी से अपनी बिल्ली के किडनी स्टोन को ठीक करने की कहानी बड़े मन से सुना रही थी।

एरिन पर ख़ुद में सुधार का भूत सवार था। उसने ये हज़ारों डॉलर किताबों, सेमिनारों और कोर्स पर ख़र्च कर दिये थे और इस सबका सबसे पागलपन भरा भाग था कि एरिन जो भी सीखती उसका ख़ुद पर प्रयोग करती रहती। उसका अपना सपना था। वह उसी पर दृढ़ रही। वह उसे विजुअलाइज़ करती और उस पर काम करती, फिर वह चाहे उसमें नाकामयाब रहे या टुकराई जाये। वह दोबारा वापस से उठकर कोशिश करती। वह हमेशा सकारात्मक रहती। वह ख़ुद के बारे में अच्छी बातें ही सोचती। मेरा मतलब, उसका मानना था कि उसने बिल्ली का वैसे ही उपचार किया था जैसे यीशु ने कंगाल भिखारी का-उफ़ क्या बकवास थी।

हालॉकि उसके आदर्श बेकार थे और उनका कोई मतलब नहीं था। लेकिन सच यह था कि वह सब कुछ अपने अनुसार 'सही के लिए ही कर रही थी।

उसके मन में इतनी निश्चितता थी कि वहाँ सन्दिह की गुंजाइश ही नहीं थी। उसने यह बात मुझे कई तरह से बतायी भी थी-कि वह जानती थी कि उसकी सोच बहुत बेतुकी और वाहियात थी, और उससे हम दोनों ही खुश नहीं थे। लेकिन किसी कारण से उसे लगता था कि वह इसे अनदेखा नहीं कर सकती।

1990 के दशक के मध्य में, मनोचिकित्सक रॉय बॉमिस्टर ने बुराई की अवधारणा पर एक शोध शुरू किया। वास्तव में, उन्होंने उन लोगों पर शोध किया जो बुरे कार्य

करते थे और जानना चाहा कि वे ऐसा क्यों कर रहे थे।
उस समय तक यह मान लिया गया था कि लोग बुरे कार्य इसलिए करते थे क्योंकि वे ख़ुद के बारे में बुरा सोचते हैं-जैसे वे किसी हीन भावना से ग्रस्त हों। बॉमिस्टर के शोध से पहली बात सामने आयी कि ऐसा नहीं था। सच्चाई इससे विपरीत थी। कुछ भयानक अपराधी ख़ुद को बहुत महान मानते थे और जब वास्तविकता में वे ख़ुद की उपेक्षा देखते थे तो न्याय के लिए बुरे रास्ते पर निकल पड़ते थे।
जो लोग द्रसरों के साथ भयानक चीजें करते हैं, उनके मन में ज़रूर अपनी ईमानदारी, मान्यताओं और औचित्य को लेकर अटल निश्चितता होती होगी।
जातिवादी लोग जातीय भेदभाव फैलाते हैं क्योंकि उनके मन में अपनी अनुवांशिकी श्रेष्ठता का दम्भ होता है। धार्मिक उन्मादी दर्जनों लोगों को मार डालते हैं, क्योंकि कहींन-कहीं उन्हें विश्वास होता है कि जन्नत में वह शहीद कहलायेंगे। आदमी औरतों का बलात्कार करते हैं और उन्हें गालियाँ देते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि औरतों के शरीर पर उनका अधिकार है।
बुरे लोग करभी नहीं मानते कि वे बुरे हैं; बल्कि वे मानते हैं कि उन्हें छोड़कर हर कोई बुरा है।
एक विवादास्पद प्रयोग, जिसे मिल्ग्राम एक्सपेरिमेंट के नाम से जाना गया, जिसका नाम मनोचिकित्सक स्टेनली मिल्ग्राम के नाम पर पड़ा। उसमें बताया गया 'सामान्य लोग जो द्रसरे वॉलंटियर को नियम तोड़ने के लिए सज़ा देते थे, वे उन्हें उनके कामों की सज़ा देने के लिए कभी उन पर नाराज़ होते तो कभी शारीरिक दण्ड भी देते। सज़ा देने वाले किसी भी व्यक्ति पर न तो आपत्ति उठायी जाती और न ही उससे उसके कामों की सफ़ाई माँगी जाती बल्कि इससे विपरीत बहुत से लोग उनकी द्दढ़ता के लिए उन्हें सराहते ही हैं।
यहाँ समस्या सिर्फ़ निश्चित अप्राप्य की नहीं है, बल्कि निश्चितता अक्सर अत्यधिक असुरक्षा को जन्म देती है।
बहुत से लोगों को काम पर अपनी योग्यता का अटूट विश्वास होता है या उस निश्चित आय का जो उन्हें मिलनी चाहिए। लेकिन निश्चितता उन्हें दयनीय महसूस कराती है, न कि बेहतर। वे देखते हैं कि उनके बजाय दूसरों को तरक़्क़ी मिल रही है, और वे ख़ुद को अपमानित महसूस करते हैं। उन्हें लगता है कि किसी को उनकी क़द्र ही नहीं है।
यहाँ तक कि अपने ब्बॉयफ्रेंड के मैसेज छिपकर देखना या अपने किसी दोस्त से पूछना कि बाक़ी लोग आपके बारे में क्या सोचते हैं, जैसी साधारण-सी बातें भी असुरक्षा को बढ़ाकर आपके होने की चाह को बढ़ाती हैं।

आप अपने बॉयफ्रेंड के मैसेज चैक करती हैं और आपको कुछ नहीं मिलता, लेकिन यह बात शायद यही ख़त्म नहीं हो जाती। फ़िर आप सोचना शुरू कर देती हैं कि कहीं उसके पास कोई दूसरा फ़ोन तो नहीं है। काम पर अगर आपको बताया जाता है कि आपको प्रमोशन क्यों नहीं मिल पाया तो हो सकता है आप अपमानित या उपेक्षित महसूस करें। लेकिन इससे जहाँ आप अपने सहकर्मियों पर अविश्वास करने लगते हैं, वहीं हो सकता है कि जो भी उन्होंने आपसे कहा (या आपको लगा कि वे आपके बारे में सोचते हैं), उससे आप प्रमोशन न मिलने के ज्यादा योग्य लगें। आप अपने मन में जो चाहे मानते हुए चल सकते हैं, लेकिन हर झिड़की और हर तन्हाई में, आप बस खुद से सवाल करने लगते हैं कि आप ग़लत कहाँ थे!

असुरक्षा और हताशा के इन्हीं अति संविेदनशील पलों में हम उस श्रम का शिकार हो जाते हैं: हम मानने लगते हैं कि आगे बढ़ने के लिए थोड़े से हेर-फेर में कोई बुराई नहीं है, कि दूसरे लोगों को सज़ा मिलनी ही चाहिए, कि जो हम चाहते हैं वह हमें मिलना ही चाहिए, भले ही उसके लिए हमें हिंसक भी होना पड़े ।

यह फिर से बैकवर्ड लॉ है: जितना आप किसी चीज़ के बारे में निश्चित होने की करते हैं, उतना ही अनिश्चित और असुरक्षित आप महसूस करने लगते हैं।

लेकिन इसका विपरीत सच भी है: जितना आप अनिश्चित रहते हैं और चीज़ों को नहीं जानते, उतना ही सहज आप अपनी कमियों को जानने में हो पाते हैं।

अनिक्चितता दूसरों के प्रति हमारी पूर्व धारणा को हटाती है। यह उन पुरानी घिसी-पिटी और भेदभाव भरी बातों को हटाती है, जो हम द्रसरे लोगों को टी.वी., ऑफ़िस या गली में देखकर सोचते हैं। अनिश्चितता हमें हमारी पूर्व धारणा से भी आज़ाद करती है। हम नहीं जानते कि हम प्यार के क़ाबिल हैं या नहीं; हम नहीं जानते कि हम कितने आकर्षक हैं; हम नहीं जानते कि हम कितने सफल हो सकते हैं। इन चीज़ों को पाने का एक ही तरीक़ा है कि हम उनके प्रति अनिश्चित रहें और अपने प्रयोगों के द्वारा उन्हें पाने की कोशिश करते रहें।

अनिश्चितता ही तरक्क़ी और विकास की जड़ है। जैसे कि पुरानी कहावत है, जो समझता है कि वह सब जानता है, वह वास्तव में कुछ सीख नहीं पाता। 'मुझे सब पता है' वाले नज़रिये के चलते हम कुछ नया सीख ही नहीं सकते। जितना हम मानते हैं कि 'मुझे कुछ नहीं पता', उतने ज्यादा मौडक़े नया सीखने के हम तलाश सकते हैं।

हमारे आदरश कच्चे और अधूरे हैं, उन्हें सटीक और पूर्ण मानकर हम खुद को एक खतरनाक मनःस्थिति में ले आते हैं, जिसकी वजह से हम ज़िम्मेदारियों से भागने

लगते हैं। समस्या के समाधान का पहला तरीक़ा यही है कि मान लिया जाये कि अब तक के हमारे कार्य और मान्यताएँ सही नहीं थे।
ग़लत को स्वीकारने की इस प्रवृत्ति से ही बदलाव और विकास की राह खुलती है, लेकिन इससे पहले कि हम अपने आदशों और प्राथमिकताओं को बदलकर उनका बेहतर संस्करण अपनाने की प्रक्रिया शुरू करें, हमें अनिश्चितता को अपना सबसे बड़ा आदर्श बना लेना चाहिए । हमें उन आदर्शों और प्राथमिकताओं को उठाकर एक तरफ़ रख देना चाहिए। हम देखें कि हमारी ग़लती क्या है, वह कहाँ भेदभाव कर रहे हैं, देखें कि बाक़ी दुनिया में क्यों फिट नहीं हो पा रहे हैं, अपनी अज्ञानता से नज़र मिलायें, क्योंकि हमारी अज्ञानता हम सबमें बड़ी है।

टालमटोल का मैंसन का नियम

आपने शायद पार्किसन का नियम तो सुना होगा; "काम इसलिए बढ़ता है, ताकि वह इसे पूरा करने के लिए मिले समय को भर सके।"
आपने यक़कीनन मर्फ़ी का नियम भी सुना होगा: "जो ग़लत हो सकता है वह ग्ालत होगा ही होगा।"
अगली बार जब आप एक शानदार कॉकटेल पार्टी में हों और किसी को इम्प्रेस करना चाहते हों तो टालमटोल का मैंसन का नियम उसे ज़रूर सुनाना:
"कोई चीज़ जो आपकी पहचान के लिए खतरा होती है, उसे आप उतना ही टालते जाते हैं।"
इसका मतलब है कि कोई भी चीज़ जो आपके ख़ुद के देखने के नज़रिये पर असर डालती है, मसलन आप ख़ुद को कितना सफल/असफल मानते हैं, आप खुद को अपने अदर्शों के कितना क़रीब पाते हैं; उतना ही आप उस चीज़ से द्र भागते हैं। इस बात में निश्चित रूप से एक सहजता होती है कि आप दुनिया में खुद को कितना फिट पाते हैं। जो भी उस सहजता को हिलाने की कोशिश करता है-भले ही उससे आपकी ज़िन्दगी आसान क्यों न बनने वाली हो-वह आपको डरावना लगने लगता
मैंसन का नियम ज़िन्दगी की अच्छी और बुरी, दोनों चीज़ों पर लागू होता है। लाखों डॉलर कमाने से भी आपकी पहचान को उतना ही ख़तरा हो सकता है, जितना सारे पैसे गाँवाने से; मशहूर रॉकस्टार बनने से भी आपकी पहचान को उतना ही ख़तरा हो सकता है, जितना अपनी नौकरी खोने से। इसीलिए लोग अक्सर सफलता से डरते

हैं। और इसी वजह से लोग असफलता से भी घबराते हैं। इससे उनकी उस सोच को ख़तरा होता है, जो वे ख़ुद को अभी तक मानते हुए चल रहे थे।
आप उस स्क्रीनप्ले को लिखने से डरते हैं, जिसका आपने हमेशा सपना देखा, क्योंकि ऐसा करने से आप अपनी प्रैक्टिकल इंश्योरेंस वाली छवि पर सवाल खड़ा कर देंगे। आप अपने पति से बेडरूम में और ज़्यादा रंगीन होने की बात करने से कतराती हैं, क्योंकि इससे आपकी अच्छी, भली महिला की छवि ख़राब हो जायेगी। आप अपने दोस्त से यह नहीं कह पाते कि अब आप उससे मिलना नहीं चाहते, क्योंकि इससे आप प्यारे और माफ़ कर देने वाले इन्सान नहीं बने रह पायेंगे। ऐसे बहुत से अच्छे, महत्त्वपूर्ण अवसर हम गँवा देते हैं क्योंकि इससे हमारे वर्तमान नज़रिये और हमारी भावनाओं को ख़तरा हो सकता है। ये अवसर हमारे
उन आदर्शों को चुनौती देते हैं, जिन्हें हमने जीने के लिए चुना था।
मेरा एक दोस्त था, बहुत लम्बे समय तक वह अपने आर्टवर्क को ऑनलाइन लाने और उसे अपना पेशा (या कम-से-कम पार्ट टाइम पेशा) बनाने की सोचता रहा। वह सालों तक इस बारे में बात करता रहा: उसने इसके लिए पैसे भी बचाये; और उसने कुछ वेबसाइट्स बनाकर उन पर अपना काम अपलोड भी किया, लेकिन उसने कभी अपना काम प्रोफ़ेशनल तरीक़े से लॉन्व नहीं किया। ऐसा न करने का उसके पास हमेशा कोई न कोई कारण होता। उसके काम का रेज़ोल्यूशन ज्यादा अच्छा नहीं था, या उसे कुछ और बेहतर बनाना चाहिए था, या अभी वह उस काम को पूरा समय देने की हालत में नहीं था।
साल गुज़रते गये और वह कभी अपनी नौकरी नहीं छोड़ पाया, क्यों? क्योंकि आर्ट से पैसे बनाने का सपना देखने के बावजूद वह लोगों के सामने बतौर 'आर्टिस्ट' आने से कतराता रहा, क्योंकि उसे कहीं-न-कहीं डर था कि अभी के गुमनाम आर्टिस्ट के बजाय सामने आने पर कहीं वह ऐसा कलाकार न बन के रह जाये, जिसे कोई पसन्द ही न करे। कम-से-कम अभी के लिए वह गुमनाम आर्टिस्ट के
अपने खोल में सहज था।
मेरा एक और दोस्त था जिसे पार्टियों और लड़कियों का बहुत शौक़ था। वह हमेशा पार्टी में खुब पीता और फिर लड़कियों के पीछे चल देता। सालों तक यूँ ही नशे की ज़िन्दगी गुज़ारने के बाद उसे एहसास हुआ कि वह कितना अकेला, हताश और अस्वस्थ था। वह अपनी पुरानी ज़िन्दगी छोड़ देना चाहता था। उसकी नज़र में जो 'सैटल' थे, उनसे वह खूब ईष्य्या से बात किया करता। लेकिन फिर भी उसने खुद को कभी नहीं बदला। सालों तक वह ऐसे ही हर रात शराब और शबाब में गुज़ारता रहा। इससे बाहर नहीं आने का कोई-न-कोई बहाना उसके पास मौजूद रहता।

हमेशा किसी-न-किसी वजह से वह वहीं फँसा रह जाता।
वह जीवन-शैली छोड़ने से उसके अपने वजूद पर ख़तरा था। उसे बस ऐसे ही जीना आता था। इसे भी छोड़कर वह मानसिक रूप से हीन हो जाता।
हम सबके अपने लिए कुछ आदर्श होते हैं। हम उन अआदर्शों की सुरक्षा करते हैं। हम उन पर जीने की कोशिश करते हैं और हम किसी भी तरह उन्हें बरकरार रखना चाहते हैं। भले ही सचेत रूप से हम ऐसा न चाहें, हमारा दिमार भी ऐसे ही काम करता है। जैसा कि पहले भी कहा गया है, जो हम पहले से जानते हैं, उसके लिए हम एक झुकाव महसूस करते हैं, उसी को हम निश्चित मानते हैं। अगर मैं मानता हूँ कि मैं अच्छा इन्सान हूँ, तो मैं ऐसे हालातों से बचने की कोशिश करूगा, जिनमें मेरा कोई और पहलू निकलकर सामने आये। अगर मैं मानता हूँ कि मैं बढ़िया कुक हूँ. तो मैं ऐसे अवसरों को तलशूँगा जहाँ बार-बार खुद को साबित कर सकूँ। मान्यताओं को हम हमेशा श्रेष्ठ स्थान पर रखते हैं। जब तक कि हम ख़ुद को देखने का नज़रिया न बदल लें, तब तक हम टालमटोल और हताशा से बाहर नहीं आ सकते। हम बदल नहीं सकते।
इस तरीक़े से 'ख़ुद को जानना' या 'ख़ुद को तलाशना' खतरनाक हो सकता है। यह आपको एक नियत भूमिका के लिए फ़िक्स कर देता है और आप खुद पर गैर- ज़रूरी उम्मीदें लाद लेते हैं। यह आपकी अन्दरूनी सम्भावनाओं और बाहरी अवसरों को भी बन्द कर सकता है।
मैं कहता हूँ कि ख़ुद को मत तलाशो। मैं कहता हूँ कि ख़ुद को क्भी मत जानो क्योंकि यही आपको आगे बढ़ने और कुछ नया तलाशने के लिए मजबूर करेगा और यह आपको अपनी पूर्व धारणाएँ बनाते समय दूसरों के प्रति विनम्र और उदार रहने में मदद करेगा। ख़ुद को मार डालो बौद्ध थर्म में तर्क दिया जाता है कि 'आप कौन हैं यह एकतरफ़ा मानसिक बुनावट है। आपको इस ख़याल को ही दिमाग़ से निकाल देना चाहिए कि आपका कोई 'अस्तित्व भी है; कि ये एकतरफ़ा मानदण्ड जिनसे आप ख़ुद को परिभाषित करते हैं, ये वास्तव में आपको फँसाते हैं, और आपको इन्हें जाने देना चाहिए। एक तरीक़े से आप कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म आपको लोड नहीं लेने के लिए प्रेरित करता है।
यह सुनने में दुलमुल लगता है, लेकिन ज़िन्दगी के इस नज़रिये के कुछ मनोवैज्ञानिक फ़ायदे भी हैं। जब हम ख़ुद की, ख़ुद को सुनाई हुई कहानियों को भुला देते हैं, तो हम सच में ख़ुद को कुछ करने के लिए आज़ाद पाते हैं, और यह आपके विकास का पहला क़दम होता है। जब कोई खुद से कह देता है, "पता है, शायद मैं उस रिश्ते में सही नहीं थी/ था' तो वह आगे बढ़कर उस शादी से बाहर आने के लिए आज़ञाद

होता है। उसे कोई नक़ली मुखौटा लगाकर ख़ुद को और दयनीय बनाने की ज़रूरत नहीं होती है।

जब छात्र खुद से कहता है, "पता है, मैं शायद कोई बगावत-वगावत नहीं करता, बल्कि शायद मैं ख़ुद से डरता हूँ; तो वह फिर से सपने देखने के लिए आज़ाद हो जाता है। उसे कोई डर नहीं होता कि उसे अपना अकादमिक सपना पूरा करना ही होगा। जब इश्योरेंस वाला ख़ुद से कहता है, "पता है, शायद मेरे सपनों या नौकरी में कोई ख़ास बात नहीं है, तो वह उस सक्ीनप्ले को लिखने के लिए पूरी तरह आज़ाद होता है, और देखिए तो, ईमानदारी से वह क्या नहीं कर सकता।

मेरे पास आपके लिए एक अच्छी ख़बर और एक बुरी ख़बर है: आपकी समस्या कोई अनोखी या ख़ास नहीं है। तो क्यों न इसे छोड़कर आज़ाद हो जाओ।

एक तरह की आत्म-तल्लीनता होती है जो तर्कहीन निश्चितता के साथ आती है। जब आप मान लेते हो कि आपका प्लेन क्रेश होने वाला है, या आपके प्रोजेक्ट का आइडिया एकदम वाहियात है और हर कोई इस पर हँसेगा, या हर कोई आपका मज़ाक़ उड़ायेगा, तब आप खुद से कह रहे होते हो, 'मैं एक अपवाद हूँ; मैं दूसरों के जैसा नहीं हूँ; मैं कुछ अलग और ख़ास हूँ।"

यह अहंकार, निपट मुखवता है। आपको लगता है कि आपकी समस्याओं का समाधान किसी और तरीक़े से किया जाना चाहिए, कि आपकी समस्या का कुछ और ही गणित है और उसे ब्रह्माण्ड के नियम से नहीं सुलझाया जा सकता।

मेरा सुझाव: ख़ुद को ख़ास मत समझे; ख़ुद को अनोखा मत मानो। अपने मानदण्डों को व्यापक नज़रिये से दोबारा परिभाषित करो। अपने लिए मानदण्ड चुनो न कि किसी उभरते हुए कलाकार या अप्राप्त जीनियस के लिए। ख़ुद को आँको न कि किसी पीड़ित या असफल व्यक्ति को। ख़ुद को अपनी लौकिक पहचान के साथ देखो: एक छात्र, एक पार्टनर, एक दोस्त, एक निर्माता।

जितनी संकीर्ण और दुर्लभ पहचान आप अपने लिए चुनते हैं, उतना ही हर चीज़ आप पर हावी होती जाती है। इसलिए, जितना हो सके ख़ुद को साधारण और सादगी भरे तरीके से परिभाषित करो।

इसका मतलब है अपने बारे में आडम्बर भरे खयाल त्यांगना: कि आप बहुत बुद्धिमान हैं या गाज़ब के प्रतिभाशाली, या किसी परी की तरह सुन्दर, या कोई ऐसे पीड़ित जिसकी दुनिया कल्पना तक नहीं कर सकती। इसका मतलब है खुद को ख़ास समझने का भाव त्याग दो और यह खयाल कि आपने दुनिया को कोई क़र्ज़ दिया है। इसका मतलब आप उन भावनाओं का त्याग कर दो जिनकी नियमित खुराक़ आप सालों से लेते रहे हो। जैसे कोई नशेड़ी अपनी सूई को छोड़ देता है,

उसी तरह आपको अपने इस ख़ास होने' के एहसास को छोड़ना होगा। लेकिन इसके बाद आप और ज्यादा निखरकर आओगे।

अपने बारे में कम निश्चित कैसे रहें

ख़ुद से सवाल करना और अपने विचारों और मान्यताओं पर सन्देह करना सबसे मुश्किल काम है। लेकिन इसे किया जा सकता है। यहाँ कुछ सवाल हैं जिनके माध्यम से आप अनिश्चितता की तरफ़ पहला क़दम बढ़ा सकेंगे। प्रश्न: 1 अगर में ग़ालत हुआ तो क्या? मेरी एक दोस्त ने अभी हाल में सगाई की। जिस लड़के ने उसे प्रपोज़ किया वह एकदम सही बन्दा है। वह शराब नहीं पीता। वह उससे ख़राब बत्ताव नहीं करता। वह खुशमिज़ाज है और उसकी अच्छी नौकरी भी है।
लेकिन सगाई के बाद से ही मेरी दोस्त का भाई लगातार उसके सगाई के फ़ैसले को ग़लत बताने लगा। वह उसे चेतावनी देने लगा कि उस आदमी से सगाई करके वह ख़ुद को तकलीफ़ पहुँचायेगी, कि वह गलती कर रही है, कि वह जल्दबाज़ी में फ़ैसला ले रही है। और जब भी मेरी दोस्त अपने भाई से पूछती, "तुम्हारी समस्या क्या है? तुम्हें इतनी तकलीपफ़ क्यों हो रही है?" वह ऐसे दिखाता जैसे कोई समस्या ही नहीं थी, कि सगाई से उसे कोई तकलीफ़ नहीं थी, कि वह तो बस अपनी बहन की मदद कर रहा था उसे उसकी चिन्ता थी।
लेकिन साफ़ था कि उसे किसी बात से तो तकलीफ़ थी। शायद शादी को लेकर यह उसकी अपनी असुरक्षा थी। शायद यह भाई-बहन के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा थी। शायद यह ईष्या थी। शायद वह अपने ही दुख से इतना दुखी था कि वह जानता ही नहीं था कि दूसरों की ख़ुशी में कैसे शामिल हुआ जाये।
सामान्य नियम के तहत, दुनिया में हम अपने सबसे खराब निरीक्षक होते हैं। जब हम नाराज़ होते हैं, या ईष्प करते हैं, या परेशान होते हैं, तो अक्सर हमें ही यह बात सबसे आख़िर मैं पता चलती है और इसे पता लगाने का एक ही तरीक़ा है कि जो आपके मन में निश्चितता ने घेरा डाला हुआ है, उसे वहाँ से सरकाकर ख़ुद से अक्सर ऐसे सवाल पूछे जायें कि मैं सही हूँ या ग़लत।

"क्या मुझे जलन हो रही है, और अगर हाँ, तो क्यों?" "क्या मैं नाराज़ हूँ?" "क्या वह सही कह रही है, और मैं बस अपने अहंकार के लिए यह कर रहा हूँ?"
इस तरह के सवाल हमारी मानसिक आदत बन जाने चाहिए। बहुत से मामलों में, बस ऐसे सवाल पूछने से ही लोगों में इन्सानियत और सहानुभूति पैदा होने लगती है, जो कि मसलों को सुलझाने के लिए सबसे ज्यादा ज़रूरी होती है।
लेकिन यह ्यान रखना ज़रूरी है कि बस आप ख़ुद से पूछ रहे हो कि यह गलत है तो ज़रूरी नहीं कि वह ग़लत ही हो। अगर आपका पति टोस्ट जला देने पर आपको मारता है और आप ख़ुद से पूछें कि क्या वह आपसे बुरा बर्ताव कर रहा है तो समझ लीजिए कि आप सही हैं। हमारा मक़सद सिर्फ खुद से सवाल पूछकर, कुछ पल के लिए उस मुद्द पर विचार करना है, ख़ुद से नफ़रत करना नहीं। याद रखिए कि अगर आपकी ज़िन्दगी में कुछ भी बदलाव आता है, तो आप ज़रूर कहीं किसी मामले में ग़लत रहे होंगे। अगर आप बैठकर हर दिन अपनी दयनीय हालत के लिए परेशान हो रहे हैं, तो इसका मतलब है कि आप ज़रूर कहीं ग़लत रहे हैं, और जब तक आप ख़ुद से इस बारे में सवाल नहीं पूछेंगे, तब तक कोई बदलाव नहीं आयेगा। प्रश्न: 2 अगर मैं ग़लत हूँ तो इसका क्या मतलब होगा? बहुत से लोग ख़ुद से पूछ लेते हैं कि वह ग़लत तो नहीं हैं, लेकिन थोड़े ही लोग इससे एक क़दम आगे बढ़कर यह मान पाते हैं कि अगर वह ग़ालत हुए, तो हमारी गलती के पीछे जो सम्भावित मतलब् छिपा होता है, वह बहुत तकलीफ़देह होता है। यह न सिर्फ आदशों पर सवाल उठाता है, बल्कि हमें यह भी सोचने पर मजबूर कर देता है कि क्या और अलग विरोधाभासी आदर्श अपनाया जा सकता था।
अरस्तू ने लिखा था, "यह एक शिक्षित दिमाग की निशानी है कि किसी विचार को अपनाये बिना, पहले उस पर सोच-विचार करे।" किसी भिन्न आदर्श को अपनाये बिना उसको जाँचने से आप ख़ुद के जीवन को अर्थपूर्ण तरीक़े से बदल सकोगे। जैसे कि मेरी दोस्त के भाई की बात है, उसका ख़ुद से सवाल होना चाहिए, "अगर अपनी बहन की शादी के बारे में मेरी सोच ग़लत हुई तो इसका क्या मतलब होगा? अक्सर ऐसे सवालों का जवाब बहुत सीधा होता है (और कुछ इस तरह का भी "मैं स्वारथी/असुरक्षित/आत्मकार्मी घटिया इन्सान हूँ")। अगर वह गालत हुआ, और उसकी बहन की शादी ख़ुशहाल रही, तो उसके बताव की वजह सिर्फ उसकी अपनी असुरक्षा और बकवास आदर्श ही हो सकते हैं। वह मानता है कि उसे अपनी बहन का भला-बुरा पता है, और वह खुद अपनी ज़िन्दगी का इतना बड़ा फ़सला नहीं ले सकती। उसने मान लिया है कि उसके लिए फ़ैसले लेने का हक़ और ज़िम्मेदारी सिर्फ उसे है। उसे यक़ीन है कि एक वही सही है और बाक़ी सब ग़लत। और एक

बार सामने आने पर, फिर वह चाहे मेरी दोस्त का भाई हो या कोई और, किसी के लिए इस बात को स्वीकार कर पाना बहुत मुश्किल होगा। यह तकलीफ़देह है। इसलिए बहुत कम लोग ऐसे मुश्किल सवाल पूछते हैं। लेकिन किसी समस्या की जड़ तक जाने के लिए ऐसे सवाल पूछे जाना ज़रूरी है। प्रश्: 3 क्या मेरे गलत होने से मेरे और द्रसरों के लिए और बड़ी समस्या खड़ी हो जायेगी? वर्तमान से भी बड़ी? यह वही अन्तिम परीक्षा होगी, जिससे पता चल जायेगा कि हमारे आदशों में वाक़ई कोई तर्क है, या हम यूँ ही बिना बात का लोड लिए घूम रहे हैं। यहाँ मक़सद यह देखना है कि कौन-सी समस्या बेहतर है, क्योंकि आख़िरकार जैसा हताश पांडा ने कहा था, ज़िन्दगी की समस्याएँ अन्तहीन हैं।

मेरी दोस्त का भाई, उसके क्या विकल्प हैं:

1. अपना ड्रामा चालू रखकर परिवार में तनाव भर दे, जो पल ख़ुशी के हो सकते हैं उन्हें मुश्किल बना दे, और अपनी बहन और अपने बीच का सम्मान और भरोसा ख़त्म कर दे, सब एक सनक की वजह से (कुछ लोग इसे सहज ज्ञान भी कह सकते हैं) कि वह लड़का उसकी बहन के लिए सही नहीं है।

2. उसके बारे में सही-ग़लत सोचने की अपनी योग्यता पर सन्देह करके विनम्र बना रहे और अपनी बहन के फ़ैसले पर भरोसा करे और अगर यह भी नहीं तो अपनी बहन के प्रति अपने प्यार और सम्मान पर भरोसा करे।

ज्यादातर लोग पहले वाला विकल्प चुनेंगे, क्योंकि पहला विकल्प एक आसान रास्ता है। इसके लिए ज्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं है, ख़ुद से कोई सवाल नहीं पूछना, और दूसरों के लिए फ़ैसलों को आपको बिलकुल नहीं झेलना पड़ेगा। इससे उस हालात से जुड़ा हर व्यक्ति परेशान हो जायेगा।

दूसरा विकल्प आपसी विश्वास और सम्मान पर खड़ा हो ख़ुशियाँ और अच्छा माहौल बरकरार रखेगा। दटूसरा विकल्प आपको विनम्र बनाता है और अपनी अनिश्चितता स्वीकार करने का मौक़ा देता है। ये विकल्प लोगों को अपनी असुरक्षा से आगे बढ़कर हालात को समझने का मौक़ा देगा कि कहीं आप स्वार्थी या क्रोधी तो नहीं हो रहे।

लेकिन दूसरा विकल्प मुश्किल और तकलीफ़देह है, तो ज्रादातर लोग इसे नहीं अपनाते।

मेरी दोस्त का भाई उसकी सगाई का विरोध करके ख़ुद के साथ एक काल्पनिक लड़ाई में उलझ गया। यक़ीनन, उसका मानना था कि वह अपनी बहन की सुरक्षा कर रहा था, लेकिन जैसा हम जानते हैं, मान्यताएँ एकतरफ़ा होती हैं; इससे भी बदतर, ये हमारे आदर्श और मानदण्ड के चयन के बाद बनती हैं। सच यह है कि वह

ख़ुद को ग़लत मानने की बजाय अपनी बहन के साथ अपने रिश्ते को ताक पर रखने को तैयार हो गया, जबकि अगर वह रिश्ता बच पाता तो वह समय के साथ उसे उसकी असुरक्षा से भी बाहर निकाल लेता।
मैंने कुछ नियमों के साथ जीने की कोशिश की लेकिन एक जो मैं सालों से अपनाता चला आ रहा था, वह था: अगर मुझे भाड़ में जाना पड़े, या बाकी सबको भाड़ में जाना पड़े तो मैं यक़ीनन पहले वाले विकल्प को अपनाते हुए ख़ुद कौ भाड़ में भेजने का फ़ैसला लूँगा। यह मैंने अनुभवों से सीखा है। अब तक मैं अपनी असुरक्षा और कमियों की वजह से बेवकूफ़ी भरे फ़ैसले लेता रहा। यह सही नहीं था।
यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि एक साथ बहुत सारे लोग ग़ालत नहीं हो सकते और ऐसा भी नहीं है कि आप द्ूसरे लोगों से ज्यादा सही हों।
यह वास्तविकता है: अगर आपको लगे कि मामला आपके बनाम दुनिया के बीच है, तो वास्तव में वह सिर्फ आप बनाम आपके बीच ही होगा।

असफलता आगे बढ़ने की राह है।

जब मैं कहता हूँ कि मैं खुशक़िस्मत था, तो सच में यह मेरे लिए मायने रखता है। मैं 2007 में कॉलेज से ग्रेज़एट हुआ, ठीक उसी समय जब दुनिया सबसे बड़ी आर्थिक तंगी के दौर से गुज़र रही थी, और मैं उस जॉब मार्किट में घुसने की कोशिश कर रहा था, जो अपने अस्सी सालों के इतिहास के सबसे बरे दौर में थी। लगभग उसी समय, मुझे पता चला कि जो महिला हमारे साथ अपार्टमेंट के कमरे में किराये पर रह रही थी, उसने पिछले तीन महीनों से अपना किराया नहीं दिया था। जब उससे इस बारे में पूछा गया तो वह रोने लगी, और बाद में ग़रायब हो गयी, वह मुझे और मेरे पार्टनर को बाक़ी का भुगतान करने के लिए छोड़ गयी। तो रही- सही बचत भी ठिकाने लग गी। मैंने अगले छह महीने अपने दोस्त के सोफ़े पर गुज़ारे, छोटी-मोटी नौकरियाँ करते हुए, और इस कोशिश में कि जब तक कोई ढंग की नौकरी न मिल जाये, मैं ज्यादा क़र्ज न करु।
मैंने कहा कि मैं खुशक़िस्मत था, क्योंकि मैंने बड़े लोगों की उस दुनिया में प्रवेश किया था जो पहले से ही नाकामयाब हो चुकी थी। मैंने बिलकुल नीचे से अपनी शुरुआत की। वास्तव में, यह हर किसी का डर होता है, जब वह कोई नया बिज़निस

शुरू करता है या कॅरियर बदलता है या कोई भयानक नौकरी छोड़ता है, और मैंने इसका अनुभव बिलकुल शुरू में ही कर लिया था। यहाँ से चीज़ें बेहतर ही हो सकती थीं।

तो हूँ, मैं खुशक़रिस्मत था। जब किसी बदबूदार सोफ़े पर सोते हुए, आप बची चिल्लर को यह सोचकर गिनते हैं कि अगले हफ्ते के खाने का गुज़ारा हो पायेगा या नहीं, या आप बिना कोई जवाब मिले भी बीस जगहों पर अपना बायोडाटा भेज रहे हो तो इंटरनेट पर ब्लॉग शुरू करने का आइडिया इतना भयानक नहीं लगता। अगर मैरा शुरू किया हर प्रोजेक्ट नाकामयाब रहा, अगर मेरी पोस्ट को किसी ने नहीं पढ़ा, तो मैं वापस से वहीं खड़ा हो जाऊँगा जहाँ से मैंने शुरू किया था। तो
कोशिश करने में क्या बुराई है?

असफलता अपने आप में एक सापेक्षिक अवधारणा है। अगर मेरा मानदण्ड एनाकों-कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी बनने का होता, तो 2007 और 2008 में बिना एक पैसा कमाये मैं पूरी तरह सफल होता। लेकिन अगर, अन्य बहुत से लोगों की तरह, मेरा मानदण्ड एक ठीकठाक नौकरी हूँढने का था, जिससे मैं कुछ बिल भर सकूँ,
तो मैं पूरी तरह असफल रहा। मेरा पालन-पोषण एक धनी परिवार में हुआ। हमारे परिवार में पैसों की कोई समस्या नहीं थी, मेरे परिवार में पैसे का इस्तेमाल समस्याओं के समाधान में नहीं बल्कि उनसे बचने के लिए किया जा रहा था। मैं फिर से खुशक्िस्मत था क्योंकि इसने मुझे बहुत कम उम्र में ही सिखा दिया था कि पैसे कमाने का मानदण्ड अपने आप में कोई ठोस मानदण्ड नहीं होता। आप बहुत पैसे कमाकर भी दयनीय हो सकते हैं, जैसे कि आप बुरी तरह टूट कर भी ख़ुश हो सकते हैं। इसलिए अपने विकास का मानदण्ड मैं पैसे को क्यों बनाऊँऊँँ?

इसके बजाय मेरे आदर्श कुछ और थे। वे आज़ादी और स्वायत्तता थे। एक उद्यमी बनने के विचार ने हमेशा मुझे आकर्षित किया क्योंकि मुझे द्रसरों से ऑर्डर लेना बहुत बुरा लगता था और मैं चीज़ों को अपने तरीक़े से करना चाहता था। इंटरनेट पर काम करने का विचार मुझे पसन्द आया क्योंकि यह मैं कहीं से भी, कभी भी कर सकता था।

मैंने ख़ुद से एक सिम्पल सवाल पूछा: "मैं एक बुरी-सी नौकरी करते हुए बढ़िया पैसे कमाऊँ, या इंटरनेट पर काम करते हुए असफल हो जाऊँ? जवाब मुझे तुरन्त मिल गयाः दूसरे वाला। फिर मैंने ख़ुद से पूछा, 'अगर मैं यह करता हूँ और कुछ सालों में फेल हो जाता हूँ और फिर नौकरी तलाशूँ तो इसमें मेरा कोई नुक़सान हो जायेगा क्या? जवाब था नहीं। 22 साल की उम्र में हारे और बेरोज़गार इन्सान की जगह मैं 25 साल की उम्र में हारा हुआ और बेरोज़गार हो जाऊँगा। क्या फ़र्क़ पड़ता है?

इस आदर्श के साथ, अपने प्रोजेक्ट के फेल होने से डरे बिना, पैसों की कमी के बिना, दोस्तों और परिवार के साथ सोफ़े पर समय काटते हुए (जो मैं अगले दो सालों तक करता रहा), मैं अपने बायोडाटा में कुछ न कुछ नया जोड़ता रहा।

असफलता/सफलता का विरोधाभास

जब पाब्लो पिकासो वृद्ध हो गये थे, तो वे स्पेन के एक कैफ़ में बैठकर, इस्तेमाल किये हुए नैपकिन पर कुछ बना रहे थे। वे हर चीज़ से बेखबर थे, बस उस पल वही कर रहे थे जिस चीज़ ने उन्हें आकर्षित किया था-उसी तरह जैसे किशोर बच्चे स्कूल के बाथरूम में अपने लिंग की ड्राइंग बनाते रहते हैं, पर चूँकि यह पिकासो थे, तो उनकी उस हरकत में कुछ ख़ास पॉइंट जुड़ा होगा।

ख़ैर, एक महिला दूर से बैठे हुए उन्हें आश्चर्य से देख रही थी। जब कुछ पल बाद पिकासो की कॉफ़ी ख़त्म हो गयी और वे उस नैपकिन को फेंकने के लिए मोड़कर उठे। उस महिला ने उन्हें रोका। "रुकिए," उसने कहा। "क्या मैं वह नैपकिन ले सकती हूँ, जिस पर आपने अभी ड्राइंग की? मैं आपको उसकी क़ीमत भी दूँगी।"

"बिलकुल," पिकासो ने जवाब दिया। "बीस हज़ार डॉलर।"

वह मंहिला ऐसे चौंकी, मानो पिकासो ने उस पर ईट फेंक मारी हो। "क्या? आपको वह बनाने में कोई बीस मिनट लगे होंगे।"

"नहीं, मैम," पिकासो ने कहा। "उसे बनाने में मुझे साठ साल से भी ज्यादा का समय लगा है।" उन्होंने वह नैपकिन अपनी जेब में रखा और कैफ़े से निकल गये। किसी भी चीज़ में सुधार आपकी हज़ारों छोटी-छोटी असफलताओं पर आधारित होता है और आपकी सफलता की महत्ता भी इसी बात पर टिकी होती है कि उसके लिए आप कितनी बार असफल हुए। अगर कोई आपसे किसी चीज़ मैं बेहतर है तो यक़ीनन वह उसमें आपसे ज्यादा बार फेल हुआ होगा। अगर कोई किसी काम में आपसे बुरा है, तो वह अभी तक उन दर्द भरे अनुभवों से नहीं गुज़रा होगा, जिनसे आप गुज़र चुके हो।

अगर आप एक छोटे बच्चे की चलने की कोशिशों के बारे में सोचें, तो वह बच्चा बार-बार गिरकर, ख़ुद को तकलीफ़ पहुँचाता है। लेकिन किसी भी पल वह रुककर यह नहीं सोचता, 'ओह, शायद चलना मेरा काम नहीं है। मैं इसमें अच्छा नहीं हूँ ।

असफलता से बचना तो हम बाद में सीखने लगते हैं। यक़ीनन इसमें ज्यादा बड़ा भाग हमारी शैक्षिक प्रणाली का होता है, जहाँ बड़े पैमाने पर बच्चों को उनकी परीक्षाओं के माध्यम से जाँचा जाता है और अच्छा नहीं कर पाने पर सज़ा भी मिलती है। इसमें द्रुसरी मुख्य भूमिका अभिभावकों की भी होती है, जो बच्चों को उनकी नयी दिशाएँ तलाशने देने के बजाय उसी घिसी-पिटी परिपाटी पर चलने को मजबूर करते हैं। फिर मीडिया, जो लगातार शानदार सफलताओं की कहानियाँ सुनाता रहता है, जबकि वह हमें उनकी मेहनत के वो पल नहीं दिखाता, जहाँ न
जाने कितनी बार वे टूटकर गिरे थे। कोशिश में लगे रहते हैं, जो हमारे हिसाब से सुरक्षित होती है। फेल होने को तैयार नहीं हैं तो सफल होने को भी तैयार नहीं हैं। एक समय पर हम सभी ऐसी जगह पर पहुँच जाते हैं जहाँ हमें असफलता से डर लगने लगता है, जहाँ हम उससे कतराते हुए, सिर्फ उसी जगह पर बैठे रहने की यह हमें सीमाओं में बाँधकर, हमारा दम घोंट देता है। हम पूरी तरह से उसी चीज़ में सफल हो सकते हैं, जिसमें हम असफल होने के लिए भी तैयार हों। अगर हम असफलता का यह डर अक्सर बेतुके आदर्शों को अपनाने से आता है। उदाहरण के लिए, अगर मैं ख़ुद को ऐसे मानदण्डों से तोलूँ, "जो भी मुझसे मिले, मुझे पसन्द करने लगे," तो मैं पागल हो जाऊँगा, क्योंकि इस मामले में सफलता का पूरा प्रतिशत दूसरों के हाथ में होगा, न कि मेरे हाथ में। यह मैरे नियन्त्रण में होगा ही नहीं; मेरा मूल्य दूसरों की कृपा पर आधारित होगा।
इसके बजाय यदि मैं ऐसा मानदण्ड अपनाता हूँ., "अपनी सोशल लाइफ़ में सुधार लाऊँगा," इसमें में अपने आदर्श को भी साथ रख पाऊँगा, "दूसरों के साथ अच्छा रिश्ता रखना" भले द्ूसरे लोग मुझे जो भी प्रतिक्रिया दें। मेरा मूल्य मेरे अपने बर्ताव और ख़ुशियों पर आधारित होगा।
बेतुके आदर्श, जैसा कि हमने पीड़ा का मूल्य नामक अध्याय में देखा, में ऐसे बाहरी तत्त्व शामिल रहते हैं, जिन पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं होता। इन लक्ष्यों को हासिल करने में हमें भारी हताशा से गुज़रना पड़ता है। भले ही हम उन्हें हासिल कर लें, वे हमें खाली और बेजान छोड़ दिते हैं, क्योंकि एक बार उन्हें हासिल करने के बाद हमारे पास सुलझाने के लिए कोई समस्या ही नहीं बचती।
बेहतर आदरश्श, जैसा कि हमने देखा, प्रक्रिया आधारित होते हैं। कुछ चीज़ें जैसे "दूसरों के सामने ख़ुद को ईमानदारी से व्यक्त करना," यह ईमानदारी का मानदण्ड है, जो कभी ख़त्म नहीं हो सकता; यह ऐसी समस्या है जिससे हमें बार-बार उलझना होगा। हर नया संवाद, हर नया रिश्ता, ईमानदार अभिव्यक्ति की नयी चुनौतियाँ और

अवसर लाता है। यह आदर्श हमेशा बरकरार रहेगा, और यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है।

अगर आपके मानदण्ड ऐसे आदर्शों से जुड़े हैं,"दुनियावी मानदण्डों से सफलता" या "एक घर और बढ़िया गाड़ी ख़रीदना," और आपने बीस सालों तक उन्हें पाने के लिए काम किया, लेकिन एक बार जब वे आपको मिल गये तो आपके मानदण्ड में कुछ शेष नहीं रह गया। तो अपनी मध्यवर्गीय समस्याओं का स्वागत करो, क्योंकि जिन समस्याओं ने आपको आपकी पूरी वयस्क आयु में परेशान किया, वे कभी-न-कभी ख़तम हो ही जायेंगी। आपको आगे बढ़ने और विकसित होने के और अवसर नहीं मिलेंगे, और विकास से ही ख़ुशी उत्पन्न होती है न कि एकतरफ़ा उपलब्धियों से। इस अर्थ में, लक्ष्य, जैसा कि उन्हें कहा जाता है-कॉलेज से सत्रातक, झील किनारे घर, कम-से-कम नुक़सान-ये हमारी ज़िन्दगी में सीमित ख़ुशी ही दे सकते हैं। ये भले ही अल्प-अवधि के लाभों के लिए मददगार हों, लेकिन ज़िन्दगी के सम्पूर्ण विकास में यह सहायक नहीं हो सकते। पिकासो अपनी पूरी ज़िन्दगी काम करते रहे। अपनी उम्र के नब्बे के द्शक में भी वे ड्राइंग करते रहे। अगर उनका मानदण्ड प्रसिद्धर होना' या 'कला के क्षेत्र में ख़ब पैसे कमाना या 'एक हज़ार तस्वीरें बनाना होता, तो यक़ीनन उन्हें किसी-न-किसी पॉइट पर आकर रुकना होता। वह भी हताशा और आत्म-सन्देह से घिर चुके होते। वह इस तरह दशक दर दरशक अपनी कला में सुधार और आविष्कार नहीं कर पाते।

पिकासो की सफलता का कारण वही था जो किसी भी वृद्ध का हो सकता है, जब वे कैफ़ में अकेले बैठकर नैपकिन पर ड्राइंग बना रहे थे। उनके आदर्श सादगी और विनम्रता भरे थे और ये अन्तहीन होते हैं। यह ईमानदार अभिव्यक्ति' में भी झलकते हैं और इसी ने उस नैपकिन को इतना मूल्यवान बनाया था।

दर्द प्रक्रिया का ही हिस्सा है

1950 के दशक में, पोलिश मनोचिकित्सक काज़ीमिएर्ज दाब्रोवस्की ने द्वितीय विश्वयुद्ध में बचे हुए लोगों पर शोध किया कि युद्ध के सदमे भरे अनुभव की उनके मन पर क्या छाप पड़ी। यह शोध उन्होंने पोलैंड में किया था, और वहाँ के हालात तो बहुत ही बुरे रहे थे। उन लोगों ने सैकड़ों लोगों को भूख से मरते देखा था, बम गिरने से शहरों को राख में तब्दील होते देखा था, लोगों को फाँसी पर चढ़ते, कैदियों की

यातना, परिवार के सदस्यों की हत्या/बलात्कार, अगर वे लोग नाजियों का शिकार होने से बच गये थे, तो कुछ सालों बाद उन पर सोवियत ने चढ़ाई कर दी थी।
जब दाब्रोवस्की ने बचे हुए लोगों पर शोध किया, तो उसे कुछ हैरानी भरी और कमाल की बात पता चली। काफ़ी लोगों का मानना था कि युद्ध के अनुभव में हालाँकि उन्होंने काफ़ी दर्द और तकलीफ़ें सही थीं, लेकिन उस आअनुभव ने उन्हें बेहतर, ज्यादा ज़िम्मेदार ओर हा पहले से ज्यादा खुश रहना सिखाया था। बहुत से लोगों ने युद्ध से पहले के अपने जीवन को अलग बताया था: वे किसी की तारीफ़ नहीं करते थे, किसी से ख़ुश नहीं थे, आलसी थे और छोटी-छोटी समस्याओं में घिरे रहते थे। युद्ध के बाद उनमें एक विश्वास आया, वे ख़ुद को लेकर ज्यादा निश्चित हो पाये, हर चीज़ का शुक्रिया करने लगे और अब छोटी-छोटी समस्याँ उन्हें परेशान
यक़ीनन उनके अनुभव भयानक रहे थे, और वे पीड़ित उनकी वजह से बिलकुल भी ख़ुश नहीं थे। बहुत से दिलों के ज़ख्म अभी भी ताज़ा थे। लेकिन कुछ ने उन ज़ख्ों का इस्तेमाल अपनी ज़िन्दगी में शक्तिशाली तरीक़े से कर लिया था। इस परिवर्तन में वे अकेले नहीं थे। हममें से बहुत से लोग मुश्किल समय में अपना बेस्ट शॉट दे पाते हैं। हमारा दर्द अक्सर हमें मज़बूत करता है, हमें ज्यादा लचीला और ज्गादा स्थिर बनाता है। उदाहरण के लिए, कैंसर के बहुत से सर्वाइवर अपनी जंग जीतने के बाद ज्यादा मज़बूत और ज्सादा कृतज्ञ हो जाते हैं। सेना के बहुत से लोग युद्ध के ख़तरनाक माहौल में ख़ुद को मानसिक रूप से ज्यादा स्थिर पाते हैं।
दाब्रोवस्की तर्क देते हैं कि ज़रूरी नहीं कि मानसिक रूप से बेचैनी और उदासी हमेशा अनिच्छित व बेकार हो; बल्कि, अक्सर यह मानसिक विकास के लिए आवश्यक दर्द का प्रतिनिधित्व करती है और उस दर्द से इनकार करना अपनी ख़ुद की सम्भावनाओं से इनकार है। जैसे किसी को अपनी हड्टियाँ और मांसपेशियों को मज़बूत करने के लिए शारीरिक तकलीफ़ से गुज़रना होता है, वैसे ही भावनात्मक स्व-जागरूकता, जुनूनी और ख़ुशहाल ज़िन्दगी के लिए भावनात्मक स्थिरता, तकलीफ़ से गुज़रना ज़रूरी होता है।
अक्सर हमारे नज़रिये में सबसे बड़े परिवर्तन तब होते हैं, जब हमारे सबसे बुरे पल ख़त्म होने की कगार पर होते हैं। जब हम गहन पीड़ा से गुज़रते हैं, तभी अपने आदर्शों पर सवाल उठाते हैं कि उन्होंने हमें यूँ असफल क्यों होने दिया। अपनी ज़िन्दगी का वास्तविक मतलब समझने के लिए हमें किसी तरह के अस्तित्व के संकट से गुज़रना होता है, और तभी हम बदलाव की तरफ़ बढ़ते हैं।
आप इसे 'अस्तित्व का संकट' या 'ज़मीनी सच्चाई' कह सकते हैं। मैं इसे 'आपदा का तूफ़ान' कहता हूँ। आप अपने लिए भी कोई बढ़िया विकल्प चुन सकते हैं।

शायद अभी आप ऐसे ही किसी हालात से गुज़र रहे हों। या हाल ही में आप ज़िन्दगी की बड़ी चुनौतियों का सामना करके बाहर निकले हों और हैरान हो कि जो पहले आपको सच और सामान्य लगता था वह अचानक यूँ बदल कैसे गया।
यह अच्छी बात है -यह शुरुआत है। मैं नहीं कहूँगा कि यह काफी है, लेकिन दर्द प्रक्रिया का ही एक भाग है। इसे महसूस करना ज़रूरी होता है क्योंकि अगर आप दर्द को छिपाने के लिए किसी नशे का सहारा लेने लगेंगे, अगर आप लगातार सकारात्मकता के खोल तले खुद को छिपाते रहेंगे, अगर आप लगातार किसी काम या बहाने को प्राथमिकता देंगे, तो आप में बदलाव की ज़रूरी प्रेरणा उत्पन्न नहीं होगी।
जब मैं छोटा था, तो जब भी हमारे घर में कोई नया वीसीआर या स्टीरियो आता तो मैं उसका हर बटन दबाकर देखा करता, उसके हर तार को निकालकर देखता, यह समझने के लिए कि यह काम कैसे करता है। समय के साथ, मैं उसका पूरा साइंस समझ लेता, क्योंकि मैं उसे अच्छी तरह जान लेता, और अक्सर घर में मैं ही अकेला उसका इस्तेमाल कर रहा होता।
और जैसा कि आजकल के बच्चों के साथ होता है, मेंरे पेरेंट्स भी मुझे ऐसे देखते जैसे मैं कोई जीनियस हूँ । उनके लिए तो मैं किसी वैज्ञानिक से कम नहीं था, क्योंकि मैं बिना मैन्युअल देखे वीसीआर चला सकता था।
अपने पेरेंट्स की पीढ़ी को देख, उनके तकनीकी डर पर हँसना आसान है। लेकिन जब मैं बड़ा हुआ, तो मुझे एहसास हुआ कि हम सब के कुछ अपने क्षेत्र होते हैं, जहाँ हम रहना पसन्द करते हैं, और उनके बाहर के क्षेत्रों में हम सभी वैसे ही होते हैं जैसे नये वीसीआर के सामने मेरे माता-पिता: हम बैठकर उसे घूरते हैं और अपना सिर हिलाते हुए कहते हैं, "लेकिन कैसे?" जबकि बस उसे ऑन करने भर
की देर होती है। सालों तक, मैं नहीं जानता था कि उनसे क्या कहूँ। एक-एक पैसा सिर्फ़ इसलिए बचाया था कि वे अपनी बच्ची को मुझे ऐसे बहुत ई-मेल मिलते हैं, जिनमें लोग मुझसे ऐसे ही सवाल पूछते हैं। बहुत एक लड़की थी जिसके माता-पिता अप्रवासी थे और उन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी
मेडिकल स्कूल में पढ़ा सकें। लेकिन अब जब मेडिकल स्कूल में थी, वह इससे नफ़रत करती थी; वह डॉक्टर नहीं बनना चाहती थी। वह कुछ भी करके बस स्कूल छोड़ देना चाहती थी। वह ख़ुद को फँसा हुआ महसूस कर रही थी। इतना फैसा हुआ कि इसके लिए उसने इंटरनेट पर एक अजनबी (मुझे) को मेल तक भेजना शुरू कर दिया। वह मुझसे सवाल करती, "मैं मेडिकल स्कूल कैसे छोड़ सकती

कॉलेज का एक लड़का जिसे अपनी ट्यूटर से प्यार हो गया था, वह उसकी हर हरकत, हर हँसी, हर खिलखिलाहट, बीच-बीच में हुई थोड़ी देर की बात पर तड़प उठता और मेल में मुझे अट्ठाईस पन्ने लिखकर भेजता और पूछता, "मैं उसे अपने साथ बाहर ले जाने के लिए कैसे पूछूँ ?" या फिर सिंगल मदर, जिसके लगभग वयस्क हो चुके बच्चे स्कूल की पढ़ाई ख़त्म कर चुके थे और सोफ़े पर पसरे रहते, उसका खाना खाते, उसके पैसे उड़ाते और उसकी इच्छाओं या निजता का कोई सम्मान नहीं करते। वह चाहती थी कि अब वह लोग अपनी ज़िन्दगी में आगे बढ़ जायें। वह अब उन्हें अपनी ज़िन्दगी से निकालना चाहती थी, लेकिन वह अपने बच्चों को दूर जाने के लिए कहने से डर रही थी, "मैं उनसे दूर जाने को कैसे कह सकती ये सब वीसीआर टाइप सवाल ही हैं। बाहर से देखने पर जवाब बिलकुल आसान है: बहाने बन्द करो और उनसे साफ़ बोल दो।
लेकिन उन सब लोगों के नज़रिये से, ये सवाल बहुत जटिल और अस्पष्ट महसूस होते थे-किसी मुश्किल पहेली की तरह।
वीसीआर टाइप सवाल मज़ेदार होते हैं क्योंकि ये सवाल सिर्फ़ उन्हें ही मुश्किल मालूम होते हैं जो उस हालात में हैं और जो उससे बाहर हैं, उनके लिए बिलकुल आसान।
समस्या को यहाँ समस्या का सामना करना है। मेडिकल स्कूल से बाहर आने का सही और सीधा तरीक़ा है कि एग्ज़िट का फॉर्म भरा जाये; अपने माता-पिता का दिल तोड़ने का नहीं। ट्यूटर से सीधे शब्दों में डेट पर जाने की बात कही जा सकती है; लेकिन इसमें शर्मिन्दगी और अस्वीकृति का डर हालात को जटिल कर रहा है। किसी से अपने घर से बाहर निकलने को कहना कुछ मुश्किल नहीं है; लेकिन अपने बच्चों को निकालने की बात करना बिलकुल आसान नहीं है।
अपनी पूरी किशोरावस्था और वयस्कता के दौर में मैंने हमेशा इसी समस्या से संघर्ष किया। दिन में मैं ज्यसादातर समय वीडियो गेम से अपना मन बहलाने की कोशिश करता और रात की बेचैनी को अक्सर शराब और स्मोकिंग में उड़ाया करता। सालों तक, किसी अजनबी से बात करने का ख़याल-खासकर अगर वह अजनबी कुछ ख़ास आकर्षक/दिलचस्पा/लोकप्रियास्मार्ट हो तो- मेरे लिए असम्भव था। मैं उस बेचैनी में सालों तक घूमा, ख़ुद से वही वीसीआर टाइप बेवकूफ़ी के

सवाल पूछते हुए:
"कैसे? कैसे आप जाकर किसी इन्सान से बात करना शुरू कर सकते हैं? कोई यह कैसे कर लेता है?"

मेरे पास इससे जुड़ी सारी बेकार की मान्यताएँ थीं, जैसे कि आपको तब तक किसी से कोई बात नहीं करनी चाहिए, जब तक कि आपके पास इसकी कोई ठोस वजह न हो, या कि सिर्फ़ मेंरे हलो' कहने की वजह से महिलाएँ मुझे कोई घटिया बलात्कारी मान लेंगी।

समस्या यह थी कि मेरी भावनाएँ मेरी वास्तविकता को परिभाषित करती थीं। मुझे लगता था कि लोग मुझसे बात करना पसन्द नहीं करेंगे और फिर मेरा वीसीआर टाइप सवाल: "आप कैसे जाकर, किसी इन्सान से बात कर सकते हैं?"

मुझे जो महसूस होता था मैं उससे वास्तविकता को अलग नहीं कर पा रहा था। मैं नहीं समझ पा रहा था कि यह बहुत सामान्य बात है कि दो लोग एक साथ चलते हुए, आपस में बात करें। बहुत से लोग दर्द, गुस्से या उदासी के समय सब कुछ छोड़कर ख़ुद को सुन्न कर लेने की कोशिश करते हैं। उनका मक़सद फिर से 'बेहतर महसूस' करना होता है, जितना जल्दी हो सके, भले ही इसका मतलब अपने पुराने बेतुके आदशों पर लौटना ही क्यों न हो।

जिस दर्द को आपने चुना है उस पर टिकना सीखिए। जब आप एक नये आदश्श का चयन करते हैं, तो आप अपनी ज़िन्दगी में एक नया दर्द भी लेकर आते हैं। इसे महसूस कीजिए । इसमें सहज होने की कोशिश कीजिए। दोनों बाँहेँ खोलकर इसका स्वागत कीजिए। फिर इसके साथ ही आगे बढ़िए।

मैं झूठ नहीं बोलूँगा; शुरुआत में यह बहुत तकलीफ़देह लगेगा। लेकिन आप कुछ आसान तरीक़े से शुरू कर सकते हैं। आप कुछ ऐसा महसूस करेंगे कि आपको समझ ही नहीं आयेगा कि क्या किया जाये। लेकिन हम इसकी चर्चा कर चुके हैं: आप कुछ जानते ही नहीं हैं। जब अआपको लगे भी कि आपको कुछ पता है, तब भी आप नहीं समझ पार्येंगे कि क्या लोड आपको लेना है। तो सच में, आपके पास हारने के लिए क्या है?

ज़्दिगी कुछ नहीं जानने का ही नाम है और कुछ भी कर देने का। सभी की ज़िन्दगी ऐसी ही है। यह कभी नहीं बदलती। जब आप ख़ुश हों तब भी। जब आप सोने का अंडा दे रहे हों तब भी। भले ही आपने कोई बड़ा जैकपॉट मार लिया हो और एक प्राइवेट जेट भी खरीद लिया हो, आप तब भी नहीं समझ पायेंगे कि आप कर क्या रहे हैं। इसे कभी मत भूलना। और इससे कभी डरना मत।

'कुछ करो' का सिद्धान्त

2008 में, लगभग छह सप्ताह तक नौकरी करने के बाद, मैंने नौकरी का ख़याल अपने मन से निकाल दिया और ऑनलाइन बिज़नेस का सोचा। उस समय तक मुझे कोई आइडिया नहीं था कि मैं क्या कर रहा था, लेकिन मैंने समझ लिया था कि अगर मैं टूटा और असफल हुआ तो भी कम-से-कम मुझे यह सन्तोष तो रहेगा कि मैं अपनी शर्तों पर काम कर रहा था और उस समय तक मुझे बस लड़कियों के पीछे भागने की ही परवाह थी। उसे छोड़कर, मैंने अपनी पागलपन भरी डेटिंग लाइफ़ के बारे में एक ब्लॉग शुरू करने का फ़ैसला किया।
उस दिन, पहली बार मैं सेल्फ़-एम्प्लॉयड के रूप में जागा था, और वह डर तुरन्त मुझ पर हावी हो गया। मैं अपने लैपटॉप के सामने बैठा था, और पहली बार मुझे एहसास हुआ कि अपने फ़ैसलों और उनके परिणामों के लिए पूरी तरह मैं ही ज़िम्मेदार था। ख़ुद को वेब डिज़ाइन, इंटरनेट मार्केटिंग और तकनीक से जुड़ी चीज़ं सिखाने की ज़िमेदारी मेरी ही थी। अब सब मेरे कन्धों पर था और मैंने वही किया जो कोई भी चौबीस साल का लड़का नौकरी छोड़ने के बाद करता। मुझे भी उसकी तरह कुछ नहीं पता था कि क्या करना था: मैंने कुछ कम्प्यूटर गेम डाउनलोड किये और काम की यूँ अनदेखी की मानो यह कोई भयंकर बीमारी हो।
जैसे हफ्ते बीते और मेरा बैंक अकाउंट काले से लाल होने लगा, तो साफ़ हो चुका था कि मुझे कोई रणनीति बनानी होगी, जिससे मैं दिन में बारह से चौदह घण्टे व्यस्त रह सकूँ, क्योंकि किसी भी नये बिज़नेस को जमाने कि लिए इतना समय तो देना पड़ता है और वह योजना एक अनपेक्षित जगह से आयी।
जब मैं हाईस्कूल में था, तो मेंरे मैथ के टीचर मिस्टर पैकवुड कहा करते थे, "अगर आप किसी समस्या पर अटक जाओ तो वहीं बैठकर, उसके बारे में सोचते मत रहो; उस पर काम करना शुरू कर दो। भले ही अप नहीं जानते हों कि आप क्या कर रहे हो, बस उस पर काम करने के आसान से क़दम से उससे जुड़े सही विचार आपके मन में आ जायेंगे।" समझ नहीं आ रहा था, साथ ही आगे के भयानक की तरह गूँजने लगी:
सेल्फ़-एम्प्लॉयमेंट के उस दौर में, जब मैं रोज़ ख़ुद से जूझ रहा था, और कुछ परिणाम से भी डरा हुआ था, तब मिस्टर पैकवुड की कही बात मेरे मन में एक मन्त्र "बैठे मत रहो। कुछ करो। जवाब अपने आप मिल जायेगा।"

मिस्टर पैकवुड की सलाह मानने की कोशिश में, मैंने अभिप्रेरणा के बारे में एक ज़रूरी सबक सीखा। इस सबक को आत्मसात करने में आठ साल लग गये। लेकिन जो मैंने पाया, उन पागलपन भरे महीनों में, जब मुझे स्तम्भ लिखने से जुड़ी बचकानी सलाहें मिल रही थीं, जब मैं दोस्तों के सोफ़े पर मुश्किल से रात गुज़ार रहा था, मेरा अकाउंट पूरी तरह ख़ाली हो चुका था, और मैं हज़ारों शब्द लिख चुका था (जिसमें से ज्यादातर किसी ने पढ़े नहीं थे), तब मैंने अपनी ज़िन्दगी की सबसे
महत्त्वपूर्ण बात सीखी:
काम सिर्फ अभिप्रेरणा का प्रभाव नहीं है; वह उसका कारण भी बन सकता है। हममें से ज्यादातर लोग तभी काम करते हैं, जब हम उसके प्रति एक ख़ास स्तर की अभिप्रेरणा महसूस करते हैं और हम अभिप्रेरित तभी महसूस करते है जब हम उसके प्रति भावनात्मक रूप से प्रेरित महसूस करें । हम इन्हें इस श्रृखला में भी समझ सकते हैं:
प्रेरणा-अभिप्रेरणा-इच्छित क्रिया
अगर आप कुछ हासिल करना चाहते हैं लेकिन उसके लिए अभिप्रेरित या प्रेरित महसूस नहीं करते हैं, तो समझ लीजिए कि आप ख़ुद को धोखा दे रहे हैं। आप इस बारे में कुछ नहीं कर सकते। जब तक ज़िन्दगी में कोई बड़ी भावनात्मक घटना नहीं घटती, तब तक आप अपने सोफ़े से उठकर कुछ करने की स्थिति में नहीं आते हैं। अभिप्रेरणा के बारे में सच यह है कि यह सिर्फ़ तीन कड़ियों वाली श्रृंखला नहीं है, बल्कि एक अन्तहीन फन्दा है: प्रेरणा-अभिप्रेरणा-क्रिया- प्रेरणा-अभिप्रेरणा-क्रिया-इत्यपादि।
आपके काम आगे की भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं और प्रेरणा आपको भविष्य के कामों के लिए प्रोत्साहित करती है। इस ज्ञान का फ़ायदा उठाकर, हम अपने मन को इस तरह पुनर्व्यवस्थित कर सकते हैं:
क्रिया-प्रेरणा-अभिप्रेरणा
ज़िन्दगी में किसी महत्तवपूर्ण बदलाव के लिए अगर आप अभिप्रेरणा की कमी महसूस कर रहे हैं, तो कुछ करो-कुछ भी; सच में-और फिर इस क्रिया की प्रतिक्रिया को ख़ुद को प्रोत्साहित करने के लिए इस्तेमाल करो।
मैं इसे कुछ करो' का सिद्धान्त कहता हूँ। अपने बिज़नेस के लिए इसका इस्तेमाल करने के बाद, मैंने इसे अपने पाठकों को सिखाना भी शुरू कर दिया, जो मेरे पास परेशानी में अपने वीसीआर सवाल लेकर आते थे: "मैं किसी नौकरी के लिए कैसे आवेदन कर?" या "मैं उसे कैसे बताऊँ कि मैं उसकी ग्लफ्रेंड बनना चाहती हूँ?"

पहले एक-दो साल तो मैंने खुद पर काम किया, सप्ताह- दर-सप्ताह गुज़र जाते और मैं कुछ हासिल नहीं कर पाता, और बिना किसी वजह के ही मैं तनाव और हताशा में रहता कि मैं क्या कर रहा था, और सब कुछ छोड़ देना बहुत आसान था। हालाँकि, मैंने जल्दी ही सीख लिया कि ख़ुद को कुछ-न-कुछ करते रहने के लिए प्रेरित करना होगा, और इससे बड़े-बड़े काम भी आसान लगने लगेंगे। अगर मुझे पूरी वेबसाइट ही रिडिज़ाइन करनी होती, तो भी मैं खुद से कहता, 'ठीक है, मैं अभी सिर्फ हैडर को ही रिडिज़ाइन करूगा।' लेकिन हैडर हो जाने के बाद, मैं ख़ुद को वेबसाइट के टूसरे हिस्सों को छेड़ता हुआ पाता और मेरे बिना जाने ही, मुझमें पूरे प्रोजेक्ट को करने का उत्साह आ जाता।

लेखक टिम फेरिस ने एक कहानी सुनाई थी, वह उन्होंने किसी उपन्यासकार से सुनी थी, जो सत्तर नॉवेल लिख चुका था। किसी ने उपन्यासकार से पूछा था कि उसे लगातार यूँ लिखने की प्रेरणा और उत्साह कहाँ से मिलता है। उसने जवाब दिया, "मैं एक दिन में सिर्फ़ दो सौ शब्द लिखता हूँ, बस।" उसका मानना था कि जब वह लिखने के प्रेरित नहीं होता था तो यँ ही कुछ भी दो सौ शब्दों में लिख देता था; और इससे पहले कि उसे एहसास होता, उसके पास हज़ारों शब्द लिखे होते। अगर हम भी 'कुछ करो' के सिद्धान्त का पालन करें, तो असफलता उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं लगेगी। जब सफलता का मानक महज़ क्रिया हो-जब कोई भी परिणाम प्रक्रिया से जुड़ा हो, जब प्रेरणा किसी भी दूसरी चीज़ से ज्यादा ज़रूरी हो- तो हम ख़ुद को आगे बढ़ने के लिए धकेलते हैं। हम असफलता के लिए भी आज़ाद हो जाते हैं, और वो असफलता भी आगे धकेलती है।

कुछ करो का सिद्धान्त हमें न सिर्फ टालमटोली से उबारता है, बल्कि यह ऐसी प्रक्रिया भी है जिससे हम नये आदर्शों को अपनाते हैं। अगर आप अस्तित्व के सवाल से जूझ रहे हैं और आपको सब कुछ अर्थहीन लग रहा है, अगर आप खुद को आँकने के सारे रास्ते अपना चुके हैं और आपको अपने अगले क़दम का कुछ अन्दाज़ा नहीं है, अगर आप जान गये हैं कि अब तक आप झूठे सपनों का पीछा करते हुए खुद को तकलीफ़ पहुँचाते रहे हैं, या आपको लगता है कि आपको ख़ुद की तुलना कुछ बेहतर मानदण्डों से करनी चाहिए थी-तो इस सबका एक ही जवाब कुछ करो। यह कुछ भी हो सकता है।

यह 'कुछ' किसी भी दिशा में उठाया हुआ कोई छोटा-सा क़दम भी हो सकता है। अगर अब तक के सारे रिश्तों में आपको सिर्फ़ पछतावा ही मिला है और क्या आप दूसरों के साथ और मज़बूत रिश्ता बनाना चाहते हैं? कुछ कीजिए। आसान काम से शुरुआआत कीजिए । जैसे दूसरों की समस्या सुनने की कोशिश कीजिए और किसी

की मदद के लिए कुछ समय निकालिए । एक बार करके देखिए या ख़ुद से वादा कीजिए कि अगली बार कोई भी समस्या पड़ने पर आप ख़ुद को उसका कारण मानेंगे। इस विचार पर काम करके देखिए कि आपको कैसा महसूस हो रहा है।

अव्सर किसी तरह की प्रेरणा के लिए कोई क्रिया आवश्यक हो जाती है। आप खुद अपने लिए प्रेरणा या अभिप्रेरणा बनं सकते हैं। क्रिया से ही किसी मुकाम तक पहुँचा जा सकता है और कुछ करके ही, आप असफलता को परे धकेल सकते हैं।

ना कहने की महत्ता

2009 में, मैं अपना सब सामान इकट्ठा कर, जिसमें से अधिकांश बेच दिया और कुछ को अपने साथ ले, अपना अपार्टमेंट छोड़कर, लैटिन अमेरिका चला गया। अब तक मेरे छोटे से डेटिंग सलाह वाले ब्लॉग पर कुछ पाठक आने लगे थे और मैं ऑनलाइन कोर्स के लिए अपने पीडीएफ बेचकर कुछ पैसे भी कमाने लगा था। मैंने योजना बनायी थी कि अगले कुछ साल विदेश में ही रहूँगा, नयी संस्कृति का अनुभव लूँगा। एशिया ओर लैटिन अमेरिका जैसे विकासशील देशों में, कम ख़र्च पर रहने का फ़ायदा उठाते हुए, अपने बिज़नेस को आगे बढ़ाऊँगा। यह एक तरह से डिजिटल युग की बनजारापन्ती थी, जिसमें एक पच्चीस साल का नौजवान रोमांच की चाह में निकल जाना चाहता था।

जितना आकर्षक और हैरतंगेज़ मेरा प्लान सुनने में मालूम पड़ रहा है, उतना वास्तव में था नहीं। मेरे तब तक के आदर्श मेरे इस बनजारा जीवन के साथ खरे नहीं उतर रहे थे। यक़ीनन मेरे कुछ आद्शों में आगे बढ़ना भी शामिल था, जैसे-दुनिया देखने की प्यास, लोगों और संस्कृति के प्रति एक जिज्ञासा, कुछ पुराने तरीक़े से मनोरंजन की तलाश। लेकिन इन सबके नीचे एक क़िस्म की शर्मिन्दगी भी थी। उस समय मैं उसे पहचान नहीं पा रहा था, लेकिन अगर में खुद से पूरी तरह ईमानदार रहूँ. तो मैं जानता था कि इसके साथ एक छिपी हुई चाह भी थी। मैं उसे समझ नहीं पा रहा था, लेकिन उन शान्त पलों में, जब मैं खुद के प्रति पूरी तरह ईमानदार था, मैं उसे महसूस कर सकता था।

बीस के दशक की शुरुआत में हुई चीज़ों और किशोरावस्था की रियल ट्रॉमेटिक शिट' की वजह से मैं जल्दी से किसी से जुड़ नहीं पाता था। मैं प्रतिबद्ता से घबराने लगा था। किशोरावस्था के दिनों में हुई शर्मिन्दगी और सामाजिक उपेक्षा का भुगतान अब मैं अपनी मर्ज़ी की चीज़ें करके करने लगा था। मुझे लगता था कि मैं जिससे भी चाहूँ दोस्ती कर सकता था, जिससे भी चाहूँ प्यार कर सकता था, जिससे भी चाहूँ मिल सकता था, जिसके साथ भी चाहूँ सेक्स कर सकता था-तो फिर एक इन्सान, एक सामाजिक ग्रुप, या एक शहर-देश संस्कृति से बँधकर क्यों रहना। अगर मैं हर चीज़ का बराबर अनुभव ले सकता था, तो मुझे उन सबका लेना चाहिए
था न?

दुनिया से जुड़ने के इन महान विचारों के साथ, मैं पाँच सालों तक एक देश से दूसरे देश, एकं समुद्र को पार कर, दूसरे समुद्र में घूमता रहा। मैं पचपन देशों में गया, दर्जनों दोस्तू बन्ये और ख़ुद को बहुत-सी प्रेमिकाओं की बॉहों में पाया-वे सब तेज़ी से बदल जाते और कभी-कभी तो एक फ्लाइट से दूसरे देश जाने के सफ़र में ही मैं उन्हें भूल जाता था।

वह अजीब ही ज़िन्दगी थी, कल्पनाओं से भरी हुई, दूसरी दुनिया में ले जाने वाला अनुभव, मानो किसी नक़ली चीज़ से मैं अपने दर्द को छिपाने की कोशिश कर रहा था। वह ज़िन्दगी एक ही समय में मुझे ख़ास एवं बेमतलब दोनों लग रही थी, और अभी भी उसके बारे में मैं यही सोचता हूँ। उस दौरान मेरी ज़िन्दगी के कई अहम सबक और चरित्र- निर्धारण वाले पल मुझे मिले। लेकिन कुछ पल ऐसे भी थे, जो पूरी तरह से समय और ऊर्जा की बर्बादी थे।

अब मैं न्यूयॉर्क में रहता हूँ । मेरे पास घर है, फ़र्नीचर है, बिजली का बिल आता है और अब मैं शादीशुदा भी हूँ । इनमें से कुछ भी ख़ास रोमांचक या ग्लैमर भरी बात नहीं है और यह मुझे पसन्द है, क्योंकि इतने सालों के रोमांच, और कई अहम सबक सीखने के बाद, मुझे समझ आया कि पूरी आज़ादी अपने आप में कुछ नहीं आज़ादी आपको बड़े अर्थ तलाशने का मौक़ा देती है, लेकिन ज़रूरी नहीं है कि इसके कोई मतलब हों। आखिरकार, किसी के जीवन में अर्थ तलाशने और महत्त्वपूर्ण होने के लिए विकल्पों का अस्वीकार और आज़ादी की संकीर्णता के साथ किसी एक स्थान, एक मान्यता या एक इन्सान के साथ प्रतिबद्धता ज़रूरी है। इसका एहसास मुझे धीरे-धीरे, सालों के सफ़र के बाद हुआ। ज़िन्दगी में किसी चीज़ की अतिरेकता के साथ, आपको ख़ुद को उसमें डुबोकर एहसास होता है कि आपकी ख़ुशी उसमें नहीं है। मेरे साथ यह सफ़र में हुआ। जब मैं अपने 53वें, 54वें और 55वें देश की तरफ़ बढ़ रहा था, तो मुझे एहसास हुआ कि ये सारे अनुभव

रोमांचक और बेहतरीन थे, लेकिन उनमें से कुछ का मेरे लिए कोई मतलब नहीं था। मेरे देश में मेरे दोस्त शादी करके घर बसा रहे थे, घर ख़रीद रहे थे, अपना समय अपनी पसन्द की कम्पनियों और राजनीति में बिता रहे थे जबकि मैं बस एक नशे से दूसरे नशे के बीच छलॉग लगा रहा था।

2011 में, मैंने सेंट पीटर्सबर्ग, रूस का सफ़र किया। वहाँ का खाना बेकार था। मौसम बेकार था। (मई मैं बर्फ़? क्या तुम मुझसे मज़ाक़ कर रहे हो?) मेरा अपार्टमेंट बेकार था। किसी भी चीज़ में मज़ा नहीं आ रहा था। सब चीज़ों की क़ीमत ज्यादा थी। लोग बदतमीज़ थे और उनमें से अजीब -सी गन्ध आ रही थी। कोई भी मुस्कराकर नहीं मिलता था और हर कोई बहुत शराब पीता था। फिर भी, मुझे वह
जगह पसन्द आयी। वह मेरे पसन्दीदा ट्रिप में से एक था। रूसी संस्कृति में एक बेबाकी थी, जिसे पश्चिमी लोग ग़लत ले लेते थे। उनमें दिखावे की विनम्रता या नक़ली औपचारिकता नहीं थी। वे अजनबियों को देखकर मुस्कराते नहीं या कुछ भी दिखाने की कोशिश नहीं करते। रूस में, अगर कोई चीज़ वाहियात है, तो आप सामने से उसे वाहियात कह देते हैं। अगर कोई बेवकूफ़ी कर रहा है, तो आप उसे बता देते हैं कि यह बेवकूफ़ी है। अगर कोई आपको वाकई में पसन्द आया और उसके साथ आपने अच्छा समय बिताया, तो आप उसे साफ़-साफ़ बता देते हैं। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह इन्सान आपका दोस्त है, अजनबी है या कोई और, जिससे आप महज़ पाँच मिनट पहले गली में मिले थे।

पहले सप्ताह में, मुझे यह सब बड़ा अजीब लगा। मैं एक रूसी लड़की के साथ कॉफ़ी-डेट पर गया। मेरे सामने बैठकर, उसने तीन मिनट के अन्दर ही कहा कि मैं मूर्ख हूँ। ड्रिंक पीते हुए मुझे ज़ोर का धक्का लगा। उसने जिस तरह से कहा उसमें कोई गुस्सा या लड़ाई नहीं थी; यह उसने ऐसे कहा था जैसे कोई सामान्य तथ्य हो- जैसे उस दिन के मौसम का हाल, या उसके जूतों का साइज़-लेकिन मैं सकते में था। आखिरकार, पश्चिम में ऐसी बेबाकी को बुरा समझा जाता है, वह भी जिससे आप तभी मिले हों। लेकिन यहाँ यह बिलकुल सामान्य था। यहाँ हर समय हर कोई नाक चढ़ाये हुए ही मिला, इससे मेरे पश्चिमी दिमाग को लगता कि हर समय उस पर वार हो रहा था। इससे मेरी वे असुरक्षाएँ सिर उठाने लगीं, जो सालों तक अस्तित्व में नहीं थीं।

लेकिन जैसे-जैसे समय गुज़रा, मुझे रूसी बेबाक़ी की आदत हो गयी, जैसे आधी रात में छिपते सूरज की और ठण्डे पानी के साथ मिलने वाले वोदका की। फिर मैं इसकी तारीफ़ करने लगा, यह साफ़गोई थी। यह ईमानदारी थी। बिना श्तों का संवाद, कोई

फ़ालतू की झोलझाल नहीं, कोई छिपे हुए मक़सद नहीं, कोई मार्केटिंग नहीं, न ही द्रसरों की नज़र में अच्छा बनने की बेकार कोशिश।
किसी तरह, सालों तक घूमने के बाद, यह शायद सबसे ज्यादा गैर-अमेरिकी जगह थी, जहाँ मुझे सही मायनों में आज़ादी का एहसास हुआ था। जो भी मैं सोचता या महसूस करता, उसे कह देने की आज़ादी। इनकार को स्वीकार करना भी एक तरह की आज़ादी ही है, कोई जो ज़िन्दगी भर इस तरह की बेबाकी के लिए तड़पता रहा हो-पहले तो भावनात्मक रूप से परिवार के दबाव में और फिर आत्मविश्वास के इझूठे दिखावे में-उसके लिए तो यह ऐसा डिंक था, जिसे वह बार -बार पीना चाहता था। सेंट पीटर्सबर्ग में बीता महीना तो मानो पंख लगाकर उड़ गया, और जब वहाँ से जाने का समय आया, तो मैं सच में नहीं जाना चाहता था। सफ़र आत्मविकास का बढ़िया साधन है, यह आपको आपकी संस्कृति के आदरश्शों से बाहर निकालकर दूसरे समाज को दिखाता है, जो पूरी तरह भिन्न आदरशों पर रह रहे हैं, और किसी से नफ़रत नहीं करते। यह आपको भिन्न संस्कृति के आदर्श और मानदण्ड दिखाकर, आपको अपने आदर्शों कि पुनर्निरीक्षण के लिए प्रेरित करता है, आपको समझ में आता है कि शायद आपका तरीक़ा सही नहीं है। इस मामले में, रूस ने मेरे नक़ली , औपचारिकता भरे व्यवहार का पुनर्निरीक्षण करवाया, जिसे कि एग्लो संस्कृति में बहुत ज़रूरी समझा जाता है, और मैंने ख़ुद से पूछा कि क्या इससे एक-दूसरे के साथ ज्यादा असुरक्षित नहीं हो जाते।
मुझे याद है कि मैंने इस बारे में अपने रूसी अध्यपापक से बात की थी, और उसके पास एक दिलचस्प सिद्धान्त था। काफ़ी समय तक साम्यवाद में रहने के बाद, जहाँ कोई आर्थिक अवसर मौजूद नहीं थे और सब डर से ग्रस्त थे, तो ऐसे में रूसी समाज ने सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ भरोसे को पाया और भरोसे के लिए आपका ईमानदार होना बहुत ज़रूरी है। इसका मतलब है, जब चीज़ं गड़बड़ाती हैं तो आप बिना किसी अफ़सोस के, सब साफ़-साप़फ़ कह देते हैं। लोगों की रूखी ईमानदारी से उन्हें वह मिला, जो जीने के लिए बहुत ज़रूरी था-आपको पहचानना होता है कि आप किस पर भरोसा कर सकते हैं, और किस पर नहीं।
लेकिन, 'आज़ाद' पश्चिम में, मेरे रूसी अध्यापक ने अपनी बात जारी रखी, बहुत से आर्थिक अवसर मौजूद हैं-इतने अवसर कि आपको ख़ुद को निश्चित तरीक़े से पेश करना ही होता है, भले ही वह झूठ हो। ऐसे में भरोसे की कोई क़ीमत नहीं होती। बाहरी दिखावा और बेचने की कला आपकी ख़ासियत मानी जाती है। नक़ली रूप से ज्यादा लोगों को जानना फ़ायदेमन्द होता है, बजाय वास्तव में कम लोगों से जान-पहचान के। इसीलिए यह पश्चिमी सभ्यता का अंग बन गया कि मुस्कराओ, अच्छी

बातें कहो, भले ही आप उन्हें न मानते हों, थोड़ा सफ़ेद झूठ मिला लो, और उनसे भी सहमत हो जाओ, जिनसे आप वास्तव में असहमत हो। इसलिए लोग दोस्त होने का दिखावा करते हैं, वे चीज़ं ख़रीदते हैं, जो उन्हें नहीं चाहिए। इसी तरह अर्थव्यवस्था चलती है।
इसका ख़राब पहलू यह है कि पश्चिम में आप नहीं जान सकते कि जिससे आप बात कर रहे थे, वह भरोसे के क़ाबिल है या नहीं। कभी-कभी यह मामला अच्छे दोस्तों और परिवार के सदस्यों पर भी लागू होता है। पश्चिम में दूरसरे की नज़रों में अच्छा बनने का दबाव इतना ज्यादा है कि लोग अवसर सामने वाले के अनुसार अपना पूरा व्यक्तित्व ही बदल लेते हैं।

अस्वीकार आपकी ज़िन्दगी को बेहतर बनाते हैं

हमारी सकारात्मक/उपभोक्ता संस्कृति के विस्तार से, हममें से बहुत से लोग यह मानने पर मजबूर हो जाते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो सके, हमें हर चीज़ को सुकारात्मकता से स्वीकार करना चाहिए। पॉज़िटिद- थिकिंगवाली किताबों के ज़रिये हम पर लगातार इसका दबाव बन्ाया जाता है। खुद को अवसरों की तरफ़ खोलो, हर चीज़ स्वीकार करो, हर चीज़ और हर इन्सान की हॉ कहो, आदि।
हमें कभी-कभी अस्वीकार करने की भी ज़रूरत होती है। नहीं तो, हमारे पास सिफ़र बचेगा और सिफ़र किसी और से बेहतर या ज्यादा इच्छित है तो हमारा जीवन बेमतलब है। हम बिना आदरश्शों के होंगे और फिर अपनी ज़िन्दगी बिना किसी मक़सद के जी रहे होंगे।
अस्वीकार की अनदेखी (लेने और देने में) अवसर हमारे सामने ऐसे पेश की जाती है, मानो इसी से हमारी ज़िन्दगी बेहतर होगी। लेकिन अस्वीकार की अनदेखी हमें बस थोड़े टाइम की ख़ुशी देती है और लम्बे समय के लिए हम दिशाहीन हो जाते हैं। किसी चीज़ की वास्तविक सराहना के लिए, आपको खुद को उस तक सीमित करना होता है। ज़िन्दगी में एक निश्चित स्तर की खुशी और अर्थ तक पहुँचकर ही आप अपने कई साल किसी एक रिश्ते, किसी कला, या किसी एक कैरियर के लिए दे पाते हैं। और आप निवेश के वे कई साल विकल्पों के अस्वीकार के बिना दे ही नहीं सकते।

अपने लिए किसी एक आदशर्श के चयन में आपको वैकल्पिक आदर्शों को नकारन ही होगा। अगर मैं शादी को अपनी ज़िन्दगी का
महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाने के लिए चुनता हूँ. तो इसका मतलब होगा कि मैं अपने जीवन में चरसी होने का विकल्प नहीं चुन रहा हूँ। अगर मैं खुद को दोस्ती के स्तर पर आँक रहा हूँ, तो इसका मतलब है कि मैं अपने दोस्तों की पीठ में छुरा घोंपने के विकल्प को नकार रहा हूँ। ये सब स्वस्थ निर्णय हैं, लेकिन इनके लिए भी आपको बहुत-सी चीज़ों को नकारना पड़ रहा है।
मुद्दा यह है कि हम सभी को कुछ हासिल करने के लिए, किसी न किसी चीज़ का लोड तो लेना ही होता है और वह हासिल करने के लिए हमें कुछ चीज़ों को नकारना भी होगा। एक को मान देने के लिए, हमें दूसरे को छोड़ना ही होगा।
अपने आदशों और पहचान को बरकरार रखने के लिए अस्वीकार एक ज़रूरी और स्वाभाविक भाग है। हम उसी से परिभाषित होते हैं, जिसका चयन हम नकारने के लिए करते हैं और अगर हमने कुछ भी नकारा नहीं है तो वास्तव में, हमारी कोई पहचान ही नहीं है। हर कीमत पर अस्वीकार से बचने की चाह, किसी तरह के विरोध और विवाद से बचने की चाह, सबको बराबरी से स्वीकारने की कोशिश, सब सन्तुलन में लाने का प्रयास असल में अधिकारिता का ही एक प्रकार है। ऐसे लोग, जिन्हें लगता है कि हमेशा "फ़ील गुड' उनका हक़ है, वे अस्वीकार को अनदेखा करते हैं, जिससे कोई उन्हें बुरा न कहे। वे कुछ भी नकारते नहीं, इसलिए वे एक आदर्शहीन, खुशी पर आधारित अपने में डूबी हुई ज़िन्दगी जीते हैं। वे बस इसी बात का लोड लेते हैं कि किस प्रकार अपनी इस ख़ुशी का भ्रम बनाये रखें और ज़िन्दगी की असफलता और संघर्ष को नकारते रहें।
अस्वीकार ज़िन्दगी की एक महत्त्वपूर्ण और निर्णायक दक्षता है। कोई भी ऐसे रिश्ते में नहीं रहना चाहता, जो उन्हें खुशी न दे सके। कोई भी ऐसा बिज़नेस नहीं करना चाहता जो उन्हें पसन्द न हो। कोई भी नहीं चाहता कि वह जो महसूस करता है, उसे बोल न सरके। फिर भी लोग ऐसी चीज़ों का चुनाव करते हैं। हर समय ईमानदारी एक स्वाभाविक इन्सानी ललक है। लेकिन जीवन में ईमानदारी का एक महत्त्वपूर्ण भाग ना कहना' भी होता है। इस तरह अस्वीकार हमारे रिश्तों को बेहतर बनाकर, एक स्वस्थ भावनात्मक जीवन की नींव रखता है।

सीमाएँ

एक बार दो युवा थे, एक लड़का और एक लड़की। जिनके परिवार आपस में नफ़रत करते थे। लेकिन लड़का एक बार चोरी-छिपे, लड़की के परिवार की पार्टी में आ गया, यूँ ही मस्ती में। लड़की ने लड़के को देखा, और उसे तुरन्त उससे प्यार हो गया। पहली नज़र का प्यार। वह उसे अपने बगीचे में ले गयी। उन दोनों ने तुरन्त, अगले ही दिन शादी करने की योजना बना डाली, क्योंकि आप तो जानते ही हैं कि अगर उनके घरवालों को इसकी भनक हो जाती तो वे उन्हें मार डालते। शादी के बाद के कुछ दिन शान्ति और सबसे छिपकर गुज़र गये। एक दिन, उनके परिवारवालों को उनकी शादी के बारे में पता चला और वही ड्रामा हुआ, जिसकी उन्हें उम्मीद थी। लड़की इससे बहुत परेशान हुई और उसने एक औषधि पी ली, जिसने उसे दो दिन के लिए कोमा में पहुँचा दिया। लेकिन, बदक़िस्मती से, युवा जोड़े ने अभी शादी के सारे ज़रूरी सबक नहीं सीखे थे कि आपस में कोई बात छिपानी नहीं चाहिए और कुछ भी करने से पहले अपने साथी को उस बारे में बताना चाहिए। वह लड़की अपने पति को यह बताना भूल गयी और उसके पति ने उसके इस नक़ली कोमा को सच मान लिया। इस घटना से वह इतना दुखी हुआ कि उसने अपने सारे कंचे निगलकर आतम्महत्या कर ली। उसने सोचा कि अगर वह इस ज़िन्दगी में नहीं मिल पाये तो मौत के बाद तो साथ रह पायेंगे। जब दो दिन के कोमा के बाद लड़की उठी तो उसे अपने पति की आत्महत्या की बात पता चली, और उसने भी खुद को मार लिया। यह उनकी प्रेम कहानी का अन्त था। रोमियो- जूलियट की कहानी को आज हमारी संस्कृति में प्रेम का पर्याय माना जाता है। इग्लिश बोलने वाली संस्कृति में इसे प्रेम कहानी के तौर पर देखा जाता है, और जीवन् का अदर्श समझा जाता है। लेकिन जब आप वास्तव में कहानी की तहों में उतरते हैं तो समझते हैं कि उन बच्चों ने वाक़ई मुर्खतापूर्ण कार्य किया था और अपनी मूर्खता साबित करने के लिए उन्होंने अपनी जान भी दे दी।

बहुत से विद्वनानों का मानना है कि शेक्सपियर ने रोमियो. जूलियट रोमंस की महानता के लिए नहीं, बल्कि व्यंग्य के नज़रिये से लिखी थी, कि पागलपन की कोई सीमा नहीं होती। उनका मतलब प्यार की महानता का बखान नहीं था। वास्तव में वे इसके विपरीत सोच रहे थे। वे शायद साफ़ शब्दों में कहना चाहते थे "इससे दूर रहो"।

मानव इतिहास में प्यार का जश्न कभी ऐसे नहीं मनाया गया, जैसे अब मनाया जाता है। दरअसल, उन्नीसवीं सदी के मध्य तक, प्यार को अनावश्यक और मानसिक विकास के लिए सम्भावित ख़तरा माना जाता था। उम्मीद की जाती थी कि प्यार को छोड़कर ज़िन्दगी के ज्यादा महत्वपूर्ण मसलों पर ध्यान दें, जैसे-अच्छे से खेती करना

या ऐसे आदमी से शादी करना, जिसके पास बहुत-सी भेड़ें हों। युवाओं के दिमाग से बलपूर्वक प्यार का भूत उतारकर, उन्हें आर्थिक रूप से फ़ायदेमन्द शादियों के लिए उकसाया जाता था, जिससे उनका और उनके परिवार का जीवन स्थिर हो सके।
लेकिन आज, हमारे प्यार की परिभाषा कुछ अलग है। यह हमारी संस्कृति पर हावी है और इसमें जितना ड्रामा होगा, उतेना ही यह बेहतर होगा। फिर वह बेन अफ्लेक हो, जो एक लड़की से प्यार की ख़ातिर धूमकेतु से थरती की सुरक्षा के लिए निकल पड़ता है, या मेल गिब्सन, जो बहुत से अंग्रेज़ों को मार डालता है और उन्हें मारते वक्त अपनी बलात्कार और खून का शिकार बनी पत्नी की कल्पना करता है, या एल्वेन चिक, जो लॉर्ड ऑफ़ रिंस में एरगोन के साथ रहने के लिए अपनी अनश्वरता तक को छोड़ देती है, या वह बचकानी रोमांटिक कॉमेडी हो जहाँ जिम्मी फेलन् अपुने रेड सॉक्स प्ले ऑफ़ टिकट्स के लिए त्याग कर देता है क्योंकि ड्रियू बेरीमोर को वह चाहिए थे।
अगर इस तरह का प्यार कोकीन था, तो हम सब स्कारफेस के टोनी मोन्टाना की बोलो" अपना चेहरा पहाड़ में छिपाकर चिल्लायेंगे, "मेरी छोटी दोस्त को हैलो
समस्या यह है कि अब हमें उस तरह का रोमांटिक प्यार कोकीन की तरह लगने लगा है। मतलब, कोकीन की तरह ही डरावना। मतलब, यह भी आपके दिमाग के एक हिस्से को वैसे ही सुन्न कर देता है, जैसे कोकीन। जैसे ही आप एक डोज़ लेते हो कुछ देर के लिए बेहतर महसूस करते हो। लेकिन इससे भी बाद में वैसी ही समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं, जैसी कोकीन से।
रोमांटिक प्यार के ज्यादातर तत्त्व-ड्रामा और लगाव का प्रदर्शन, बहुत से उतार-चढ़ाव, स्वस्थ और वास्तविक प्यार के लक्षण नहीं होते। वास्तव में, यह अधिकारिता का एक प्रकार ही है, जो किसी रिश्ते में दूसरे के लिए परेशानी उत्पन्न करता है।
मैं जानता हूँ कि यहाँ मैं आपको बेतुका लग रहा हूँ। सच में, मतलब कौन ऐसा इन्सान होगा जो रोमांटिक प्यार की खिल्ली उड़ायेगा? लेकिन मेरी पूरी बात तो सुनिए।
सच यह है कि प्यार का एक स्वस्थ तरीक़ा होता है और एक अस्वस्थ। अस्वस्थ प्यार वह होता है जहाँ दो लोग अपनी समस्याओं से भागकर आये हैं-द्रसरे शब्दों मैं, वे भागने के लिए एक-द्रसरे का इस्तेमाल कर रहे होते हैं। स्वस्थ प्यार वह होता है, जहाँ दो लोग एक-दूसरे की समस्या समझकर, उसे आपसी सहयोग से सुलझाने की कोशिश करते हैं।
स्वस्थ और अस्वस्थ प्यार के बीच अन्तर इन दो चीज़ों से आता है: (1) रिश्ते में दोनों इन्सान ज़िम्मेदारियों को कैसे स्वीकार करते हैं, और (2) अपने साथी के स्वीकार

और अस्वीकार को समझने की इच्छा।
जहाँ भी अस्वस्थ या ख़राब रिश्ता होता है, वहाँ दोनों ही तरफ़ से ख़राब और नक़ली ज़िम्मेदारियों का बोझ लिया और दिया जाता है। वे किसी भी तरह का इनकार' न तो सुन सकते हैं, न कह सकते हैं जबकि स्वस्थ और प्यार भरे रिश्ते में, दो लोगों और उनके आदशों के बीच एक स्पष्ट लाइन होती है, और उनके 'इनकार' की हमेशा गुंज़ाइश बनी रहती है।
'सीमाओं से मेरा मतलब है, दो लोगों की समस्याओं की ज़िम्मेदारी के बी निरूपण। एक स्वस्थ रिश्ते में लोग अपने आदर्शों और समस्याओं की ज़िम्मेदारी खुद लेते हैं, न कि अपने साथी के आदश्शों और समस्याओं की। खराब रिश्ते में जो लोग होते हैं वे लगातार अपनी ज़िम्मेदारियों से भागते हैं, और अपनी समस्या की ज़िमेदारी भी अपने साथी पर डाल देते हैं।
खराब सीमाएँ कैसी दिखती हैं? कुछ उदाहरण हैं.
"तुम मेरे बिना अपने दोस्तों के साथ नहीं जा सकते। तुम जानते हो कि उससे सुझे कितनी जलन होती है। तुम्हें मेरे साथ घर पर ही रहना होगा/"
"मेरे सहकमीं बेवकूफ़ हैं ते हमेशा मुझे मीटिंग के लिए लेट करा देते हैं क्योंकि मुझे ही उन्हें बताना होता है कि काम कैसे करें। "मुझे यकीन नही आ रहा कि तुमने मुझे मेरी बहन के सामने छोटा दिखाया/ आगे "मैं मिल्कवॉकी में काम करना पसन्द करगा, लेकिन इतनी दूर जा बसने के लिए
से कभी उसके सामने मेरी किसी बात से असहमत मत होना"
मेरी माँ मुझे कभी माफ़ नहीं करेंगी/"
"मैं तुम्हारी डेट बन सकती हूं लेकिन ये बात तुम मेरी दौस्त सिंडी को मत बताना। वह बहुत ही असुरक्षित महसूस करती है जब मेरे पास ब्बॉयफ्रेंड हो और उसके पास नहीं"
हर परिदृश्य में, व्यक्ति या तो उन भावनाओं समस्याओं की ज़िम्मेदारी ले रहा है, जो उसकी नहीं हैं, या किसी और पर अपनी समस्याओंभावनाओं की ज़िम्मेदारी डालने की कुोशिश कर रहा है।
सामान्य तौर पर, अधिकार भावना से युक्त व्यक्ति ऐसे रिश्तों में दो तरह से फँस् जाते हैं। या तो वह चाहते हैं कि द्रसरा व्यक्ति उनकी समस्याओं की ज़िम्मेदारी ले: "मुझे घर पर एक बहिया और आरामदेह वीकिंड बिताना है। तुम्हें यूह पता होना चाहिए था अर तुम्हें अपना प्लानू कैसल कर देना चाहिए/" या, वह दूसरे व्यक्ति की समस्या की भी ज़िम्मेदारी ले लेते हैं "उसुकी नौकरी फिर से छुटे गयी है लेकिन्

ज़ुरूर यह मेरी ग़लती रही होगी, क्योंकि मैं उतना सपोर्टिव नहीं था जितना कि मुझे होना चाहिए था/ अब मैं कल उसका रेज्यूरम लिखवाने में मदद करूगा/"

अधिकार भावना से युक्त व्यक्ति अपने रिश्ते में भी इन्हीं रणनीतियों को अपनाता है, और कुछ भी करके, अपनी समस्याओं की ज़िम्मेदारी लेने से बचता रहता है। परिणामस्वसूप उनका रिश्ता कमज़ोर और नक़ली हो जाता है, और उसमें अपने साथी की वास्तविक सराहना की बजाय अन्दरूनी दर्द से बचने की कोशिश होती

वैसे, यह रोमांटिक रिश्तों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पारिवारिक सम्बन्धों और दोस्तों के बीच भी हो सकता है। एक ज्य़ादा परवाह करने वाली मॉ अपने बच्चों की ज़िन्दगी की हर समस्या की ज़िम्मेदारी लेने लगती है। उसकी अधिकार भावना, उसके बच्चों को भी इसी के लिए उकसाती है, और वे भी बड़े होकर मानने लगते हैं। कि उनकी समस्या के लिए कोई और ज़िम्मेदार है। (इसलिए अक्सर आपके रोमांटिक रिश्ते की समस्या भयानक रूप से आपके अभिभावकों के रिश्ते की ही समस्या होती है।)

जब आपकी भावनाओं और कार्यों की ज़म्मेदारी का क्षेत्र धुँधला होता है-जब तक यह साफ़ नहीं होता कि कोन किस चीज़ के लिए ज़िम्मेदार है, किसकी कहाँ ग़लती है, आप क्या कर रहे हो, क्यों कर रहे हो-तब तक आप खुद के साथ एक मज़बूत रिश्ता क़ायम कर ही नहीं सकते। आपका एकमात्र आदर्श होता है अपने साथी को खुश करना या आप यह आदर्श बना लेते हैं कि आपका साथी आपको ख़ुश रखे। यक़ीनन, यह आत्म-पराजय है। और जो रिश्ता ऐसी अस्पष्टता से शुरू होता है, वह ड्रामा और शोर-शराबे से ख़त्म होता है।

लोग आपके लिए आपकी समस्या का समाधान नहीं कर सकते। और उन्हें कोशिश भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे आपको खुशी नहीं मिलेगी। इसी तरह आप भी दूसरों के लिए उनकी समस्या का समाधान नहीं कर सकते, क्योंकि यह उन्हें भी खुशी नहीं दे पायेगा। एक अस्वस्थ रिश्ते की निशानी यही है कि ख़ुद को अच्छा महसूस करवाने के लिए लोग एक-दूसरे की समस्या का समाधान ूँढ़ने की कोशिश करें। इसके बजाय एक स्वस्थ रिश्ते में लोग ख़ुद अपनी समस्या का समाधान हूँढ़त हुए ख़ुश रहने की कोशिश करते हैं।

सीमाएँ बनाने का मतलब यह नहीं है कि आप अपने साथी की मदद या सहयोग नहीं कर सकते या आपका साथी आपकी मदद नहीं कर सकता। आप दोनों को ज़रूर एक-दूसरे को सहयोग करना चाहिए। लेकिन तब जब आप ख़ुद सहयोग का चयन करें, या सहयोग चाहें। न सिर्फ़ इसलिए कि यह आपका कर्तव्य है या आप इसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

अधिकार भावना से युक्त लोग अक्सर अपनी भावनाओं या कार्यों के लिए दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, क्योंकि उन्हें ख़ुद को पीड़ित की तरह पेश करना अच्छा लगता है। उ्हें लगता है कि कोई आयेगा और उन्हें बचा लेगा, और उन्हें वो प्यार मिल जायेगा, जिसकी उन्हं हमेशा से कामना थी।

अधिकार भावना से युक्त लोग, दूसरों की भावनाओं और कार्यों की ज़िम्मेदारी ले लेते हैं, ऐसा इसलिए कि अगर उन्होंने अपने साथी की समस्या का समाधान कर, उसे बचा लिया तो उन्हें उसका प्यार और सराहना मिल जायेगी।

ये किसी भी खराब रिश्ते के नकारात्मक और सकारात्मक पहलू हैं: पीड़ित और मसीहा, वह इन्सान जो आग लगाता, क्योंकि इससे उसे ख़ास होने का एहसास होता है और वह इन्सान, जो आग बुझाता है, क्योंकि ऐसा करके वह खुद को महान समझता है।

ये दो क़िस्म के लोग बहुत मज़बूती से एक-दूसरे को खींचते हैं, और अक्सर एक-साथ आ मिलते हैं। उनका विज्ञान एक ही होता है। अक्सर उनका पालन-पोषण ऐसे अभिभावकों ने किया होता है, जो इनमें से किसी एक कमी का शिकार होते हैं। इसलिए एक ख़ुशहाल' रिश्ते के उनके मॉडल में ये अधिकार भावनाएँ और धुँधली सीमाएँ शामिल होती हैं।दुखद है कि ये दोनों ही सामने वाले की वास्तविक ज़रूरतों को पूरा नहीं कर पाते। वास्तव मैं, दूसरों को दोष देने या द्ूसरों का दोष अपने सिर लेने में वह अक्सर अधिकार भावना और ख़ुद की दयनीय हालत का शिकार बनते हुए, अपनी भावनात्मक ज़रूरतों को समझ ही नहीं पाते। पीड़ित समाधान के लिए ढेर सारी समस्याएँ पैदा करता रहता है -सिर्फ़ इसलिए कि उसे ज्यादा से ज्ादा ध्यान मिले और मसीहा बस समस्याएँ सुलझाता रहता है- वह भी इसलिए कि समस्या सुलझाकर वह हमेशा सामने वाले की ज़िनदगी के केन्द्र में बना रहेगा। दोनों ही मामलों में मक़सद स्वार्थपूर्ण, सशर्त और परिणामस्वरूप आत्मविध्वंस का है, और ऐसे रिश्ते में शायद ही कभी वास्तविक प्यार का एहसास हो पाये।

पीड़ित, अगर वास्तव में ही मसीहा को ्यार करता होगा, तो कहेगा, "देखो, यह मेरी समस्या है; तुम्हें मेरे लिए इसका समाधान ढूँढ़ने की ज़रूरत नहीं है। जब मैं इसे सुलझा रहा हूँ, तब बस तुम मेरे साथ रहना।" वास्तव में यह प्यार का नमूना है। ख़ुद अपनी समस्या की ज़िम्मेदारी लेना और उन्हें अपने साथी पर न लादना।

अगर मसीहा वास्तव में पीड़ित को बचाना चाहता है, तो वह कहेगा, "देखो, तुम अपनी समस्या का दोष दूसरों पर मढ रहे हो; इसे ख़ुद ही सुलझाने की कोशिश करो।" यह भी वास्तव मैं सच्चे प्यार का नमूना है: किसी द्रसरे को उसकी समस्या सुलझाने में मदद करना। लेकिन बजाय इसके पीड़ित और मसीहा दोनों अपनी

सन्तुष्टि के लिए एक-टूसरे का इस्तेमाल करते हैं। यह एक तरह की लत है, जिसके लिए वे दूसरे पर निर्भर हैं। विडम्बना यह है कि जब उन्हें भावनात्मक रूप से किसी स्वस्थ व्यक्ति के साथ रिश्ता बनाने का मौक़ा मिलता है, तो वे उसे उबाऊ समझते हैं या कहते हैं कि उनकी कैमिस्ट्री' अच्छी नहीं थी। वे ऐसे व्यक्ति को जाने देते हैं, क्योंकि उसकी मज़बूत सीमाएँ उन्हें अपनी सन्तुष्टि का मौक़ा नहीं देतीं।
पीड़ितों के लिए, दुनिया की सबसे मुश्किल चीज़ होती है, अपनी समस्याओं के लिए ख़ुद को ज़िम्मेदार ठहराना। उन्होंने अपना पूरा जीवन दूसरों को कोसते हुए गुज़ारा होता है। अपनी समस्या की ज़िम्मेदारी लेने का पहला क़दम ही उन्हें भयानक जान पड़ता है।
मसीहा के लिए, दुनिया की सबसे मुश्किल चीज़ होती है दूसरों की समस्या की ज़िम्मेदारी न लेना। उन्होंने अपना पूरा जीवन ट्ूसरों की मदद करके, ख़ुद को महत्त्वपूर्ण मानते हुए बिताया होता है -तो अपनी इस भूमिका को गँवाना उन्हें बहुत भयानक लगता है। अगर आप किसी ऐसे व्यक्ति के लिए त्याग करते हैं, जिसकी आपको परवाह है, तो यह तब तक सही है, जब तक आप अपने मन से यह करते हैं, सिर्फ़ इसलिए नहीं कि आप इसे अपना कर्तव्य मान रहे हैं या आपको इसके परिणाम का डर है। इसी तरह अगर आपका साथी आपके लिए कुछ कर रहा है, तो यह तब तक सही है, जब तक वह अपने मन से कर रहा है, न कि इसलिए कि आपने रोकर या गुस्से से उसे ऐसा करने के लिए मजबूर किया है। प्यार में किये गये ऐसे काम तब तक ही सही हैं, जब तक वे बिना किसी उम्मीद या शर्त के किये जायें। लोग अक्सर किसी काम के पीछे अपने मन या कर्तव्य में फ़र्क़ महसूस नहीं कर पाते। तो यहाँ एक छोटा-सा टेस्ट है: ख़ुद से पूछो, "अगर मैंने मना कर दिया, तो उसका इस रिश्ते पर क्या असर पड़ेगा?" ऐसे ही, यह भी पूछिए, "अगर मेरे साथी ने मेरी किसी बात से इनकार कर दिया, तो उसका इस रिश्ते पर क्या असर पड़ेगा?" अगर जवाब बहुत बर्तनों को तोड़ना, रोना-धोना है तो यह आपके रिश्ते के लिए अच्छा लक्षण नहीं है। यह बताता है कि आपका रिश्ता शतों पर है-एक-दूसरे से मिलने वाले भौतिक फ़ायदों के लिए, न कि बिना किसी शर्त के एक-दूसरे को स्वीकार करते हुए।
मज़बूत सीमाओं वाले लोग ऐसे नख़रों, बहस, या किसी के नुक़सान पहुँचाने से नहीं डरते। कमज़ोर सीमाओं वाले लोग ऐसे बर्ताव के सामने घुटने टेक देते हैं, और हमेशा सामने वाले के व्यवहार के हिसाब से ख़ुद को ढालते रहते हैं।
मज़बूत सीमाओं वाले लोग समझते हैं कि दो लोगों का एक-द्सरे पर 100 प्रतिशत हक़ एक बेसिर-पैर की बात है और इसे समझते हुए एक-द्रसरे की ज़रूरतों को पूरा

करते हैं। मज़बूत सीमाओं वाले लोग समझते हैं कि हो सकता है कि किसी समय वे सामने वाले की भावनाओं को ठेस पहुँचायें, लेकिन आखिर में उन्हें भरोसा होता है कि सामने वाला उन्हें समझेगा। मज़बूत सीमाओं वाले लोग जानते हैं कि एक स्वस्थ रिशते में एक व्यक्ति दूसरे की भावनाओं पर नियन्त्रण नहीं कर सकता, बल्कि एक-दूसरे की समस्पाएँ सुलझाते हुए व्यक्तिगत विकास कर सकता है।
इसका मतलब यह नहीं है कि अपने साथी की हर समस्या का लोड लो; बल्कि अपने साथी को समझाओ कि उसे किन चीज़ों का लोड लेना चाहिए। यही सच्चा प्यार है, दोस्त।

भरोसा कैसे बनायें

मेरी बीवी उन महिलाओं में से है, जो आईने के सामने ज्यादा समय बिताती हैं। उसे खूबसूरत दिखना पसन्द है, और मुझे भी वह बनती-सँवरती हुई अच्छी लगती है। रात में कभी-कभी हमारे बाहर जाने से पहले, वह बाथरूम में एक घण्टा, मेकअप/बाला/कपड़े/और जो भी महिलाएँ आईने के सामने करती हैं, ठीक करके, बाहर निकलकर मुझसे पूछती है कि वह कैसी लग रही है। अक्सर वह कमाल की लगती है। लेकिन, फिर भी कभी-कभी बीच में उससे कुछ गड़बड़ हो जाती है। शायद उसने कोई नया हेयर स्टाइल ट्राई किया हो, या किसी भड़काऊ डिज़ाइनर के बूट। कारण चाहे जो भी रहा हो-लेकिन वह लुक उस पर जँचता नहीं है।
जब मैं उसे यह बता देता हूँ, तो अक्सर वह परेशान होकर वापस भागती है। वह पुनः अपनी अलमारी या बाथरूम में जाती है और उसे ठीक करने में और आधा घण्टा लेट करवा देती है, इस बीच वह कुछ बड़बड़ाती है, और कभी-कभी वह बड़बड़ मेरे लिए भी होती है।
ऐसे हालात में आदमी लोग अक्सर अपनी बीवी/गलफ्रेंड को खुश करने की कोशिश करते हैं। लेकिन मैं नहीं। क्यों? क्योंकि मेरे रिश्ते में ईमानदारी ज्यादा ज़रूरी है। मैं ईमानदारी को हर समय 'फ़ील गुड से ज्यादा तवज्जो देता हूँ। जिस महिला से मैं प्यार करता हूँ उसके लिए मैं ख़ुद को सेंसर नहीं करुगा।
क़िस्मत से, मेरी शादी उस महिला से हुई है जो मुझसे ईमानदारी की इच्छा करती है। यक़ीनन वह भी मुझे मेरी बकवास कि लिए टोकती है, जो कि एक साथी के रूप में सबसे बड़ी खुबी है। यक़कीनन, कई बार इससे मेरे अहं को ठेस पहुँचती है, और मैं

बुरा मानकर शिकायत भी करता हूँ, बहस भी करता हूँ, लेकिन कुछ घण्टे बाद मैं मुँह सुजाकर आ जाता हूँ और बताता हूँ कि वह सही कह रही थी। और सच में वह मुझे बेहतर इन्सान बना रही है, भले ही कई बार उसकी बातें मुझे सुनने में अच्छी न लगें।

जब हमारी प्राथमिकता हमेशा ख़ुद को अच्छा महसूस कराने की होती है, या हम हमेशा अपने साथी की ख़ुशी के लिए काम करते हैं, तो आख़िर में इससे कोई भी खुश नहीं रह पाता और हमारे बिना जाने ही हमारा रिश्ता खोखला होने लगता है। विवाद के बिना, कोई आप◌्री भरोसा हो ही नहीं सकता। विवाद हमें यह दिखाने के लिए होते हैं कि कौन हमारे लिए वहाँ बिना किसी मतलब के खड़ा है और कौन अपना फ़ायदा देख रहा है। जी-सर' कहने वाले का कोई भरोसा नहीं करता। अगर हताश पांडा यहाँ होता, तो वह आपको बताता कि आपके रिश्ते में दर्द ज़रूरी होता है, इससे एक-दूसरे के प्रति आपका भरोसा और मज़बूत होता है और आप ज्यादा क़रीब आ पाते हैं। एक स्वस्थ रश्ते के लिए, दोनों ही इन्सानों को ना' कहने और सुनने के लिए तैयार होना चाहिए। इस अस्वीकार के बिना, कभी-कभी इनकार के बिना, आपकी सीमाएँ टूट जाती हैं और एक व्यक्ति की समस्याएँ एवं आदर्श दूसरे पर हावी होने लगते हैं। विवाद सिर्फ़ सामान्य ही नहीं हैं, बल्कि एक स्वस्थ रिश्ते के लिए ये बहुत ज़रूरी भी होते हैं। अगर दो लोग आपस में क़रीब होने के बावजूद भी अपने ad[illegible] खुलकर बात नहीं कर सकते, तो वह रिश्ता गालत व्याख्याओं और जोड़- तोड़ पर आधारित होता है, तथा ऐसे रिश्ते में धीरे-धीरे दम घुटने लगता है।

भरोसा किसी भी रिश्ते का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जहाँ विश्वास ही न हो, वहाँ रिश्ते का कोई मतलब ही नहीं है। एक इन्सान आपसे कह सकता है कि वह आपसे प्यार करता है, आपके साथ रहना चाहता है, आपके लिए सब छोड़ सकता है, लेकिन अगर आप उस पर भरोसा ही नहीं करते, तो आपके लिए उन बातों का कोई मतलब ही नहीं है। आपको प्यार का एहसास ही नहीं होगा, जब तक कि आपको यह भरोसा न हो कि सामने वाला बिना किसी मतलब के आपके पास आ रहा है। धोखे के बारे में यही सबसे ख़राब बात है। यह सेव्स से सम्बग्धित नहीं है। यहाँ बात भरोसे की है, जिसे सेक्स से तोड़ा जा सकता है। बिना भरोसे के, रश्ता ज्यादा देर तक टिक नहीं सकता। इसलिए या तो भरोसा दोबारा से बनाओ या अलविदा कह दो।

मेरे पास अव्सर ऐसे ई-मैल आते हैं, जहाँ लोगों को अपने साथी से धोखा मिलता है, लेकिन फिर भी वे उसी के साथ रहना चाहते हैं। साथ ही, सोचते हैं कि अब वे दोबारा

उस पर भरोसा किसे कर सकते हैं। वे मुझे बताते हैं कि बिना भरोसे के उनका रिश्ता अब एक बोझ लगने लगा है, उनके बीच हमेशा एक डर बना रहता समस्या यह है कि जो लोग धोखा देते हुए पकड़े जाते हैं, वे बार-बार माफ़ी माँगकर एक ही बात दोहराते हैं-"ऐसा दोबारा नहीं होगा", मानो वे दुर्घटनावश किसी से शारीरिक सम्बन्ध बनाने लग जाते हों। धोखा खाये हुए बहुत से लोग इस बात को जस-का-तस स्वीकार कर लेते हैं, और अपने साथी के आदर्श पर कभी सवाल नहीं उठाते; वे ख़ुद से भी नहीं पूछते कि क्या वे आदर्श और हरकत उनके साथी को एक अच्छा इन्सान बनाते हैं। उन्हें बस अपना रिश्ता बचाये रखने से मतलब होता है, जिसे पहचानने में उन्होंने ग़लती कर दी थी, अब सामने खड़ा
अधियारा उनके अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता है। लोग धोखा देते हैं, क्योंकि उनके लिए उनके रिश्ते से ज़रूरी कुछ और होता है: शायद दूसरों पर मिली उनकी ताक़त या शायद सेक्स से उन्हें प्रमाणीकरण मिलता है या यह शायद उनकी अपनी उत्तेजना होगी। चाहे जो भी हो, यह साफ़ है कि धोखा देने वाले के आदर्श एक स्वस्थ रिश्ते के लिए सही नहीं हैं। अगर धोखेबाज़ इसे ख़ुद स्वीकार नहीं करता या ख़ुद सामने नहीं आता, और वह बस ऐसे बहाने बनाता है.-"पता नहीं मैं क्या सोच रहा था, मैं तनाव में था और बहुत पी रखी थी और वो वहाँ थी"। तो वह ख़ुद के प्रति ही जागरूक नहीं है, जो कि किसी भी रिश्ते में समस्या सुलझाने के लिए ज़रूरी पॉइट होता है। ऐसे में थोखेबाज़ को अपनी आतम्-जागरूकता की प्याज़ कि छिलके उतारने चाहिए, और तलाशना चाहिए कि किन आदशों की वजह से उसने उस रिश्ते का भरोसा तोड़ा (और उस रिश्ते के लिए उनके आदर्श क्या हैं)। उनमें यह कहने का दम होना चाहिए, "पता है, मैं स्वार्थी हूँ। मुझे रिश्ते से ज्यादा अपनी परवाह है; ईमानदारी से कहूँ. तो मुझे इस रिश्ते की ज्ज़ादा क़द्र ही नहीं है।" अगर धोखेबाज़ इन्सान अपने बेतुके आदशों को व्यक्त ही नहीं कर सकता और यह दिखाता है कि वे आदर्श बेकार हैं, तो उस पर दोबारा भरोसे की कोई वजह ही नहीं है। अगर उन पर भरोसा ही नहीं किया जा सकता, तो उस रिश्ते में न तो कोई सुधार होने वाला है, न ही कुछ बदलने वाला है। भरोसा टूटने के बाद उसे दोबारा बनाने में एक दूसरा तथ्य है: उसका अब तक का इतिहास। अगर किसी ने आपका भरोसा तोड़ा और अब भी अच्छी बातें कर रहा है, तो आपको उसका अब तक का इतिहास खँगालना चाहिए। आप देखिए कि उसके बर्ताव में लगातार सुधार हुए हैं या नहीं। अगर हाँ, तब ही आप मान सकते हैं। कि अपने धोखे वाले आदशों को छोड़कर वह इन्सान वाक़ई में बदल जायेगा।

बदक़िस्मती से, भरोसे का ट्रैक रिकॉर्ड बनाने में समय लगता है-यक़ीनन उससे ज्यादा समय, जितना भरोसा तोड़ने में लगता है।
भरोसा बनाने के समय में , हालात और बिगड़ सकते हैं। इसलिए रिश्ते में मौजूद दोनों लोगों कौ समझना चाहिए कि क्या वे उस संघर्ष को झेलने के लिए तैयार हैं। मैं प्रेम-सम्बन्थों में धोखे के उदाहरण दे सकता हूँ, लेकिन इससे किसी की निजता का हनन होगा। जब भरोसा टूट जाता है, तो इसे सिर्फ़ इन क़दमों के ज़रिये ही बनाया जा सकता है: (1) भरोसा तोड़ने वाला ख़ुद उस आदर्श या सोच के बारे में बताये, जिसके चलते उसने ऐसा किया, और (2) भरोसा तोड़ने वाला अपने व्यवहार में ज़बर्दस्त सुधारों के साथ शानदार रिकॉर्ड बनाये। पहले क़दम के बिना तो इस दिशा में कोई काम किया ही नहीं जा सकता है। भरोसा एक चाइना प्लेट की तरह होता है। अगर आप इसे एक बार तोड़ दें, तो कुछ ध्यान और परवाह से आप इसे पफिर से जोड़ सकते हैं। लेकिन अगर आप इसे फिर से तोड़ देते हैं तो यह और भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर जायेगी, और इसे दोबारा जुड़ने में काफ़ी समय और मेहनत लगेगी। इसके बाद अगर आप इसे एक और बार तोड़ देते हैं, तो यह इतने छोटे-छोटे दुकड़ों में बिखर जायेगी कि इसे समेटना नामुमकिन हो जायेगा। सिर्फ टुकड़ों और धूल के सिवाय वहाँ कुछ नहीं बचेगा।

प्रतिबद्धता के माध्यम से आज़ादी

उपभोक्ता संस्कृति ने बहुत अच्छी तरह से हमें ज्यादा, और ज्यादा के लिए तैयार कर दिया है। सारे शोर-शराबे और मार्किटिंग से बस एक ही बात बताई जा रही है कि ज्यादा मतलब बेहतर। मैंने ख़ुद इस विचार पर बहुत समय तक जीवन जिया है। ज्यादा पैसे कमाये, ज्यादा देशों में घूमा, ज्यादा अनुभव लिए, ज्य्रादा औरतों के साथ रहा।
लेकिन ज्यादा हमेशा 'बेहतर' नहीं होता। वास्तव में, सच इसका उलट है। वास्तव में हम कम के साथ ज्यादा ख़ुश होते हैं। जब हमारे पास बहुत से अवसर और विकल्प होते हैं, तो हम मनोवैज्ञानिक रूप से चुनावों के विरोधाभास में फँस जाते हैं। देखा जाये तो, जितने ज्यादा विकल्प हमें मिलते हैं, उतने ही ज्यादा असन्तुष्ट हम होने लगते हैं क्योंकि हम चाहे जो चुन लें, हमारे सामने अनेक विकल्प होते हैं, लेकिन हम नहीं चुन पा रहे होते।

अगर आपकि पास दो जगहों का विकल्प हो कि उसमें से आप एक का चयन कर वहाँ रह सकते हैं, और आप अपने मन में ज्यादा विश्वस्त और सन्तुष्ट होंगे कि आपने सही चुनाव किया है। लेकिन अगर आपको यही चुनाव 28 जगहों में से करना पड़े, तो चुनाव के विरोधाभास स्वरूप आप सालों तक बेचैन रहेंगे और सन्देह करते रहेंगे कि आपने सही चुनाव किया भी था या नहीं, और आप मौक़े का पूरा फ़ायदा उठा पाये या नहीं। यही बेचैनी, निश्चितता की इच्छा और सही चुनने का संघर्ष आपको उदास कर देगा।

तो हमें क्या करना चाहिए? खैर, ऐसे में आप चाहेंगे कि आप इस चयन को जितने समय के लिए टाल सकें, उतना बेहतर। आप चाहेंगे कि यह विकल्प आपके लिए लम्बे समय तक खुला रहे। आप प्रतिबद्धता से बचेंगे।

लेकिन जब किसी एक इन्सान, एक जगह, एक नौकरी, एक काम में ज्यादा समय देने से हम बहुत सारे अनुभव लेने से चूक जाते हैं, तो हम अनुभव की उस गहराई से भी इनकार नहीं कर सकते जो ज्यादा समय तक एक जगह पर रहकर लिया जा सकता है। कुछ अनुभव ऐसे होते हैं, जिन्हें आप एक ही जगह पर पाँच साल से ज्सादा रहकर हासिल कर सकते हैं। किसी इन्सान के साथ दशक से ज्यादा का समय बिता देना या आधी ज़िन्दगी तक एक ही काम में दक्षता हासिल करने का अनुभव शब्दों में बयाँ नहीं किया जा सकता। अब जब मैं अपने तीस के दशक में हूँ, तो मैं इस प्रतिबद्धता को समझ सकता हूँ। यह अपने आप में अनुभव की समृद्धता है, जिसे किसी और तरीक़े से हासिल नहीं किया जा सकता, भले ही मैं कहीं भी चला जाऊँ या कुछ भी कर लूँ।

जब आप बहुत से अनुभव लेते हैं तो हर अनुभव की छाप आपके मन पर बहुत गहरी नहीं पड़ पाती, और आप बहुत कुछ नया या रोमांचक नहीं सँजो पाते। जब आप कभी अपने देश से बाहर न गये हों, तो जिस भी पहले देश में आप जाते हैं वह बहुत बड़े स्तर पर आपको प्रभावित करता है, क्योंकि अभी तक आपका अनुभव बहुत संकीर्ण था और पहली खुली हवा ही आपके मन को सहला जाती है। लेकिन जब आप बीस देशों में घूम चुके हों, तो इक्कीसवाँ देश आपके अनुभव में ज्यादा कुछ नहीं बढ़ा पाता। और फिर पचास और इक्यावन नम्बर आते-आते, आप बस नाममात्र के लिए चीज़ों को देख रहे होते हैं।

यही बात भौतिक सम्पत्ति में होती है। पैसा, शौक़, नौकरी, दोस्त और प्रेम/ शारीरिक सम्बन्ध-ये आदर्श रूप में चुनने के लिए बहुत ही खोखली वस्तुएँ हैं। जितना आपकी उम्र बढ़ती है, जितना अनुभव आप लेते हैं, उतना ही कोई नया अनुभव आप पर कम प्रभाव डालने लगता है। पहली बार जब मैंने पार्टी में शराब पी तो मैं काफ़ी रोमांचित

था। सौवीं बार पीने में मज़ा था। पाँच सौ तक आते-आते यह एक सामान्य वीकेंड बन जाता है और हज़ारवीं बार में तो यह बोरिंग और अमहत्तवपूर्ण लगने लगता है।
पिछले कुछ सालों में मेरे लिए बड़ी बात यह रही कि मैंने खुद को प्रतिबद्धता के लिए तैयार किया। मैंने अपनी ज़िन्दगी में बहुत से अ्छे लोगों और बहुत से अच्छे कामों को इनकार किया। मैंने अपने बिज़नेस प्रोजेक्ट बन्द करके, पूरा समय लेखन को देने का फैसला किया। मेरे इस फ़ैसले के बाद, मेरी वेबसाइट और भी ज्म्रादा लोकप्रिय हुई, इतनी जितनी शायद मैंने कल्पना की थी। लम्बे समय तक मैंने एक ही महिला से रिश्ता रखा। सच में मैं हैरान था क्योंकि यह मेरे लिए किसी भी दूसरी चीज़ से ज्यादा महत्त्वपूर्ण बन गया। मैंने एक ही जगह पर रहने का निर्णय लिया जिससे मेरे रिश्ते, दोस्ती और महत्ता बढ़ी। एक और चीज़ जो मैंने हासिल की, वह सच में इसके बिलकुल विपरीत थी। मुझे प्रतिबद्धता से आज़ादी और स्वच्छन्दता मिली। मुझे ज्यादा अवसर मिले और मैं तसल्ली से वह चुन पाया जो वाक़ई में मेरे लिए मायने रखता था।
प्रतिबद्धता आपको आज़ादी देती है क्योंकि इसकी वजह से आपका ध्यान ग्रैर-ज़रूरी चीज़ों के लिए नहीं भटकता है। प्रतिबद्धता आपको आज़ादी देती है क्योंकि इसकी वजह से आप अपना फ़ोकस बनाये रखते हुए सिर्फ़ ख़ुद को खुश और स्वस्थ बनाने की दिशा में अग्रसर होते हैं। प्रतिबद्धता से निर्णय लेने में आसानी होती है और आप अनजाने डर से आज़ाद होते हैं। यह जानकर कि आप पहले से ही किस चीज़ में अच्छे हैं, आप और ज्यादा का तनाव लेकर क्यों घूमेंगे? प्रतिबद्धता आपको नये लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित करने की आज़ादी देती है, और इससे आप ऊँचे स्तर की सफलता हासिल कर सकते हैं।
इस तरीक़े से, विकल्पों को अस्वीकार करना भी हमें आज़ादी देता है-हम उन चीज़ों को आसानी से छोड़ सकते हैं जो हमारे आदश्शों से मेल नहीं खातीं।
हाँ, अनुभवों की विशालता तब बहुत ज़रूरी होती है, जब आप युवा होते हैं- आख़िर आपको भी दुनिया का तजुर्बा लेना होता है, और समझना होता है कि क्या काम आप करना चाहेंगे। लेकिन असली बात गहराई में ही होती है और गहराई में उतरने के लिए किसी चीज़ के साथ तो प्रतिबद्ध होना ही होता है। रिश्ते, कैरियर, अच्छी जीवन-शैली बनाने के लिए यही सच है।

...और फिर तुम मर जाओगे

"खुद अपना सच ढूँढ़ना, और फिर वहाँ मैं तुम्ें मिलँगा।"
ये वह आख़िरी बात थी, जो जॉश ने मुझसे कही थी। उसने यह बात व्यंग्य से कही थी, गम्भीर बनने की कोशिश करते हुए, गम्भीर से दिखने वाले लोगों का मज़ाक़ बनाते हुए। वह नशे में था और मेरा अच्छा दोस्त था।
मेरी ज़िन्द्गी का सबसे बदलावकारी पल वह था, जब मैं उन्नीस साल का था। मेरा दोस्त जॉश मुझे डलास, टेक्सास में झील किनारे एक पार्टी में ले गया। वहाँ पहाड़ी पर मकान थे और पहाड़ी के नीचे पूल। पूरल के नीचे एक चद्टान थी, जो सीधा झील पर झाँकती हुई-सी प्रतीत होती थी। वह चट्टान बहुत ऊँची नहीं थी, शायद 30 फ़ीट ँची-लेकिन इतनी ऊँची तो ज़रूर थी कि उस पर से छलाग लगाने से पहले आप ज़रूर दो बार सोचेंगे, लेकिन इतनी नीची कि शराब के नशे और आपके तनाव के चलते उसके लिए दूसरी बार सोचने के ख़याल को मिटाया जा सकता था।
पार्टी में पहुँचने के कुछ देर बाद ही, जॉश और मैं एक साथ पूल में बैठकर, बियर पीते हुए वही बातें कर रहे थे, जो उस उम्र के लड़के कर सकते थे। हम शराब, बैंड और लड़कियों की बातें कर रहे थे और वे सारी मज़ेदार चीजें, जो जॉश ने म्यूज़िक स्कूल छोड़ने के बाद की थीं। हमने एक साथ एक बैंड में काम करने और न्यूरयॉर्क में जाकर बसने की बात की-जो उस समय एक असम्भव सपना था।
हम बस बच्चे ही थे। "यहाँ से छलाँग लगाना सही रहेगा क्या?" कुछ देर बाद मैंने चट्टान के परे दिखती झील की तरफ़ हाथ करते हुए पूछा। "हाँ," जॉश ने कहा, "लोग अक्सर यहाँ से छलाग लगाते हैं।" "क्या तुम भी ऐसा करने वाले हो?" उसने कन्धे उचकाये। 'शायद। देखते हैं। उस शाम क, बाद में मैं और जॉश अलग हो गये। मैं एक ख़ुबसूरत सी एशियाई लड़की के प्रति आकर्षित हो गया था, जिसे वीडियो गेम पसन्द थे, जो मेरे जैसे लड़के के लिए लॉटरी लगने जैसी बात थी। उसकी मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन वह ख़ुशमिज़ाज थी और मुझे बात करने दे रही थी, इसलिए मैं उससे बात कर रहा था। कुछ बियर पीने के बाद, मैंने हिम्मत करके उससे पूछा कि क्या वह मेरे साथ ऊपर घर तक, कुछ खाने को लेने चलेगी। उसने कहा, ठीक है। जब हम ऊपर की तरफ़ जा रहे थे, तो जॉश हमें नीचे की तरफ़ आता दिखा। मैंने उससे पूछा कि क्या उसे भी कुछ खाना था, लेकिन उसने मना कर दिया। मैंने

उससे पूछा कि बाद में वह मुझे कहाँ मिलेगा। उसने मुस्कराकर कहा, "ख़ुद अपना सच ढूँढ़ना, और फिर वहाँ मैं तुम्हें मिलूँगा!" मैंने चेहरे पर गम्भीरता ला, हाँ में सिर हिलाया। "ठीक है, मैं मिलता हूँ," मैंने जवाब दिया। जैसे कि सब जानते हैं कि सच कहाँ है, और वहाँ कैसे पहुँचा जा सकता है।
जॉश हँसा और चद्टान की तरफ़ बढ़ गया। मैं भी हँसा और ऊपर घर की तरफ़ बढ़ गया।
मुझे याद नहीं कि मैं कब तक उस घर में था। मुझे बस यह याद है कि जब मैं और वह लड़की दोबारा उस घर से निकले, तो हर कोई जा चुका था और वहाँ सायरन बज रहा था। पूल ख़ाली था। लोग नीचे चडटान की तरफ़ भाग रहे थे। कुछ लोग पहले से ही नीचे पानी के पास खड़े थे। मैं कुछ लोगों को नीचे पानी में तैरते हुए देख पा रहा था। बहुत अॅधेरा था इसलिए कुछ भी ठीक से देख पाना मुश्किल था। संगीत भी धीमे-धीमे बज रहा था, लेकिन कोई सुन नहीं रहा था। एशियाई लड़की ने मुझसे कहा, "मुझे लगता है कि कुछ बुरा हुआ है।" घूर रहा था। मैंने दोबारा पूछा, और तभी एक लड़की फूट-फूटकर रोने लगी।
हालात को न समझते हुए, मैं नीचे किनारे की तरफ़ भागा, अपना सैंडविच खाते हुए, मैं बस जानना चाहता था कि सब वहाँ क्यों खड़े थे। आधे रास्ते में, उस सुन्दर जब मैं पहाड़ी के नीचे पहुँचा और मैंने किसी से पूछा जॉश कहाँ है। किसी ने मुझे नहीं देखा क्योंकि कोई मुझे पहचान नहीं रहा था। हर कोई सिर्फ़ पानी की तरफ़ ही तब मैं हालात को समझ पाया।
स्कूबा डाइवर्स्स को झील की तली से जॉश की बॉडी ढूँढ़ने में तीन घण्टे लगे। बाद में पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चला कि शराब की शुष्कता और चट्टान से गिरने की वजह से उसके पैर अकड़ गये थे। जब वो कूदा, तब पूरी तरह अँधरा था और पानी की लहरें नीचे जाने पर और अंधियारी हो जाती थीं । किसी को नहीं पता चल पाया कि बचाव के लिए उसकी आवाज़ कहाँ से आ रही थी। उन्हें पानी में छपाक की आवाज़ आयी थी। बस। उसके माता-पिता ने बाद में मुझे बताया था कि वह बहुत ख़राब तैराक था। मुझे इस बारे में कुछ नहीं जानना था।
उस हादसे पर मैं बारह घण्टे बाद रो पाया। मैं अपनी कार में था और अगली सुबह ओंस्टिन वापस पहुँचने के लिए ड्राइव कर रहा था। मैंने अपने डैड को फ़ोन करके बताया कि मैं अभी भी डलास के पास ही हूँ और उस दिन काम पर नहीं पहुँच पारऊँगा। (उन गर्मियों में मैं अपने पिता के लिए काम कर रहा था।) उन्होंने पूछा, "क्यों; क्या हुआ? सब सही तो है न?" और तब मैं ख़ुद को नहीं रोक पाया और मेरे आँसू बह निकले। रोना, चिल्लाना और बिफरना। मैंने गाड़ी सड़क के किनारे लगायी

और फ़ोन अपनी मुट्ठी में लेकर किसी छोटे बच्चे की तरह अपने पिता के सामने रोने लगा।
उन गर्मियों में मैं गहरे तनाव में चला गया। मुझे लगा कि शायद यह तनाव पहले से था, लेकिन अचानक जो सब अर्थहीन लगने लगा था-वह उदासी अब बहुत तकलीफ़ दे रही थी। लोग मेरे पास आते, मेरा मन बहलाने की कोशिश करते, और मैं वहाँ बैठकर उनकी बातें सुना करता। वे सब सही कह रहे थे, सही कर रहे थे; और मैं उन्हें आने के लिए शुक्रिया कहता और चेहरे पर झूठी मुस्कान लिए बताता कि अब मुझे पहले से बेहतर महसूस हो रहा था, लेकिन अन्दर से मैं कुछ महसूस नहीं कर पा रहा था।
उसके बाद कुछ महीनों तक मुझे जॉश के सपने आते रहे। ऐसे सपने, जहाँ वह और मैं, दोनों ज़िन्दगी और मौत के बारे में ख़ुब खुलकर बात किया करते, और बहुत-सी बेतुकी चीज़ों के बारे में भी। उस समय तक, मैं पूरी तरह मध्यवर्गीय बिगड़ा हुआ लड़का थाः आलसी, गैर-जिम्मेदार, सामाजिक रूप से रूखा, और अन्दर से असुरक्षित। जॉश, कई मायनों में वह इन्सान था, जिसके जैसा मैं बनना चाहता था। वह बड़ा था, ज्यादा विश्वस्त, ज्यादा अनुभवी, और अपने आसपास की दुनिया का खुलकर स्वागत करने वाला। जॉश के बारे में देखे गये आखिरी सपने में, मैं उसके साथ जकूजी में बैठा था (हाँ, मैं जानता हूँ कि यह अजीब था), और कुछ ऐसा कह रहा था, "तुम्हारी मौत का मुझे बहुत अफ़सोस है।" वह हँसा। मुझे याद नहीं कि उसके शब्द क्या थे, लेकिन उसने कुछ ऐसा कहा था, "मेरे मरने की तुम क्यों परवाह कर रहे हो, जबकि तुम तो खुद जीने से इतना डरते हो?" मैं रोते हुए उठा था।
उन गर्मियों में, मैं अपनी मॉम के काउच पर बैठकर उस रसातल को घूरता रहता, जो अन्तहीन और दुरूह था, और उस शून्य में जहाँ कभी जॉश की दोस्ती हुआ करती थी। तब मुझे एक एहसास हुआ कि क्या वाक़ई में कुछ भी करने का कोई कारण नहीं है, तो कुछ नहीं करने का भी नहीं। मौत की निश्चितता के सामने किसी भी डर या शर्मिन्दगी का कोई मूल्य ही नहीं है अब तक के आपने जीवन में, मैं जिस तकलीफ़ और असहजता से भाग रहा था, वास्तव में मैं ज़िन्दगी से ही भाग रहा था।
उन गर्मियों में, मैंने चरस, सिगरेट और वीडियो गेम को पूरी तरह छोड़ दिया। मैंने रॉकस्टार बनने की कल्पना भी छोड़ दी और म्यूज़िक स्कूल से नाम कटवाकर अपना नाम एक कॉलेज के कोर्स में लिखवा लिया। मैंने जिम जाना शुरू कर दिया और कुछ वज़न भी कम किया। मैंने नये दोस्त बनाये। मुझे मेरी पहली गर्लफ्रेंड मिली। ज़िन्दगी में पहली बार मैंने ग्रेड्स के लिए पढ़ाई की, और मुझे पता चला कि मैं थोड़ा लोड लूँ तो मेरे अच्छे ग्रेड्स भी आ सकते थे। अगली गर्मियों में मैंने ख़ुद को

पचास दिनों में पचास नॉन-फ़िक्शन किताबें पढ़ने की चुनौती दी, और उसे पूरा भी किया। उसके अगले साल मेरा ट्रांसफर देश के दूसरे हिस्से में, एक और अच्छी यूनिवर्सिटी में कर दिया गया, जहाँ मैंने पहली बार कमाल का प्रदर्शन किया, अकादमिक ्रूप से भी और सामाजिक रूप से भी।
जॉश की मौत से मेरी ज़िन्दगी दो हिस्सों में बँट गयी थी। हादसे से पूर्व, मैं संकोची, महत्वाकांक्षाहीन, हमेशा नशे में रहने वाला और खयाली दुनिया में जीने वाला लड़का था। हादसे के बाद, मैं एक नया इन्सान बन गया थाः ज़िम्मेदार, सजग, मेहनती। अभी भी मेरी कुछ असुरक्षाएँ और मसले थे-जैसे कि हमेशा होते हैं-लेकिन अब मैं, उनसे ऊपर, ज़रूरी चीज़ों का लोड लेने लगा था। इसी से कहानी पूरी तरह बदल गयी। अजीब है कि किसी और की मौत ने मुझे जीने का तरीक़ा सिखाया। शायद मेरी ज़िन्दगी का सबसे भयानक पल, मेरे लिए सबसे परिवर्तनकारी सिद्ध हुआ।
मौत हम सबको डराती है क्योंकि यह हमें डराती है, हम इसके बारे में सोचने से बचते हैं, इसके बारे में बात नहीं करते, और इसे तब तक पहचानते भी नहीं जब तक कि हमारे किसी प्रिय के साथ ऐसा कुछ न हो जाये।
जबकि यह अजीब है, दुसरे तरीक़े से देखें तो मौत वह रोशनी है, जिसमें ज़िन्दगी के सारे अर्थों को मापा जा सकता है। मौत के बिना, सब कुछ महत्त्वहीन, हर अनुभव एकतरफ़ा और हर मानदण्ड व आदर्श शुन्य लगेगा।

हमसे परे कुछ

अर्नेस्ट बेकर अकादमिक रूप से परित्यक्त थे। 1960 में, उन्होंने अपनी पीएच.डी. मानवशास्त्र में की थी; उन्होंने अपारम्परिक रूप से ज़ेन, बौद्ध धर्म और मनोविश्लेषण पर शोध किया था। उस समय, ज़ेन को बनजारों और नशेड़ियों के लिए माना जाता था, और फ्रायडवादी मनोविश्लेषकों को अनाड़ी समझा जाता था। असिस्टेंट प्रोफ़ेसर के रूप में अपनी पहली नौकरी पर, बेकर को तुरन्त उस भीड़ का हिस्सा बता मनोविज्ञान पढ़ाने से मना कर दिया गया। उन्होंने उसकी प्रैक्टिस को अवैज्ञानिक माना जो कमज़ोरों और लाचारों को दबाती थी।
समस्या यह थी कि बेकर के बॉस मनौचिकित्सक थे। यह कुछ ऐसा था कि आप अपनी पहली नौकरी पर गये हों, और अपने बॉस की तुलना हिटलर से कर रहे हों।

जैसी कि आप कल्पना कर सकते हैं, उसे नौकरी से निकाल दिया गया। बेकर अपने तीव्र विचारों को वहाँ ले गया, जहाँ उन्हें स्वीकार किया जा सकता हो: बर्कले, कैलीफ़ोर्निया। लेकिन यह भी ज्यादा समय तक नहीं चला, क्योंकि बेकर को परेशानी में डालने की ज़िम्मेदार सिर्फ उसकी व्यवस्था-विरोधी प्रवृत्ति नहीं थी; बल्कि उसकी पढ़ाने की अजीब शैली भी थी। वह मनोविज्ञान पढ़ाने के लिए शेक्सपियर का इस्तेमाल करता, मानवशास्त्र समझाने के लिए मनोविज्ञान की किताबें लेता, और मानवशास्त्रीय डाटा का इस्तेमाल समाजशास्त्र के लिए करता। वह किंग लीयर की तरह कपड़े पहनकर आता, क्लास में नक़ली तलवार युद्ध करवाता, और बिना बात के ही लम्बे-लम्बे राजनीतिक भाषण दे डालता। उसके छात्र उसे चाहते थे। और फ़िकल्टी के दूसरे साथी उससे नफ़रत करते थे। एक साल से भी कम समय में, उसे वहाँ से निकाल दिया गया।

वहाँ से निकल जाने के बाद बेकर सैन फ्रांसिस्को स्टेट यूनिवर्सिटी में गया, वहाँ वह एक साल से ज़्ादा समय तक अपनी नौकरी बचा पाया। लेकिन जब छात्रों ने वियतनाम युदध के ख़िलाफ़ विरोध किया, तो विश्वविद्यालय को सुरक्षा के लिए पुलिस बुलानी पड़ी और वहाँ हालात हिंसक हो गये, लेकिन जब बेकर ने छात्रों का साथ देते हुए सार्वजानिक रूप से डीन की निन्दा की, (एक बार फिर बॉस को हिटलर कहने वाली बात) तो उसे वहाँ से भी तुरन्त निकाल दिया गया।

बेकर ने छह सालों में चार बार नौकरी बदली और इससे पहले कि वह पाँचवीं जगह से भी निकाला जाता, उसे कोलोन कैंसर हो गया। रोग के लक्षण भयानक थे। उसे अगले कुछ साल बिस्तर पर ही गुज़ारने पड़े। उसके बचने की उम्मीद बहुत ही कम रह गयी। तो बेकर ने एक किताब लिखने का फ़ैसला किया। यह किताब मौत के बारे में थी।

बेकर की मौत 1974 में हो गयी। उसकी किताब द डिनायल आपफ़ डेथ ने पुलित्जर प्राइज़ जीता और बीसवीं सदी की सबसे प्रभावशाली किताब बन गयी, जिसने मनोविज्ञान और मानवशास्त्र के क्षेत्र को हिलाकर रख दिया। उसका प्रभाव आज के मनोविज्ञान पर भी साफ़ देखा जा सकता है।

द डिनायल ऑफ़ डेथ के मुख्य रूप से दो पॉइंट थे:

1. इन्सान जानवरों से सिर्फ़ इस बात में अलग हैं कि वे अपने बारे में सोच सकते हैं। कुत्ते बैठकर अपने कैरियर के बारे में चिन्ता नहीं कर सकते। बिल्लियाँ अपने अतीत की ग़लतियों के बारे में चिन्ता करते हुए यह नहीं सोच सकतीं कि अगर उन्होंने कुछ अलग किया होता तो उसका क्या परिणाम होता। बन्दर अपने भविष्य की सम्भावनाओं पर तर्क नहीं कर सकते, मछलियाँ यह नहीं सोच सकतीं कि उनका फिन दूसरी मछली से लम्बा होता तो क्या होता। सिर्फ़ हम इन्सान ही, बिलकुल काल्पनिक स्थिति में भी ख़ुद की कल्पना कर सकते हैं, अतीत और भविष्य, दोनों के बारे में विचार कर सकते हैं, द्ूसरी वास्तविकताओं या हालातों के बारे में सोच सकते हैं, जहाँ चीज़ें पूरी तरह से अलग हो सकती थीं। इस ख़ास मानसिक योग्यता की वजह से ही बेकर कहते हैं कि हम सभी किसी-न-किसी पॉइंट पर अपनी मौत के प्रति सजग होते हैं क्योंकि हम वास्तविकता के विकल्प के बारे में भी सोच सकते हैं, और हम ऐसे हालात की भी कल्पना कर सकते हैं, जिसमें हम न हों।

इसी एहसास को बेकर ने मौत का आतंक' कहा है, यह एक ऐसा छिपा हुआ एहसास है, जो हमारे हर काम का आधार होता है।

2. बेकर का दूसरा पॉइंट इस पृष्ठभूमि से शुरू होता है कि हम सबके पास दो माले होते हैं। पहले माले को उन्होंने व्यक्तिगत कहा है-जहाँ खाने, सोने, खरटि और पॉटी जैसे मसले होते हैं। दूसरा माला वैचारिक मसलों का है-जिसमें हमारी पहचान, या हम ख़ुद को कैसे देखते हैं, जैसे मसले आते हैं।

बेकर के तर्क यह हैं: किसी एक स्तर तक हम सब जानते हैं कि हम शारीरिक रूप से मर जायेंगे, कि मौत को टाला नहीं जा सकता, और यह अटल रूप से- अचेत स्तर पर-हम सबको डराती है। इसीलिए मौत के अपने डर से उबरने के लिए हम ख़ुद को ऐसी चीज़ों तक सीमित कर देना चाहते हैं, जो हमारे हिसाब से अमर हों। इसी कारण से लोग अपना नाम इमारतों, मूर्तियों और किताब की स्पाइन पर खुदवाना चाहते हैं। इसी वजह से अपना ज्यादा समय दूसरों को देने कि लिए मजबूर होते हैं, ख़ासकर बच्चों को। हम सोचते हैं कि इस तरह हमारा नाम लम्बे समय तक इस संसार में लिया जाता रहेगा और इसी वजह से हम ऐसी चीज़ों को आदर्श बनाते हैं, जो हमारे जाने के बाद भी हमारे नाम को बचाये रख पायें।

बेकर ऐसी कोशिशों को हमारा 'अमरत्व प्रोजेक्ट' कहते हैं, जिसके सहारे हम यह शरीर छोड़कर जाने के बाद भी ज़िन्दा रहने की कोशिश करते हैं। वे कहते हैं, सारी मानव सभ्यता वास्तव में अमरत्व प्रोजेक्ट का ही परिणाम है: शहर, सरकों, इमारतें, प्रशासन सब हमसे पहले आये इन्सानों की अमरत्व परियोजनाएँ ही थीं। ये हमारी उसी सोच का अवशेष हैं। ईसा, मुहम्मद, नेपोलियन और शेक्सपियर जैसे नाम आज

भी उतने ही (अगर उससे ज़्रादा नहीं तो) शक्तिशाली हैं, जैसे जब वे जीवित थे। और यही सारा पॉइंट है। फिर वह चाहे किसी कला में महारत हासिल करना हो, या किसी नयी ज़मीन पर जीत हासिल करना, ख़ुब पैसे कमाना हो या एक बड़ा और प्यार करने वाला परिवार, जो पीढ़ियों तक जीवित रह सके, ये सब ज़िन्दगी की कभी न ख़त्म होने वाली हसरत का ही परिणाम हैं। धर्म, राजनीति, खेल, कला और तकनीकी आविष्कार लोगों की अमरत्व परियोजना का ही परिणाम हैं। बेकर तर्क देते हैं कि युद्ध, क्रान्तियाँ और जनसंहार तब होते हैं जब एक समूह के अमर होने की भावनाएँ दूसरे समूह से टकराने लगती हैं। सदियों के दमन और लाखों के ख़ुन को भी इसी अमरत्व की भावना से जायज़ ठहराने की कोशिश की जाती है।
लेकिन, जब हमारे अमरत्व की परियोजना फेल होती है, जब उसका अर्थ खो जाता है, जब हमारी सोच और उसका मूर्त रूप सम्भव होता नहीं दिखता तो मौत का आतंक-उस भयानक, हताश बेचैनी-पुनः हमारे दिलोदिमाग पर हावी हो जाती है। सदमा, शर्मिन्दगी और सामाजिक परिहास इसी का कारण हो सकते हैं और बेकर के अनुसार, मानसिक रोग भी।
अगर आप अब तक इसे नहीं समझ पाये हैं, तो बता द्रँ कि हमारी अमरत्व परियोजनाएँ ही हमारे आदशर्श होती हैं। वे ही हमारी ज़िन्दगी के अर्थ और मूल्य का मानदण्ड होती हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से कहें, तो जब हमारे आदशर्श धराशायी होते हैं, तो हम भी बिखर जाते हैं। बेकर के अनुसार, इसी डर से हम बहुत-सी चीज़ों का लोड ले लेते हैं, क्योंकि किसी चीज़ का लोड लेकर ही हम मौत के उस आअटल सच से अपना ध्यान हटा पाते हैं। वास्तव में कोई भी लोड न लेकर हम एक क़रिस्म की आभासी-आध्यात्मिक अवस्था हासिल कर लेते हैं, जहाँ हम अपने अस्तित्व का अस्थायित्व स्वीकार कर लेते हैं।
बेकर बाद में अपनी मृत्यु-शैया पर एक और परिणाम पर पहुँचे कि लोगों की अमरत्व की परियोजनाएँ वास्तव में समस्या थीं, न कि समाधान। उन्हें लागू करने की बजाय, भले ही आपमें असीम ताक़त क्यों न हो, लोगों को अपनी सोच पर सवाल उठाना चाहिए और अपनी मौत के सच को खुले दिल से अपनाना चाहिए। बेकर इसे कड़वी दवाई कहते हैं, और वे अपनी मौत को सामने देखकर उससे सामंजस्य बिठाने का संघर्ष कर रहे थे। हालोंकि मौत बुरी है, लेकिन इसे टाला नहीं जा सकता। इसलिए, हमें इस सच से नज़रें नहीं फेरनी चाहिए, बल्कि इसमें से जो श्रेष्ठ निकाला जा सकता है, उस पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि एक बार जब हम अपनी मौत के ख़याल के साथ सहज हो जाते हैं- (आतंक की जड़, ज़िन्दगी की बेहिसाब महत्वाकांक्षाओं के नीचे छिपी बेचैनी) तो हम अपने अआदशों का चयन ज्यादा

उदारता के साथ कर सकते हैं, अमर बनने की बेतुकी खोज को छोड़, हुठधर्मिता के ख़तरे से आज़ाद होकर।

मौत का सुनहरा पहलू

मैं चट्टान-दर-चट्टान ऊपर चढ़ता जा रहा था, स्थिरता से, मेरे पैरों की मांसपेशियाँ खिच रही थीं और उनमें दर्द हो रहा था। ध्यान की उस अवस्था में शीर्ष पर पहुँचने के बिलकुल क़रीब था, वह अवस्था जो धीमे लेकिन लगातार शारीरिक संघर्ष से आती है। वहाँ आकाश अधिक विस्तृत व गहरा होता जा रहा था। अब मैं अकेला था। मेरे दोस्त मुझसे बहुत पीछे थे, वे रुककर समुद्र की तस्वीरें ले रहे थे।

आख़िरकार मैं एक छोटे शिलाखण्ड पर चढ़ गया और वहाँ से खुला नज़ारा देखने लगा। मैं यहाँ से अनन्त क्षितिज देख सकता था। ऐसा लग रहा था कि मानो मैं धरती का किनारा देख रहा था, जहाँ पानी आकाश के साथ मिल रहा था, नीला नीले में समा रहा था। हवा मेरी त्वचा को चीरती-सी गुज़र रही थी। मैंने ऊपर देखा। आसमान चमक रहा था। सब ख़ुबसूरत दिखाई दे रहा था।

मैं साउथ अफ्रीका के केप औफ़ गुड होप में था, जिसे अफ्रीका का दक्षिणी सिरा माना जाता था और वह दुनिया का भी दक्षिणी सिरा था। यह एक अशान्त जगह है, एक ऐसी जगह जहाँ अव्स्र तुफ़ान और समुद्र की लहें उफ़ान मारती रहती हैं। एक ऐसी जगह जिसे सदियों से व्यापार और वाणिज्य के लिए बेहतर जगह के रूप में देखा गया। एक ऐसी जगह, जहाँ आप सारी उम्मीदें खोकर, शायद नयी उम्मीदें सँजोते हैं।

पुर्तगाली में एक कहावत है: "वह केप आफ् गुड होप के चक्कर लगा रहा है।" इसंका मतलब है कि जुब इन्सान अपने आखिरी दौर में होता है, तो वह कुछ भी पूरा कर पाने में असमर्थ होता है।

मैंने उस चट्टान को पार कर खुले आकाश की तरफ़ क़ृदम बढ़ाया, उसकी विशालता को अपनी नज़रों में समाते हुए। मैं पसीने से तर हो रहा था, हालंकि वह ठण्डा पसीना था। मैं रोमांचित भी था और घबराया हुआ भी। जो हो रहा था, क्या वह संच था?

हवा मेरे कानों पर थपेड़े मार रही थी। मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था, लेकिन मैं उस किनारे को देख पा रहा था जहाँ चद्टान गुमनामी से मिल रही थी। मैं रुका और एक

पल वहीं खड़ा रहा, थोड़ी दूर। नीचे खुला समुद्र मुझे दिखाई दे रहा था, चट्टान से टकराता हुआ और दूसरे छोर पर मीलों तक फैला हुआ। अथाह दीवार से लहरें तेज़ी से टकरा रही थीं। सीधा आगे, एक गहरी खाई थी, कम से कम 50 फ़ीट गहरी।
मेरे दाहिनी ओर, पर्यटक प्रकृति की ख़ुबसूरती में डूबे हुए फ़ोटो खींच रहे थे और यहाँ से छोटी-छोटी दिखाई देती चट्टानों के आगे समूह् बनाकर खड़े थे। मेरे बायीं ओर एशिया था। मेरे सामने आकाश था और मेरे पीछे वह सब कुछ, जिसकी कभी मैंने उम्मीद की थी और अपने साथ लाया था । ये क्या था? ये सब ऐसा क्यों मालूम पड़ रहा था?
मैंने अपने आसपास देखा। मैं अकेला था। मैंने अपना पहला क़दम चट्टान के किनारे की तरफ़ बढ़ाया।
मानव शरीर शायद मौत के अन्देशे से सचेत हो सकता है। उदाहरण के लिए, जिस पल आप चट्टान के सिरे से दस फ़ीट की टूरी पर होते हैं, जहाँ सहारे के लिए कोई रेलिंग न हो, आपके बदन में एक निश्चित तनाव उत्पन्न होने लगता है। आपकी कमर अकड़ जाती है। आपकी त्वचा झनझनाने लगती है। आपकी आँखें वातावरण की हर चीज़ को गहराई से देखने लगती हैं। आपके पैर ऐसे महसूस होते हैं, मानो वे पत्थर के बने हों। मानो कोई बड़ी-सी, अद्दश्य चुम्बक आपके शरीर को पीछे खींच रही हो।
लेकिन मैंने चुम्बक से संघर्ष किया। मैंने पत्थर से बने पैरों को किनारे की तरफ़ खींचा।
पाँच फ़ीट की दूरी पर, आपका दिमारा उस माहौल को स्वीकारने लूगता है। अब आपको सिर्फ़ किनारा ही नहीं बल्कि चट्टान से नीचे, वह ढलान भी दिखाई देने लगता है जो आप देखना नहीं चाहते। आपका दिमाग़ ख़तरे की घण्टी बजाता है कि आप वाक़ई में बहुत दूर निकल आये हैं। सच में, बहुत दूर दोस्त। यार, तुम क्या कर रहे हो आगे मत बढ़ो। यहीं रुक जाओ।
मैं अपने दिमाग को चुप रहने को कहता हूँ, और इंच-दर-इंच आगे बढ़ता हूँ।
तीन फ़ीट की दूरी पर, आपका शरीर रेड अलर्ट का ऐलान करता है। अब बस आप अपनी ज़िन्दगी ख़त्म करने की कगार पर होते हैं। ऐसा लगता है मानो हवा का एक तेज़ झोंका भी आपको इस अनन्त विस्तार से मिला सकता है। आपके पैर काँपने लगते हैं। आपके हाथ भी। आपकी आवाज़ भी। अगर आप ख़ुद को इस करीब आती मौत की याद दिलाना चाहें। तीन् फ़ीट की दूरी अधिकत्म लोगों के लिए अन्तिम होती है। आप इतने क़रीब होते हैं कि ज़रा-से झाँकते ही आपको त्लहटी दिख जाये, लेकिन फिर भी इूतना दूर कि आप जानते हैं कि अभी आपकी ज़िन्दगी पर कोई वास्तविक ख़त्रा नहीं है। चेट्टान के किनारे पर खड़ा होकर, भले ही वह केप ऑफ़

गुड होपजितनी आकृर्षक और सुन्दर क्यों न हो, आपको चक्कर आने का एहसास होता है और लगता है कि पिछली बार जो खाया था, वह बाहर निकल जायेगा। सच में क्या यही वह सच है? क्या जो कुछ मैं जानना चाहता हूँ वह मैं पहले से ही जानता हँ? मैं धीरे से एक और क़ृदम बढ़ाता हूँ, फिर एक और। अब मैं दो फ़ीट की दूरी पर

था। मेरा आगे का पैर काँपता है, जब मैं इस पर अपने शरीर का भार डालता हूँ। मैं पैर घसीटने लगता हूँ । चुम्बक के विपरीत। अपने मन के विपरीत। बचने के अपने हर सहज ज्ञान के विपरीत।

दूरी अब एक फ़ीट की थी। अब मैं सीधे चट्टान के नीचे देख सकता था। अचानक ही मुझे तेज़ रुलाई महसूस हुई। मेरा बदन अचानक मुड़ने लगा, उस भयानक सम्भाव्य से ख़ुद को बचाते हुए। हवा तेज़ गति से मुझसे टकरा रही थी। सब साफ़- साफ़ समझ आ रहा था।

एक पैर पर आप ऐसा महसूस करते हैं, मानो तैर रहे हों। ऊपर से नीचे देखने पर ऐसा महसूस होता है मानो आप आकाश का ही हिस्सा हों । आप वास्तव में उम्मीद करने लगते हो कि अब आप गिर जाओगे।

एक पल को मैं झुका और अपनी साँस सँभाली, अपने विचारों को एकाग्र किया। मैंने खुद को नीचे चट्टान से टकराते पानी को देखने के लिए मजबूर किया। पफिर मैंने पुनः अपने दाहिनी औओर देखा, मानो छोटी-छोटी चींटियाँ, बोर्ड के आगे एकत्र होकर फ़ोटो खिंचवा रही हों, ट्रिस्ट बसों का पीछा कर रहे हों, क्या किसी तरह से उनमें से किसी की नज़र मुझ पर जायेगी। ध्यान पाने की चाह बड़ी खतरनाक है। लेकिन यह भी तो ख़तरनाक था। यक़ीनन इस दूरी पर मुझे देख पाना असम्भव था और अगर वे देख भी लेते तो इतनी टूरी से वे कुछ कह या कर नहीं पाते।

मुझे बस वहाँ हवा का शोर सुनाई दे रहा था।

क्या यही सच है?

मेरा बदन सूखे पत्ते-सा कॉप रहा था, डर अब बढ़ते हुए बाक़ी हर ख़याल पर हावी हो रहा था। मैंने अपने मन को एकाग्र किया और किसी ध्यानावस्था की तरह अपने विचारों को साफ़ किया। अपनी मौत से इंच भर की दूरी से ज्यादा एकाग्र आपको और कुछ नहीं कर सकता। मैंने सीधा होकर पुनः ऊपर देखा, और अब मैं मुस्करा रहा था। मैंने ख़ुद को याद दिलाया कि मौत सहज है।

अपनी ख़ुद की मौत के साथ यह सहजता ही हमारी प्राचीन जड़ है। ग्रीक और रोम के प्राचीन साधु ज़ोर देते थे कि लोग हर समय अपनी मौत को याद रखें, जिससे वह ज़िन्दगी की सराहना और मुश्किलों में भी विनम्र बने रहना सीख सकें। बौद्ध धर्म के

भी भिन्न रूपों में, ध्यान के अभ्यास के रूप में किसी को जीवित रहते हुए ही मौत के लिए तैयार होना सिखाया जाता है। किसी के आहंकार को ख़त्म करने के लिए- निर्वाण की अवस्था हासिल करने के लिए भी उसे दुनिया के उस पार का एहसास कराया जाता है। यहाँ तक कि मार्क ट्रेन ने भी कहा था, "मौत का डर, ज़िन्दगी के डर के बाद आता है। एक आदमी जिसने भरपूर जीवन जिया हो, वह किसी भी समय मरने को तैयार रहता है।" वापस चट्टान पर मौजूद मैं, थोड़ा-सा झुका और पीछे की तरफ़ हल्का-सा सहारा लिया। मैंने अपने हाथ ज़मीन पर टिकाये और धीरे- से अपने कूल्हों को ज़मीन पर धरा। अब मैंने धीरे-से अपने एक पैर को चट्टान से लटका दिया। वहाँ किनारे पर एक छोटी चट्टान रस्सी के सहारे उस बड़ी चट्टान से बँधी हुई थी। मैंने अपना पैर उस पर रख दिया। फिर मैंने अपने दूसरे पैर को भी धीरे-से लटकाकर उसी छोटी चट्टान पर टिका दिया। मैं वहाँ एक पल बैठा रहा, पीछे की तरफ़ अपनी हथेलियों का सहारा लिए, हवा मेरे बालों को सहला रही थी। अब वह बेचेनी सहन करने लायक थी, और मेरा ध्यान क्षितिज पर ही कैन्द्रित था।

फिर मैं सीधा बैठा और पुनः चट्टान से नीचे झाँका। डर वापस से मेरी रीढ़ में दौड़ गया, मेरे अंगों को झटका देते हुए एक ही बार में मेरा ध्यान अपने शरीर के हर इंच पर दौड़ गया। उस समय डर मुझे जकड़ रहा था। लेकिन हर बार जब वह मुझे जकड़ता, मैं अपने विचारों को झटककर, अपना ध्यान नीचे तलहटी पर टिकाये रखता। वहाँ बिताये हर पल में मैं अपने अस्तित्व का एहसास कर पाया। मैं अब दुनिया के किनारे पर बैठा था, उसके दक्षिणी छोर पर, जहाँ से पूर्व का रास्ता खुलता था। वह एहसास प्राणपोषक था। मैं अपने शरीर में एक झुरझुरी महसूस कर पा रहा था। इतना सचेत, इतना स्थिर रहते हुए मैंने कभी इतना रोमाँच महसूस नहीं किया था। मैं हवा को सुन सकता था और समुद्र को ऊपर आकाश से मिलते हुए देख पा रहा था। फिर मैं हँसा, अब मैं अपने हालात से सहज था।

अपनी नश्वरता की वास्तविकता को स्वीकारना बहुत महत्त्पूर्ण है, क्योंकि यह ज़िन्दगी के दूसरे खोखले, फ़ालतू और नक़ली आदर्शों को छाट देती है। जब अधिकांश लोग अपना समय ज्यादा पैसे कमाने, ज्यादा शोहरत और ध्यान आकर्षित करने, थोड़े और ज़्यादा उचित लगने या ज्यादा प्यार पाने की चाह में बिताते हैं, तब मौत आपको इस सबसे ज्य़ादा तकलीपफ़रदेह और महत्त्वपूर्ण सवाल से दो-चार होने का मौक़ा देती है कि आपकी विरासत क्या है?

तुम्हारे जाने के बाद संसार ज्यादा बेहतर या जुदा कैसे हो पार्येगा? आप क्या निशान छोड़कर जाना चाहेंगे? आपका क्या प्रभाव होना चाहिए? वे कहते हैं कि अफ्रीका में

एक तितली के पर फड़फड़ाने से फ्लोरिडा में तूफ़ान आ सकता है; तो, आप जाते समय ऐसा क्या कर जाना चाहोगे?

जैसा कि बेकर बताते हैं, यही ज़िन्दगी का सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल होना चाहिए। हालॉकि, हम सभी इसके बारे में सोचने से कतराते हैं। पहला, यह मुश्किल सवाल है। दूसरा, यह भयानक है। तीसरा, क्योंकि हमें अन्दाज़ा ही नहीं है कि हम कर क्या जब हम इस सवाल से बचते हैं, तो तुच्छ और नफ़रत भरे आदर्श हमारे दिमाग को नियन्त्रित कर लेते हैं और हमारी महत्वाकांक्षा और इच्छाओं पर हावी हो जाते हैं। हमेशा ताक मैं बैठी मौत के प्रति सचैत हुए बिना, हम दुनिया की नक़ली चीज़ों को महत्तवपूर्ण मान लेते हैं। मौत ही इकलौती ऐसी चीज़ है, जिसके प्रति हम निक्चित हो सकते हैं और इसलिए यह वह कम्पास होना चाहिए जिससे हम अपने बाक़ी सारे आदर्शों और फ़ैसलों का निर्धारण कर सकें। यही वह सही जवाब है जो हमें अपने सवालों के लिए चाहिए, लेकिन हम वह सवाल पूछते ही नहींहैं। मौत के साथ सहज होने का एक ही तरीका है कि इसे समझो और इसे ख़ुद से बड़ा समझो; अपने आदर्श वे चुनो जो आपका विस्तार करें, जो सहज हों और पूरी तरह से आपके नियन्त्रण में हों और जिसकी वजह से आप अपने आसपास के शोर भरे संसार को सहन कर सकें। यही आपकी खुशियों की मूल जड़ है। भले ही आप अरस्तू की बात सुनें, या हारवर्ड के मनोवैज्ञानिकों की या ईसा मसीह की या बीटल्स की, वे सब एक ही बात बताते हैं कि ख़ुशी एक ही चीज़ से हासिल होती है: ख़ुद से बड़ी किसी चीज़ की परवाह करने से। विश्वास करो कि एक बड़े से उद्देश्य में योगदान देने वाला एक छोटा-सा ज़रिया एक बड़े से अबोधगम्य उत्पाद का हिस्सा। इसी एहसास के लिए लोग चर्च जाते हैं; लड़ाइयाँ लड़ते हैं; परिवार का पालन-पोषण करते हैं, पेंशन बचाते हैं, पुलों का निर्माण करते हैं और मोबाइल का आविष्कार करते हैं: किसी बड़ी चीज़ का हिस्सा होने का यह एहसास, आपके अपने अस्तित्व से बड़ा है। इस तरह से हक़ हमसे अलग हो जाता है और इसके अलग होते ही हमारे अन्दर छिपी ध्यान की चाह-हम ही सब परेशानियों की जड़ हैं, हमारे साथ ही अन्याय हो रहा है, या हम दूसरों से महान हैं-का तमगा उतर जाता है।

इसका सार यह है कि अधिकार और हक़ की भावना हमें अकेला करती है। दुनिया के प्रति हमारी उत्सुकता और रोमांच हमारी अपनी सोच और परिकल्पना में उभरते हैं, जो हम हमसे मिलने वाले हर इन्सान, और घटना पर रोपित करते रहते हैं। थोड़ी देर के लिए यह अच्छा लग सकता है, लेकिन लम्बे समय के लिए यह आध्यात्मिक ज़हर है।

यह समीकरण अब हम पर हावी हो रहा है। हम भौतिक रूप से समृद्ध हैं लेकिन फिर भी मानसिक रूप से काफ़ी खोखलापन महसूस कर रहे हैं। लोग अपनी हर ज़िम्मेदारी समाज पर छोड़ते जा रहे हैं कि समाज को उनकी भावनाओं और संवेदनशीलता का ध्यान रखना चाहिए। लोगों ने एकतरफ़ा निश्चितताओं को थाम लिया है और उन्हें दूसरों पर लागू करने की कोशिश करते हैं, और बिना किसी औचित्य के अक्सर हिंसक भी हो जाते हैं। लोग, ख़ुद को भ्रामक रूप से श्रेष्ठ समझते हैं और उसमें नाकामयाब होने पर कोई भी बुरा काम कर बैठते हैं।

आधुनिक दिमारा के लाड़-दुलार का असर उस जनसंख्या में देखने को मिल रहा है जिसे लगता है कि बिना कुछ करे ही वह किसी चीज़ की हक़दार है, ऐसी जनसंख्या जिसे लगता है कि बिना किसी त्याग के ही वह उसकी हक़दार है। लोग खुद ही स्वयं को विशेषज्ञ, उद्यमी, अन्वेषक, आविष्कारक, पर्यटक और कोच घोषित कर देते हैं, जबकि उन्हें वास्तविक ज़िन्दगी का कोई अनुभव नहीं होता। वे ऐसा इसलिए नहीं करते कि वे ख़ुद को दूसरों से बेहतर मानते हैं; बल्कि वे ऐसा इसलिए करते हैं कि दुनिया में स्वीकृत होने के लिए उन्हें महान बनना ही पड़ेगा, क्योंकि दुनिया असाधारण लोगों की ही सुनती है।

हमारी संस्कृति आज ध्यानाकर्षण को ही अपार सफलता मानने की ग़लती कर रही है। लेकिन आकर्षण और सफलता एक बात नहीं है।

आप महान हो। पहले से ही। भले ही आपको इसका एहसास हो या नहीं। भले ही किसी और को इसका एहसास हो या नहीं। आप महान इसलिए नहीं हो कि आपने कोई आईफ़ोन एप लॉन्च किया है, या आपने एक साल पहले ही स्कूल ख़त्म कर लिया, या अपने लिए कोई बोट ख़रीद ली है। ये चीज़ें महानता को परिभाषित नहीं करतीं ।

आप पहले से ही महान हो क्योंकि अन्तहीन दुविधा और निक्चित मौत के बीच, आपने चयन कर लिया है कि किस चीज़ का लोड लेना है और किसका नहीं। अपनी ज़िन्द्ॎरी के आदर्शों का चयन करके आपने इसे पहले ही सुन्दर, सफल और प्यारी बना लिया है। भले ही आपको इसका एहसास हो। भले ही आप गटर में सो रहे हों और भूख से मर रहे हों।

आप भी मर जाओगे, और इसीलिए आपको भी अभी जीने की खुशक़िस्मती मिली है। आपको शायद इसका एहसास नहीं है। लेकिन चड्टान पर खड़े होकर शायद आप यह समझ सकें।

बुकोवस्की ने एक बार लिखा था, "हम सब मरने वाले हैं, हम सब । क्या तमाशा है! कि एक-दूसरे को प्यार करने की बजाय, हम कुछ और ही कर रहे हैं। हम डरे हुए हैं

और ज़िन्दगी के तुच्छ मसलों में भटक रहे हैं; बाद में हमारे हाथ कुछ नहीं लगने वाला है।"

बाद में उस रात के बारे में सोचने पर, इझील किनारे, जब मैंने अपने दोस्त जॉश की बॉडी को देखा था। मुझे याद है कि टेक्सास की उस अँधेरी रात को मैं घूर रहा था और मेरा अहंकार उस अँधेरे में घुलता जा रहा था। जॉश की मौत ने मुझे वह सिखाया, जिसका पहले मुझे एहसास नहीं था। हाँ, उसने मुझे सजग रहना, अपने चुनावों की ज़िम्मेदारी लेना, और अपने सपने बिना किसी शर्म और निरोध के पूरा करना सिखाया।

लेकिन ये सब एक गहरे और प्रमुख पाठ के साइड इफ़ेक्ट्स थे। और वह पाठ थाः कुछ ऐसा नहीं है, जिससे डरा जाये। कभी भी। और सालोसाल इसने मुझे मेरी मौत के बारे में याद दिलाया-फिर वह चाहे ध्यान के माध्यम से हो, या दर्शन के अध्ययन से., या साउथ अफ्रीका की चट्टान पर खड़े होने के पागलपन से। इसने हमेशा मुझे अपने विचारों को एकाग्र करने में मदद की। अपनी मौत के स्वीकार से, अपनी क्षणभंगुरता के एहसास से हर चीज़ आसान लगने लगी-अपनी लतों पर नियन्त्रण, अपने हक़ के सामने अपनी पहचान, अपनी समस्याओं की ज़िम्मेदारी की स्वीकृति, अपने डर का सामना करते हुए, अपनी असफलता और ठुकराव को स्वीकारना। अपनी मौत के ख़याल से यह सब हल्का लगने लगा। जितना अधिक मैं अँधेरे में झाँकता, उतनी रोशन यह ज़िन्दगी होती जा रही थी, यह दुनिया शान्त और किसी भी चीज़ की बेचैनी कम होने लगी।

मैं वहाँ कुछ पलों तक बैठा, उसे पूरी तरह आत्मसात करते हुए । आख़िरकार जब मैंने उठने का फ़ैसला किया तो अपने दोनों हाथ अपने पीछे टिकाये और पीछे की तरफ़ खिसका। फिर, धीरे-धीरे, मैं खड़ा हुआ। मैंने अपने आसपास की ज़मीन देखी-यह न्वित करते हुए कि यहाँ कोई छलावा चट्टान तो नहीं जो मुझे निगल जाये। अपने आपको सुरक्षित समझकर, मैं वापस पीछे यथार्थ की तरफ़ मुड़कर चलने लगा-पाँच फ़ीट, दस फ़ीट-हर क़दम के साथ मेरा शरीर सामान्य होता जा रहा था। मेरे क़दम अब हल्के हो गये थे। ज़िन्दगी की चुम्बक को मैंने ख़ुद में समा जाने दिया। जब में कुछ चट्टानों पर से चढ़कर, पुनः मुख्य रास्ते पर आया तो मैंने एक आदमी को मुझे घूरते हुए पाया मैं रुका और उससे नज़रें मिलायीं ।

"उम्म, मैंने आपको वहाँ किनारे पर बैठे हुए देखा," उसने कहा। लहजे से वह ऑस्ट्रेलियाई लग रहा था। 'वहाँ शब्द उसके मुँह से अजीब तरीक़े से निकला था। उसने ऊपर चोटी की तरफ़ इशारा किया।

"हाँ। वहाँ से नज़ारा शानदार है, है न?" मैं मुस्कराया किन्तु वह नहीं। उसके चेहरे पर गम्भीरता थी।
मैंने अपने शॉर्ट्स से अपने हाथ रगड़े। उस समर्पण की वजह से मेरे बदन में अभी भी झनझनाहट थी। हमारे बीच अजीब-सी ख़ामोशी थी। वह ऑस्ट्रेलियाई एक पल के लिए हैरान खड़ा था, उसकी नज़रें मुझ पर टिकी थीं, वह आगे बोलने के लिए अपने शब्द खँगाल रहा था। एक पल बाद, उसने बड़ा सँभलते हुए कहा, "सब ठीक है न? तुम कैसा महसूस कर रहे हो?"
मैं एक पल को ठिठका, मुस्कराते हुए। "ज़िन्दा। पूरी तरह ज़िन्दा।" उसका सन्देह छँट चुका था और अब वह भी मुस्करा दिया। उसने धीमे से सिर
हिलाया और आगे बढ़ गया। मैं वहीं खड़ा नज़ारा देखते हुए, अपने दोस्तों के ऊपर आने का इन्तज़ार करने लगा।
□ □

Table of Contents

2 The Subtle Art Of Not Giving A F*ck
आभार
कोशिश मत करो
मन में चलने वाला घमासान
लोड न लेना भी एक ख़ूबसूरत कला है।
तो मार्क, इस किताब का पॉइंट क्या है?
ख़ुशी एक समस्या है
हताश पांडा के कारनामे
खुशियाँ समस्याओं के समाधान से आती हैं।
भावनाओं को ज़रूरत से ज्यादा महत्तव दिया गया है
अपना संघर्ष खुद चुनो
आप स्पेशल नहीं हैं
ताश के पत्तों का ढहना
असाधारणता का अत्याचार
ले-लेकिन, अगर मैं कोई ख़ांस या असाधारण ही नहीं बनने वाला हूँ, तो इसका मतलब क्या है?
पीड़ा का मूल्य
सेल्फ़-अवेयरनेस एक प्याज़ है
रॉक स्टार की समस्या
बेतुके आदर्श
आप हमेशा चयन कर रहे हैं
चयन
ज़िम्मेदारी महज़ भ्रम
दुखद घटना की प्रतिक्रिया
अनुवांशिकी और हालात को स्वीकारना
पीड़ित होने का फ़शन
कैसे का सवाल ही नहीं है
आप हर मामले में गलत हो (लेकिन मैं भी)
अपनी मान्यताओं के प्रति सचेत रहें

- सम्पूर्ण निश्चितता का ख़तरा
- टालमटोल का मैंसन का नियम
- अपने बारे में कम निश्चित कैसे रहें

असफलता आगे बढ़ने की राह है।

- असफलता/सफलता का विरोधाभास
- दर्द प्रक्रिया का ही हिस्सा है
- 'कुछ करो' का सिद्धान्त

ना कहने की महत्ता

- अस्वीकार आपकी ज़िन्दगी को बेहतर बनाते हैं
- सीमाएँ
- भरोसा कैसे बनायें
- प्रतिबद्धता के माध्यम से आज़ादी

...और फिर तुम मर जाओगे

- हमसे परे कुछ
- द डिनायल ऑफ़ डेथ के मुख्य रूप से दो पॉइंट थे:
- मौत का सुनहरा पहलू